ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला सम्पादक
डा० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्
डा० ए० एन० उपाध्याय, एम० ए०, डी० लिट्

प्रकाशक—
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस



प्रथम संस्करण
१९५४
मूल्य दो रुपया



मुद्रक—
बम्बई प्रिंटिंग काटेज,
बाँस-फाटक, बनारस

प्रस्तावना

जैन-साहित्य

आजके अनुसन्धानोंसे यह बात भली भाँति सिद्ध हो गई है कि भारतीय ज्ञान-विज्ञानके अध्ययनके लिए जैन-साहित्यका अध्ययन अत्यावश्यक है। उसके विना हमारा अध्ययन एकांगी रह जाता है। विविध प्रकारकी प्रकाशित व अप्रकाशित जैन-साहित्यिक सामग्रीमें भारतीय इतिहास और संस्कृतिके अध्ययनकी बहुत बडी सामग्री भरी पडी है। भारतीय साहित्यका ऐसा कोई अंग नहीं जिसपर कि जैन विद्वानोंने कुछ न कुछ न लिखा हो। आज प्राचीन जैन ग्रन्थ भण्डारोंकी नित्यप्रति प्रकाशित होनेवाली सूचियाँ इस बातके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

जैन साहित्यको इतिहास और संस्कृतिके अध्ययनकी दृष्टिसे ६ विभागोंमें बाँटा जा सकता है। १–चरित और प्रबंध साहित्य, २–कथा साहित्य, ३–राजनीतिक साहित्य, ४–पट्टावलियाँ, ५–प्रशस्तियाँ (शिलालेख एवं ग्रन्थोंकी प्रशस्तियाँ) तथा ६–प्रकीर्णक साहित्य (काव्य, नाटक, छन्द, व्याकरण आदि पर ग्रन्थ)। यहाँ सभी विभागोंका परिचय देना तो अप्रासंगिक होगा, अतः केवल प्रथम विभागका ही परिचय थोडे शब्दोंमें दिया जाता है।

पुराण और चरित

चरित और प्रबन्ध साहित्यमें चरित शब्दसे हमारा आशय उस विशाल साहित्यसे है जिसमें इतिहासातीत युगमें हुए जैनोंके पुरातन ६३ महापुरुषों (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलदेव) का वर्णन है तथा इतिहासकालीन आचार्यों, महात्माओंका जीवनवृत्त है। प्रबन्ध साहित्यमें ग्रन्थकर्त्ता अपने समयमें वर्तमान या एक दो शताब्दी पूर्वमें हुए राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्वके व्यक्तियोंका जीवन वृत्तान्त या घटनाका वर्णन करता है। गुजरातके जैन

विद्वानोंने ऐसा साहित्य खूब लिखा है। पुरातन पुरुषोंके चरितके लिए दिगम्बर सम्प्रदायमें पुराण एवं चरित, ये दो शब्द बराबर प्रयुक्त हुए हैं जब कि श्वेताम्बर साहित्यमें केवल चरित शब्द ही। चरित शब्द एक विस्तृत अर्थवाला है जब कि पुराण शब्दसे अभिप्रेत है पुरातन पुरुषोंका चरित। भगवज्जिनसेनाचार्यने पुराण शब्दकी एक विस्तृत व्याख्या की है और उसे एक व्यापक अर्थ प्रदान किया है[1]। इसीलिए शायद दिगम्बर साहित्यमें चरित और पुराण ये दो शब्द समानार्थक जैसे प्रयुक्त हुए हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थोंके समान ही दिगम्बर जैन ग्रन्थोंमें भी पुराण शब्दका प्रयोग इतिहास शब्दके साथ आता है तथा कभी-कभी पुराण और इतिहास समानार्थक भी हो गये हैं ('पुराणमितिहासाख्यं' दामनन्दी, आदिनाथ चरित)। पर आज जिस वैज्ञानिक पद्धतिपर इतिहासका निर्माण हो रहा है उस कसौटीसे पुराण इतिहास कभी नहीं कहे जा सकते, भले ही इतिहासके निर्माणमें उनका एकांश योगदान हो। ब्राह्मण सम्प्रदायके साहित्यमें पुराण साहित्यका अपने ढंगका विकास है। वहाँ १८ पुराण और उतने ही उपपुराण हैं तथा इनके अतिरिक्त और भी पुराण हैं। जैनोंका पुराण साहित्य अपने ढंगका निराला है। पर उनके यहाँ भी महाभारतके समान अपने ही ढंगके हरिवंशपुराण एवं पाण्डवपुराण जैसे ग्रन्थ तथा रामायणके कथानकके समान पद्मपुराण एवं पउमचरिउ जैसे बड़े-बड़े पुराण हैं। ब्राह्मण मान्यताके अनुसार पुराणका वर्ण्य विषय—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, तथा वंशानुचरित हैं वैसे ही जैन पुराणोंके प्रतिपाद्य विषय हैं:—१—क्षेत्र (तीन लोकोंकी रचना) २—काल (तीनों काल), ३—तीर्थ (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र), ४—सत्पुरुष तथा ५—उनकी पापसे पुण्यकी ओर प्रवृत्ति[2] आदि।

---

१. आदिपुराण, सर्ग २, श्लोक ९६-१५४

२. आदिपुराण, सर्ग २, श्लोक ३८

जैन पुराणोंका उद्देश्य है इन सन्त पुरुषोंके जीवन-चरितके द्वारा जैनधर्मके गम्भीरसे गम्भीर तत्त्वोंको श्रोताओं एव पाठकोंको समझा देना। इन ग्रन्थोंमें अनेक रोचक कथा कहानियोंको देकर ऐसा प्रिय बनाया गया है कि ये साधारण जनताको शुष्क न मालूम हो सकें। इन पुराणोंका महत्त्व इसमें हैं कि एक ओर तो ये अतिप्राचीन ऐतिहासिक एवं अर्ध ऐतिहासिक अनुश्रुतियोंके खजाने हैं तो दूसरी ओर जनप्रिय कथानकोंके विशाल भण्डार। बौद्ध श्रमणोंके समान ही जैन श्रमणोंने अपने उपदेशों को कथा, कहानियोंसे सजाया तथा लौकिक कहानियोंको श्रामणिक कहानियोंके रूपमें परिवर्तित किया है। इस तरह कथाओंके प्रति जन्मजात भारतीय प्रेमका उपयोग अधिकसे अधिक धर्मकी ओर आकर्षित करनेमें किया गया। जैन टीकाओं और पुराणोंमें भारतीय कथानक साहित्यके ऐसे बहुतसे रत्न मिले हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं तथा अनेक अनुश्रुतियों और कथाओंकी प्राचीन रोचक परम्पराएँ भी सुरक्षित मिली हैं। उदाहरणके रूपमें कृष्णमार्ग और राममार्गकी प्राचीन कालमें प्रचलित एक मान्यता जैनोंके हरिवंशपुराण तथा पद्मचरित एवं पउमचरिउसे ज्ञात होती है।

जैन पुराणोंमें न केवल सन्तोंके जीवन, उनके सिद्धान्त तथा कथाएँ हैं बल्कि वे समकालीन ऐतिहासिक एव साँस्कृतिक घटनाओं और गतिविधियोंपर भी महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। उदाहरणके लिए हम वर्धमानपुर (काठियावाड़) के आचार्य जिनसेनके हरिवंशपुराणको ही ले लें। इस पुराणमें ग्रन्थकारने अपने समय (सन् ७८३ ई०) के प्रमुख राज्य और राजाओंका उल्लेख, भगवान् महावीरसे चलनेवाली जैन आचार्योंकी एक अविच्छिन्न परम्परा, अवन्तीकी गद्दीपर आसीन होनेवाले राजवश तथा रासभवंश (जिसमें कि प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य हुआ है) तथा भगवान् महावीरके समयसे लेकर गुप्तवंश और कल्कीके राज्य तक मध्यप्रदेशपर शासन करनेवाले सभी राजवशोंकी परम्पराका उल्लेख

किया है[१]। इस ग्रन्थसे यह भी मालूम होता है कि देशकी राजनीतिक स्थिति सामन्तीय शासनके अधीन थी। इसी तरह भगवज्जिनसेनके आदि-पुराणको भी ले लें। इसकी रचना महाकाव्यके रूपमें की गई है तथा यह ब्राह्मण पुराणोंके ढंगका महापुराण है। जैनोंके लिए यह एक विश्वकोश है तथा वह सब कुछ है जो उनके जानने लायक है। इस ग्रन्थमें उन संस्कारोंका वर्णन है जो गर्भसे लेकर मृत्युतक एक व्यक्तिके जीवनके साथ लगे हुए हैं। ये सस्कार ब्राह्मणोंके १६ संस्कारोंसे प्रायः मिलते-जुलते हैं। स्वप्नोंकी व्याख्या, नगरनिर्माणके सिद्धान्त, शासनतन्त्रका स्रोत, राज्याभिषेक, शासकके आवश्यक कर्त्तव्य और शिक्षापर भी इस ग्रन्थसे प्रकाश पड़ता है[२]। इसमें कई स्थानोंपर बहुमूल्य साहित्यिक पद्य हैं। इसी तरह पद्मपुराणादि अन्य पुराणोंपर बहुत कुछ लिखा जा सकता है।

यह विशाल पुराण साहित्य सस्कृत एवं अपभ्रंश भाषाओंमें तथा कन्नड, तामिल, हिन्दी और गुजरातीमें भी लिखा गया है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक अध्ययनके अतिरिक्त तुलनात्मक भाषा विज्ञान व कथा-कहानियोंकी दृष्टिसे भी इसका बड़ा ही सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है।

चतुर्विंशतिपुराण

ऊपर बतलाया गया है कि जैन पुराणोंमें त्रेसठ महापुरुषोंका वर्णन रहता है, इसलिए आचार्योंका मत है कि पुराणके त्रेसठ अधिकार होने चाहिये। कुछका मत है कि अवान्तर अधिकारोंका विस्तार अमर्यादित है। भगवज्जिनसेनने ऐसे कुछ मतोंको उद्धृत किया है तथा लिखा है कि किन्हीं आचार्योंका मत है कि चौबीस ही पुराण होने चाहिये क्योंकि तीर्थंकरोंके

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग ६६ श्लोक २२-२३; ५२-५३; सर्ग ६२, श्लोक ४८७–९२। २. आदिपुराण, सर्ग १६; सर्ग ३८–४२.।

पुराणोंमें चक्रवर्ती आदिके पुराणोंका भी संग्रह हो जाता है। तथा इस मतको मानकर ही उन्होंने २४ तीर्थंकरोंके चतुर्विंशतिपुराणोंको रचनेका संकल्प किया तथा उन पुराणोंके समूहको 'महापुराण' नामसे कहा।[1] उनके सामने परमेष्ठी कवि द्वारा रचित 'वागर्थ संग्रह' नामका ग्रन्थ, संभव है, ऐसी ही रचनाको लिये हुए था पर आज वह उपलब्ध नहीं है। भगवज्जिनसेनका महापुराण सचमुचमें महापुराण है। उनने और उनके पीछे उनके सुयोग्य शिष्यने उस महापुराणके सकल्पको पूरा किया है। आज वह आदिपुराण और उत्तरपुराणके रूपमें हमारे सामने है। उनके अनुकरणपर पीछे चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण नामसे अनेकों ग्रन्थोंकी रचना हुई, पर वे भग० जिनसेनके महापुराणकी तुलनामें बहुत ही छोटे थे, इसलिए सभव है, उन्हें महापुराण नाम न दिया गया हो। अस्तु। इधर प्रकाशित जैन ग्रन्थ-सूचियोंसे पता चलता है कि आचार्य दामनन्दी, आचार्य मल्लिषेण और मुनि शान्तिकीर्ति द्वारा विरचित चतुर्विंशतिपुराणकी प्रतियाँ मिली[2] हैं। ये ग्रन्थ सक्षेपमें जैन महापुरुषोंका परिचय देनेके लिए लिखे गये हैं।

पुराणसारसंग्रह

चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराणोंके अनुकरणपर उनके सारको लेकर पुराणसारसग्रह नामसे कुछ ग्रन्थोंकी रचना हुई। इन ग्रन्थोंमें आदिपुराण, उत्तरपुराण, हरिवंशपुराण, पाण्डवपुराण आदिके सारका वर्णन है। जैन ग्रन्थ भण्डारोंकी सूचियोंसे अब तक ऐसे चार ग्रन्थोंका पता लगा है; पहला है आचार्य दामनन्दीका, दूसरा श्रीनन्दिके शिष्य आचार्य श्रीचन्द्रका, तीसरा रचयिताका नाम अज्ञात तथा चौथा है भट्टारक सकलकीर्तिका[3]। इनमेंसे

---

१. आदिपुराण सर्ग २, श्लोक १२६–१३४। २. जिनरत्नकोश, भा० १, पृष्ठ ११६; कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थसूची पृ० १४६। ३. जिनरत्नकोश, भाग १ पृ० २५२।

दूसरे और चौथेका समय ज्ञात है, पहले और तीसरेका समय ज्ञात नहीं। आचार्य श्रीचन्द्र (बलात्कारगण) ने अपने ग्रन्थकी प्रशस्तिमें रचनाकाल सं० १०७० दिया है जिसे उन्होंने धाराके प्रसिद्ध विद्वान् राजा भोजके समयमें बनाया था। भट्टारक सकलकीर्ति (मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण) का समय १५वीं शताब्दी है।

प्रायः ये ग्रन्थ विशाल पुराणग्रन्थोंके आधारपर ही लिखे गये हैं और उनके संक्षिप्त संस्करण हैं।

आचार्य दामनन्दी

प्रस्तुत पुराणसारसंग्रहके कर्ता आचार्य दामनन्दी हैं। ये कब और कहाँ पैदा हुए इसका हमें कहींसे कोई पता नहीं चल सका। इनके द्वारा रचित दो ग्रन्थोंका पता लगा है। एक तो चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण जो कि श्रवण-बेलगोलके भट्टारकजीके निजी भण्डारमें है[1]। उसकी प्रशस्ति आदि हमें उपलब्ध नहीं हुई। दूसरा ग्रन्थ प्रस्तुत पुराणसारसंग्रह है जो कि श्रीदोर्बलि जिनदास शास्त्री श्रवणबेलगोलके निजी भण्डारमें हैं। पुराणसारसंग्रह के अध्ययनसे भी बहुत थोड़ी सामग्री उनके परिचयके लिए मिली है। उन्होंने अपने पुरुदेवचरित [आदिनाथचरित] के पंचम सर्गके ५० वें श्लोकमें स्वयंको 'प्रवरविनयनन्दिसूरिशिष्यः' कहा है अर्थात् वे आचार्य विनयनन्दिके शिष्य थे। आचार्य दामनन्दीके गुरु विनयनन्दीके सम्बन्धमें भी हमें कुछ ज्ञात नहीं और न उनके नामका उपलब्ध सूचियोंसे कुछ पता लगता है। हाँ, आमेर जैन ग्रन्थभण्डार जयपुरकी सूचीसे नयनन्दि आचार्यका नाम मालूम होता है[2] जो कि अपभ्रंश भाषाके श्रेष्ठ कवियोंमेंसे हैं। इनने 'सकल विधि-विधान' तथा 'सुदर्शनचरित्र' नामके दो महाकाव्य रचे हैं। ये आचार्य माणिक्यनन्दिके शिष्य हैं तथा धारा नगरीके राजा भोजके समयमें हुए हैं। पर इनके संघ, गण, गच्छका कोई पता नहीं। तथा

---

१. जिनरत्नकोश पृष्ठ ११६। २. प्रशस्तिसंग्रह (जयपुर) पृ० १८१, १८७।

थोड़े नामसाम्यके आधारपर उन्हें दामनन्दीका गुरु नहीं माना जा सकता।

संभव है आचार्य दामनन्दी, देवसंघके आचार्य रहे हों क्योंकि उन्होंने अपने पुराणसारसंग्रहके वर्धमान चरितकी प्रथम सर्गान्त प्रशस्तिमें लिखा है 'वर्धमानचरिते .. देव संघस्य कृतौ प्रथम सर्गः'। एक जगह उन्होंने भग० शान्तिनाथसे अपने लिए तथा संघके लिए शातिकी प्रार्थना की है। सम्भव है, यह प्रति उन्होंने संघ के लिए, संघमें रहनेवाले अन्य मुनियोंके लिए, बनाई हो। देवसंघ, दिगम्बर जैन सम्प्रदायके दक्षिण भारतमें हुए मूलसंघके सुप्रसिद्ध चार भेदोंमेंसे एक है[1]।

आ० दामनन्दीने अपने आदिनाथ तथा शान्तिनाथचरितकी कुछ सर्गान्त प्रशस्तियोंमें आचार्य पदके साथ अपना नाम दिया है और कुछमें केवल नाम। पर शान्तिनाथचरितके अन्तकी एक प्रशस्ति गाथामें उन्होंने आचार्य दामनन्दी लिखा है। अतः निश्चय है कि ये उक्त संघके आचार्य थे।

प्रस्तुत पुराणसारसंग्रह

यह पुराणसारसंग्रह केवल ६ चरितोंका संग्रह है:—१-आदिनाथ-चरित, २—चन्द्रप्रभचरित, ३—शान्तिनाथचरित ४—नेमिनाथ ५—पार्श्वनाथ-चरित तथा ६—वर्धमानचरित। इनमें आदिनाथचरित, शान्तिनाथ तथा नेमिनाथ चरित तो ४-५ सौ श्लोक प्रमाण हैं जब कि दूसरे लघुकाय हैं। यह संग्रह दो भागोंमें प्रकाशित होगा। उनमें से प्रथम भाग पाठकोंके सामने है। इसमें पूर्वोक्त छह तीर्थंकरोंमेंसे प्रारम्भके तीन तीर्थंकरोंका चरित दिया गया है।

राइस महाशयने अपनी मैसूर और कुर्गकी हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची के पृष्ठ ११४ में 'पुराणसारसंग्रह'का दूसरा नाम 'चतुर्विंशतिपुराण' दिया है[2] पर मालूम पड़ता है उनने भूलसे दो ग्रन्थोंको एक समझ लिया है।

१. नाथूराम प्रेमी, हरिवंशपुराणकी प्रस्तावना, पृ० ११ प्रभृति।

२, जिनरत्नकोश भाग १ पृ० २५३।

दामनन्दीका चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण प्रकाशित सूचीके अनुसार श्रवण-वेलगोलके भट्टारकजीके भण्डारमें है[1] जब कि इस ग्रन्थका उक्त सूचीमें कोई पता नहीं। इस ग्रन्थके अन्तमें जो लेखक प्रशस्ति है उससे मालूम होता है कि इसकी प्रतिलिपि दोर्वलि जिनदास शास्त्रीके शिष्य वि० विजयचन्द्रने श्री० ऐ० पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन बम्बईके लिए की थी। हस्तलिखित प्रतिको देखनेसे भी पता लगता है कि यह ग्रन्थ कन्नड लिपिसे देवनागरीमें लिखा गया है क्योंकि कन्नड-लिपिसे देवनागरीमें लानेमें जो स्वाभाविक त्रुटियाँ—दीर्घ ई को ह्रस्व इ, अल्पप्राणको महाप्राण तथा संयुक्ताक्षर और पूर्व अनुस्वार (बंध और बद्ध) में कोई भेद न होना आदि—इस प्रतिमें प्रचुर मात्रामें उपलब्ध हैं। बहुत संभव है कि यह ग्रन्थ दोर्वलि जिनदास शास्त्रीके अपने ग्रन्थ-भण्डारमें हो और यह प्रतिलिपि उससे ही की गई हो। इससे सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ चतुर्विंशतिपुराणसे भिन्न है।

ग्रन्थ यथा नाम तथा गुण है। सचमुचमें यह पुराणोंका सार है। हो सकता है कि ग्रन्थकारने अपने चतुर्विंशतितीर्थङ्करपुराणमेंसे कुछको इस संग्रहमें दिया हो। यद्यपि इस संग्रहको देखनेसे इसपर भगव-ज्जिनसेन और आचार्य गुणभद्रके महापुराणकी छाया स्पष्टतः परिलक्षित होती है। पर नेमिनाथचरितको लिखनेमें इस पर जिनसेनके हरिवंश-पुराणकी स्पष्ट छाया है। ऐसा भी प्रतीत होता है। ग्रन्थकारने आर्या और अनुष्टुप् छन्दोंका प्रयोग प्रचुर मात्रामें किया है। मालूम पड़ता है कि आर्या छन्द उन्हें बड़ा प्रिय था। प्रस्तुत संग्रहमें कुछ वृहत्कलेवरवाले भाग—शान्तिनाथचरित एवं नेमिनाथ चरित—इसी छन्दमें लिखे गये हैं।

प्रस्तुत संस्करणकी प्रेसकापी जैन सिद्धान्त भवन आराकी हस्तलिखित प्रतिके आधारपर तैयार की गई थी। और आराकी प्रति बम्बईके श्री० ऐ० पन्नालाल सर० भवनकी प्रतिके आधारपर की गई थी। किन्तु

१. जिनरत्नकोश पृ० ११६।

आराप्रतिके अशुद्ध होनेके कारण इसपरसे की गई प्रेसकापी भी बहुत अशुद्ध तैयार हुई है। हमें उसके संशोधनके लिए और किसी प्रतिका सहारा नहीं मिल सका। अतः उसका संशोधन प्रसंगानुसार महापुराणके आधारसे करना पड़ा है।

आभार-प्रदर्शन

मिलान करनेके लिए अन्य प्रतिकी सहायता न मिलनेपर भी यदि मुझे इस ग्रन्थके संशोधन और अनुवाद करनेमें श्रीमान् पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, बनारसकी सहायता न मिलती तो इसके प्रकाशनके दिन अभी दूर थे। मैं पण्डितजीका एतदर्थ बड़ा आभारी हूँ। श्री० पं० महादेवजी चतुर्वेदीने भी इस ग्रन्थके तैयार करनेमें यथाशक्य सहायता की है एतदर्थ मैं उनका भी अनुगृहीत हूँ।

नालन्दा पाली प्रतिष्ठान
नालन्दा
२० अक्टूबर ५४

—गुलाबचन्द्र चौधरी

विषयानुक्रम

आदिनाथ चरित

प्रथम सर्ग

द्वितीय सर्ग

तृतीय सर्ग

चतुर्थ सर्ग

शान्तिनाथ चरित

प्रथम सर्ग

पञ्चम सर्ग

षष्ठ सर्ग

दामनन्दि-विरचि

पुराणसार-संग्रह

[भाग १]

आदिनाथचरितम्

प्रथमः सर्गः

पुरुदेवं पुराणाद्यं प्रणम्य वृषभं विभुम् ।
चरितं तस्य वक्ष्यामि पुण्यमादशमाद् भवात् ॥१॥

पुराणमितिहासाख्यं श्रूयतां तुष्टिवर्द्धनम् ।
सुधर्ममुनिना प्रोक्तं जम्बूनाम्नेऽभिपृच्छते ॥२॥

कुतोऽस्ति मे गतिर्वक्तुं श्रुतकेवलिभाषितम् ।
चार्थेनागमहीनस्य किन्तु भक्त्या ब्रवीम्यहम् ॥३॥

जम्बूद्वीपे परे भागे सीतोदाया उदक्तटे ।
गन्धिलाख्यस्य राष्ट्रस्य विजयार्द्धनगे शुभे ॥४॥

अलकायां मनोहर्य्यास्तनयोऽतिबलस्य च ।
महाबल इति ख्यातः खेन्द्रोऽभूद् दशमे भवे ॥५॥

सर्वलक्षणसम्पन्नो बलरूपसमन्वितः ।
देवीभिः सह रेमेऽयं पूर्वपुण्योदयामृतात् ॥६॥

महामतिश्च संभिन्नः शतबुद्धिश्च मन्त्रिणः ।
मिथ्यादृशः स्वयम्बुद्धः सम्यग्दृष्टिश्चतुर्थकः ॥७॥

राजानं कामभोगार्थं कदाचिद्राज्यवर्द्धने ।
ब्रवीति स्म स्वयम्बुद्धो भवन्तः प्रव्रजन्त्विति ॥८॥

क्रोष्टुटिट्टिभदृष्टान्तावदीक्षाकारणानि च ।
ऊचुः सभ्या हसन्तस्तं नास्तिकैकान्तवादिनः ॥९॥

श्री आदिनाथचरित्र

प्रथम सर्ग

पुराण पुरुषोंमें श्रेष्ठ पुरुदेव भगवान् ऋषभको प्रणाम कर मैं उनके पूर्व दश भवोंसे लेकर पुण्यवर्धक चरित्रका वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ इतिहास नामसे प्रसिद्ध, सन्तोष बढ़ानेवाले इस पुराणका सभी जन श्रवण करें। इसे सुधर्माचार्यने अपने शिष्य जम्बूस्वामीके पूछनेपर कहा था ॥२॥ श्रुतकेवलीके द्वारा कहे गये उस चरित्रको ठीक-ठीक वर्णन करनेमें मुझ-जैसे शास्त्र-ज्ञान-रहितकी गति कहाँ। तो भी भक्तिसे प्रेरित होकर वर्णन करता हूँ ॥३॥

जम्बूद्वीपके पश्चिम भागमें सीतोदा नदी है। उसके उत्तर किनारेपर गन्धिल नामका देश है। वहाँ मनोज्ञ विजयार्द्ध पर्वतपर अलका नामकी नगरी है। उस अलका नगरीके राजा अतिबल और रानी मनोहरीसे दशवें भव पूर्वमें भगवान् ऋषभ 'महाबल' नामके पुत्र हुए। महाबल विद्याधरोंके राजा थे ॥४–५॥ वे सभी शुभ लक्षणोंसे सुशोभित तथा अति बलवान् और रूपवान् थे। वे पूर्व पुण्यके उदयसे रानियोंके साथ क्रीडा करते थे ॥६॥ उनके महामति, संभिन्नमति, शतबुद्धि नामक तीन मंत्री मिथ्यादृष्टि थे और चौथा स्वयम्बुद्ध मन्त्री सम्यग्दृष्टि था ॥७॥ एक समय राज्य-वर्धन (वर्षगांठ) नामके उत्सवमें उस काम-भोगासक्त राजाको स्वयम्बुद्धने उपदेश दिया कि सच्चे सुखकी प्राप्तिके लिए आप दीक्षा ले लेवें ॥८॥ इस पर सभामें बैठे हुए नास्तिक एकान्तवादियोंने हँसते हुए, शृगाल, टिट्टिभके दृष्टान्त देकर दीक्षा न लेने की बात कही अर्थात् उन लोगोंने स्वयम्बुद्धकी बातका खण्डन किया। ॥९॥

अत्रोपयोगिश्लोकद्वयम्—

गृद्धेन घ्यातं मांस मत्स्योऽपि सलिलं गतः ।
मत्स्यमांसपरिभ्रष्टः आकाशं किं निरीक्ष्यसे ॥१०॥

पश्यसि परदोषं च आत्मदोषं न पश्यसि ।
अर्थं कुलं च भर्त्तारं किं किं हससि बन्धकि ॥११॥

आरविन्दमुपाख्यानमैन्द्रं शतबलेरपि ।
यस्तेनाप्येकदीक्षां च ह्यमणीच्छ्रावकश्चिरम् ॥१२॥

अन्यदा प्रोषधं कुर्वन् वन्दारुर्मन्दरं गतः ।
दृष्ट्वाऽऽदित्यगतिं चैत्ये पप्रच्छारिञ्जयं च स ॥१३॥

नाथ ! नेच्छति भर्त्ता मे प्रव्रज्यां ब्रूहि कारणम् ।
इत्युक्तः सोऽवधिज्ञानादादित्यगतिरब्रवीत् ॥१४॥

एषोऽपरविदेहेषु गधिले नवसंयतः ।
खेन्द्रं महीधरं वीक्ष्य निदानमकरोद्यतः ॥१५॥

दुर्मोचोऽस्ति न राजाऽसौ भव्यः श्रोष्यति ते वच. ।
मासमायुश्च तस्येति सहेतुः मुनिरादिशत् ॥१६॥

इत्युक्ते तूर्णमागम्य सर्वं भर्त्रे निवेद्य तत् ।
कुरु पूजां त्यजैश्वर्यमाप्तानामित्यु वाच तम् ॥१७॥

उन्होंने कहा कि वह तो वैसी ही बात हुई जैसे कि एक गृद्धने लोभमें आकर मुँहके मांसको छोड़ दिया और मछली पर झपटा। मछली तो पानीमें चली ही गई और उसके पहले मांस भी। इस पर किसी कुलटाने कहा कि अब आकाशकी ओर क्या देखता है। तब गृद्धने उसे उत्तर दिया कि हे कुलटे तू क्या हँसती है। तू परदोष तो देखती है पर अपने दोष, अर्थ, कुल और पतिको नहीं देखती ॥१०, ११॥

इस बात पर श्रावक स्वयम्बुद्धने उस राजाके पूर्वज राजा अरविन्दकी कथा सुनाई। तथा उस राजाके पितामह शतबलने जैनी दीक्षा लेकर इन्द्रपद प्राप्त किया था तत्सम्बन्धी कथा सुनाई। इस तरह यत्नपूर्वक बड़ी देर तक उसने दीक्षा लेनेका समर्थन किया ॥१२॥ किसी समय प्रोषध व्रत धारण कर वन्दना करनेके निमित्तसे वह मंत्री सुमेरु पर्वतपर गया। उसने वहाँ जिनालयमें आदित्यगति और अरिञ्जय मुनिको देखकर उनसे प्रश्न किया ॥१३॥ कि हे नाथ, हमारा स्वामी महाबल मुनि दीक्षा नहीं ले रहा है, इसका कारण बतलाइये। ऐसा पूछनेपर आदित्यगति मुनिराजने अपने अवधिज्ञानबलसे उत्तर दिया कि—॥१४॥

इसी द्वीपके पश्चिम विदेहमें गंधिल नामका देश है। वहाँ नवदीक्षित इसने विद्याधरोंके राजाको आकाशमें जाते हुए देखकर निदान किया था ॥१५॥ अत वह इस भवमें काम भोगासक्त है। राजाकी भोगासक्ति छुड़ाना कठिन नहीं है। वह भव्य है, और तुम्हारे वचनोंको सुनेगा। उसकी आयु केवल एक माह की है। इस प्रकार मुनिने हेतुपूर्वक सब बातें कहीं ॥१६॥ यह सुनकर स्वयम्बुद्ध सुमेरु पर्वतसे शीघ्र लौट आया और अपने स्वामीसे उसने सब बातें कहीं। उसने यह भी कहा कि आप इस राजपाटको छोड़कर सच्चे देवकी पूजा कीजिये ॥१७॥

अष्टाहमर्हतां पूजां कृत्वा त्यक्त्वा च राजताम् ।
कल्याणमित्रवाक्येन समाराध्यागमद्दिवम् ॥१८॥

ऐशाने श्रीप्रभे भूत्वा ललिताङ्गः सुरेश्वरः ।
अर्हत्पूजाफलं तत्र बुभुजे सागरस्थितिः ॥१९॥

धातकीखण्डपूर्वार्द्धे नगराजस्य पश्चिमे ।
विदेहे गन्धिले ख्याते चारणाचरिताटवी ॥२०॥

तदन्ते पाटलिग्रामे नि स्वा निर्नामिकाऽन्यदा ।
ददर्शाम्बरतिलके ह्याचार्यं पिहिताश्रवम् ॥२१॥

श्रुत्वा जिनगुणं तस्माच्छ्रु तज्ज्ञानं च भावतः ।
उपवासमुपोष्यान्ते श्रीप्रभेऽभूत्स्वयम्प्रभा ॥२२॥

तस्याग्रमहिषी भूत्वा गुरोः पूजां प्रकृत्य सा ।
चिक्रीड ललिताङ्गेन सुखं पल्योपमत्रयम् ॥२३॥

मासार्द्धमर्हतां पूजां कृत्वा नाथे ततश्च्युते ।
दृढधर्मेण षण्मासाञ्चक्रे पूजामपि स्वयम् ॥२४॥

च्युता पुष्कलावत्यां वज्रदन्तस्य चक्रिणः ।
नगर्यां पुण्डरीकिण्यां लक्ष्मीमत्यां सुताऽभवत् ॥२५॥

नामतः श्रीमती ख्याता रूपविद्याकलागुणैः ।
प्रत्यूषे साऽन्यदा वीक्ष्य देवागमनमद्भुतम् ॥२६॥

स्मृतपूर्वभवा हर्म्ये मुमूर्च्छ जनताऽऽवृता ।
ज्ञात्वा जातिस्मरीं राजा पण्डितामाप्रहित्य ताम् ॥२७॥

उस महाबलने अपने हितकारी मित्रके वचनोंसे राज्यको छोड़ दिया, आठ दिन तक अर्हद्देवकी पूजा की, तथा अन्तमें समाधि-मरण पूर्वक मरकर स्वर्गमें गया ॥१८॥ वह ऐशान स्वर्गके श्रीप्रभ विमानमें ललितांग नामका देव हुआ। वहाँ एक सागर प्रमाण आयु पाकर अर्हन्त भगवान्‌की पूजाका फल भोगने लगा ॥१९॥

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व दिशावर्ती सुमेरु पर्वतके पश्चिम विदेहमें गन्धिल नामका देश है। उसमें चारणमुनियोंसे सेवित एक अटवी है। उसके पास पाटलि ग्राम है। वहाँ एक निर्धन निर्नामिका नामकी लड़की थी। एक समय उसने अम्बर-तिलक पर्वत पर पिहिताश्रव नामके मुनिराजको देखा ॥२०-२१॥ उनसे जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति व्रत और श्रुतज्ञान व्रतको श्रद्धापूर्वक धारण किया और अन्तमें उपवासकर वह श्रीप्रभ विमानमें स्वयम्प्रभा देवी हुई ॥२२॥ वह स्वयम्प्रभा उस ललिताङ्गकी प्रधान देवी हुई। तथा अपने गुरु की (मुनिराज जिन्होंने व्रत दिये थे) पूजा की। वह देवी ललिताङ्गके साथ तीन पल्यकी आयु पाकर, सुखसे क्रीड़ा करने लगी ॥२३॥

अपनी आयुके पन्द्रह दिन शेप रहने पर जिनेन्द्रोंकी पूजा करता हुआ वह ललिताङ्ग स्वर्गसे च्युत हुआ। तब वह स्वयम्प्रभा देवी स्वयं भी छह मास तक धर्ममें दृढ़ होकर जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करती रही ॥२४॥ स्वर्गसे च्युत होकर वह स्वयम्प्रभा पूर्व विदेहमें पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमें वज्रदन्त चक्रवर्ती और रानी लक्ष्मीमतीको पुत्री हुई ॥२५॥ रूप, विद्या और कला आदि गुणोंसे युक्त वह वालिका 'श्रीमती' इस नामसे विख्यात हुई। एक समय प्रातःकाल देवोंके अद्‌भुत आगमनको देखकर उसे पूर्वभवका स्मरण हो आया और वह अपने महलमें मूर्च्छित हो गई। यह देख सेवक-सेविकाओंने उसे

यशोधरस्य कैवल्यं श्रुत्वोत्पन्नं मनोहरे ।
चक्रोत्पत्तिं च भक्त्याऽसौ जिनेन्द्रं वन्दितुं ययौ ॥२८॥

अर्चयित्वा जिनेन्द्रं स कृत्वा चक्रमहं पुनः ।
देशान्देशान्समाज्ञप्तुं ययौ चक्रपुरस्सरम् ॥२९॥

अशोकवनिकोद्देशे भ्रष्टा पण्डितया भृशम् ।
आख्यत्स्वस्याः स्वभर्तुश्च सा तृतीयभवोद्भवम् ॥३०॥

दृष्टश्रुतानुभूतानि सर्वाण्याख्याय पट्टके ।
आलिलेख तदालीना किंचित्तत्र जुगूह च ॥३१॥

योगविद्येश्वरा धात्री जगामादाय पट्टकम् ।
जिनालयं महापूतमजस्रमहिमोत्सवम् ॥३२॥

उत्पन्नावधिरत्नोऽसौ विनिर्जित्य महीं नृपः ।
तदानीमेत्य संविश्य व्याजुहाव सुतामरम् ॥३३॥

पादयोः पतितां बालां शसित्वाऽऽघ्राय मस्तकम्
आश्लिष्याङ्कमथारोप्य पृष्टा कुशलमब्रवीत् ॥३४॥

अर्हन्तं वन्दमानस्य ह्युदपाद्यवधिर्मम ।
तेन मे पूर्वजन्मानि तव पत्युश्च वेद्म्यहम् ॥३५॥

इहैव नगरे चासमितोऽहं पञ्चमे भवे ।
चन्द्रकीर्तिर्नृपो नाम्ना जयकीर्तिश्च मे सखा ॥३६॥

घेर लिया। चक्रवर्ती वज्रदन्तने बालिकाके जाति-स्मरणको जानकर उसकी परिचर्यामें पण्डिता नामकी धायको नियुक्त किया ॥२६-२७॥

अनन्तर उसने एक ही समयमें यशोधर भगवान्को मनोहर उद्यानमें केवलज्ञानकी उत्पत्ति तथा अपने शस्त्रागारमें चक्ररत्न उत्पन्न होनेकी बात सुनी। कर्तव्यका निर्णय कर वह भक्तिवश पहिले जिनेन्द्रकी पूजा करने गया ॥२८॥ जिनेन्द्रकी पूजा करनेके बाद उसने चक्ररत्नकी पूजा की। तथा चक्ररत्नको आगे कर नाना देशोंपर शासन स्थापित करनेके लिये प्रस्थान किया ॥२९॥

यहाँ उस श्रीमतीने, अशोक वनमें उस पण्डिता नामकी धाय द्वारा बार-बार पूछने पर अपने और अपने पति संबंधी तीसरे भवसे लेकर वृत्तान्त सुनाया ॥३०॥ देखी, सुनी और अनुभवमें आई सभी बातोंको कहकर तन्मय हो उसने एक पट पर स्पष्ट चित्र लिखा किन्तु उसमें कुछ बात छिपा रक्खी ॥३१॥ योगविद्या जाननेवाली वह धाय उस चित्रपटको लेकर महापूत नामके जिनालयमें गई। वह ऐसा जिनालय था जहाँ कि हमेशा पूजा उत्सव होते रहते थे ॥३२॥

इधर वह चक्रवर्ती भी पृथिवी जीतकर लौट आया। उसे अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया था। उसने वहाँ आकर अपनी पुत्रीको शीघ्र ही अपने समीप बुलाया ॥३३॥ पैरोंमें प्रणाम करती हुई उस बालिकाको कोमल वचनोंसे सन्तुष्ट कर, मस्तक चूम, आलिंगन कर राजाने अपनी गोदीमें बैठाया और पूछने पर कन्याने कुशल क्षेमकी बात कही ॥३४॥ अनन्तर राजाने बतलाया कि मुझे जिनेन्द्रकी वन्दना करते हुए अवधिज्ञान हो गया है। इसलिए मैं अपने, तुम्हारे और तुम्हारे पतिके पूर्व जन्मोंको जानता हूँ ॥३५॥ पहले इसी नगरमें, इस भवसे पाँच भव पहले मैं चन्द्रकीर्ति नामका राजा था।

भूत्वा देशमती सम्यग्धृत्वा माहेन्द्रनामनि ।
सप्तसागरतुल्यायुः प्रतीन्द्रोऽह समित्रकः ॥३७॥
पुष्कराद्धविदेहेऽतः प्राच्ये रत्नपुरे नृप. ।
श्रीधरो नाम तद्भार्ये मनोहरिमनोरमे ॥३८॥

श्रीवर्मा हलभृच्चासं चक्रभृत्स विभीषणः ।
श्रुत्वा धर्मं मुने' पार्श्वे निर्विण्ण. प्राव्रजत्पिता ॥३९॥
प्राप्त' सिद्धिं तपः कृत्वा भद्रोत्तरव्रतसकम् ।
मनोहरी मम स्नेहाद् गृहधर्मरताऽभवत् ॥४०॥

चतुर्थकान्युपोष्यान्ते चत्वारिंशच्छतं ततः ।
श्रीप्रभे ललिताङ्गाख्यो देवोऽभूज्जननी मम ॥४१॥

विभीषणवियोगेन मामागम्य सुदुःखितम् ।
वोधयामास रूपेण केशवस्य मनोहरी ॥४२॥

पञ्चराजसहस्रैस्तु सहाह तं युगन्धरम् ।
प्रपद्य शरण चक्रे सिंहनिक्रीडितं तपः ॥४३॥

सर्वतोभद्रकं चाहमुत्पाद्यावधिमुत्तमम् ।
तपसा वीजवुद्धिञ्च पदानुसरणं तथा ॥४४॥

युग्मं समाराध्याऽच्युते कल्पे देवेन्द्रोऽभवमीडितः ।
प्रीतिवर्द्धनमारोप्य ललिताङ्गश्च पूजित. ॥४५॥

ललिताङ्गस्ततश्च्युत्वा जम्बूद्वीपस्य पूर्विले ।
विदेहे मङ्गलावत्या विजयार्द्धनगोत्तरे ॥४६॥

गन्धर्वाह्वे पुरे राज्ञो वासवस्य महीधरः ।
सुतोऽभवत्प्रभावत्या दशोत्तरशताधिप. ॥४७॥ युग्मम् ॥

प्रीतोऽरिञ्जयपार्श्वेऽसौ निष्क्रम्योग्रैरभिग्रहैः ।
मुक्तावलिं तपः कृत्वा ययौ निर्वाणमव्ययम् ॥४८॥

जयकीर्ति मेरा मित्र था ॥३६॥ सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावकोंके व्रतोंको अच्छी तरह धारण कर, मित्र सहित मैं माहेन्द्र नामके स्वर्गमे सात सागर आयुवाला प्रतीन्द्र हुआ ॥३७॥ वहाँसे च्युत होकर पुष्करार्ध द्वीपके पूर्व सुमेरुके पूर्व विदेहवर्ती मंगलावती देशमे रत्नसंचयपुर नगरमें राजा श्रीधर और उनकी दो रानियां मनोहरी और मनोरमासे हम दोनों क्रमसे श्रीवर्मा बलभद्र तथा विभीषण नारायण नामके पुत्र हुए। हमारे पिताने मुनिके पास धर्म सुनकर और विरक्त होकर जिनदीक्षा ले ली और उत्तम सर्वतोभद्र तप करके मोक्षपद प्राप्त किया। तथा मनोहरी नामक मेरी मां मेरे स्नेहसे गृहधर्ममे ही रत रही। आयुके अन्तमे एकसौ चालीस उप-वास करके मेरी मां श्रीप्रभ विमानमे ललिताङ्ग देव हुई ॥३८–४१॥ अनन्तर भाई विभीषणके वियोगमें, अतिदुखी मुझे नारायण विभीषणका रूप धारण कर मनोहरीके जीवने समझाया ॥४२॥ फिर पांच हजार राजाओंके साथ मैंने युगन्धर जिनेन्द्रके समीप दीक्षा ले ली और सिंहनिष्क्रीडित तथा सर्वतोभद्र तप करने लगा। तपके प्रभावसे मैंने उत्तम अवधिज्ञान, बीजबुद्धि और पदानुसारी ऋद्धि प्राप्त की। दोनों व्रतोंकी अच्छी तरह आराधना कर अच्युत स्वर्गमें महिमाशाली देव हुआ और प्रीति-वर्धन नामक अपने विमानमें ललिताङ्गको ले जाकर मैंने उसकी पूजा की ॥४३–४५॥

ललितांग वहाँसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहवर्त्ती मंगलावती देशमें, विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर-श्रेणीमें स्थित गन्धर्वपुरके राजा वासव और रानी प्रभावतीके एक सौ दस राजाओंका स्वामी महीधर नामक पुत्र हुआ ॥४६–४७॥ वासव राजाने अरिञ्जय मुनिके समीप दीक्षा धारण की और उसने कठोर कायक्लेश पूर्वक मुक्तावलि तपको तपकर अविनाशी मोक्ष

पद्मावत्यार्यिकापार्श्वे निःष्क्रम्योग्रं प्रभावती ।
रत्नावलिं तप· कृत्वा साऽप्यच्युतमुपेयुषी ॥४६॥

महीधरोऽन्यदा मेरुं विद्याप्राप्त्यर्थमागतः ।
कुर्वन्नष्टाह्निकीं पूजामासांचक्रे जिनालये ॥५०॥

तस्मिन् काले जिनो बाले ! पुष्करद्वीपपश्चिमे ।
विदेहे तु प्रभकर्य्यां निर्ववौ विनयन्धरः ॥५१॥

तच्छरीरमहं कृत्वा देवेन्द्रैः सार्धमागतः ।
मन्दरं चैत्यपूजार्थमपश्यं जननीचरम् ॥५२॥

जगन्मण्डनपार्श्वे तु प्राव्राजीद् वोधितो मया ।
प्रापत् प्राणतकल्पैस्यमुपोष्य कनकावलीम् ॥५३॥
विंशत्यब्धिसमं कालं भुक्त्वा भोगांस्ततश्च्युतः ।
द्वितीयद्वीपपूर्वस्य मन्दरस्य सपश्चिमे ॥५४॥

गन्धिले पुर्ययोध्यायां नृपतेर्जयवर्मणः ।
पुत्रोऽभूत्सुप्रभागर्भे ख्यातो नाम्नाऽजितञ्जय· ॥५५॥ युग्मम्

प्रपद्य शरणं राजा सर्वज्ञमभिनन्दनम् ।
परम्पदमवापत् स प्रकृत्वाऽऽचाम्लवर्द्धनम् ॥५६॥

सुदर्शनार्यिकापार्श्वे दीक्षित्वोग्रतपोवृता ।
कृत्वा रत्नावलीं सम्यक् सुप्रभा चाच्युतं गता ॥५७॥

चक्रवर्त्ती ततो भूत्वा पापास्रवनिरोधनात् ।
पिहिताश्रवनामाऽभूदभिनन्दनवन्दनात् ॥५८॥

मयैव वोधितस्त्यक्त्वा नृपो राज्यमदीक्षत ।
द्विसहस्रैर्नृपैः सार्द्धं मन्दरस्थविरान्तिके ॥५९॥

अग्रहीस्त्वं च तत्पार्श्वं उपवासं यत' सुते ।
मां च वोधितवान्यस्मादेको नौ तेन सद्गुरुः ॥६०॥

पद प्राप्त किया। प्रभावती भी पद्मावती आर्याके समीप दीक्षा लेकर उग्र रत्नावली तपकर अच्युत स्वर्गमे गई ॥४८–४९॥

एक समय वह महीधर राजा विद्याकी प्राप्तिके लिए मेरु पर्वतपर आया और जिनालयमे अष्टान्हिका पूजा करता हुआ बैठा था कि ॥५०॥ हे पुत्रि ! उसी समय पुष्करार्द्ध द्वीपके पश्चिम विदेहकी प्रभंकरी नगरीमें जिनेन्द्र विनयन्धरका निर्वाण हुआ; और उनकी निर्वाण पूजा कर लौटे हुए देवेन्द्रोंके साथ मेरु पर्वतपर जिनपूजा करनेके लिए मै भी आया। वहाँ मैंने अपनी माताकेजीव महीधरको देखा ॥५१–५२॥ मैंने (जगत्के मडनरूप) जिनेन्द्र-देवके पास ही उस महीधरको समझाया और उसने दीक्षा ले ली तथा कनकावली तप करके प्राणत स्वर्गका इन्द्र हुआ ॥५३॥ बीस सागर प्रमाण आयु तक भोगोंको भोगकर वहांसे च्युत होकर, वह धातकीखण्ड द्वीपकी पूर्व दिशामे शोभित, पश्चिम विदेहके गन्धिल देशकी राजधानी अयोध्यामे राजा जयवर्मा और रानी सुप्रभाके अजितंजय नामका पुत्र हुआ ॥५४–५५॥

राजा जयवर्माने सर्व-ज्ञाता अभिनन्दन भगवान्के समीप दीक्षा लेकर आचाम्लवर्धन तपकी तपस्या की और मोक्ष पाया। सुप्रभाने सुदर्शना आर्याके समीप दीक्षा ले ली और रत्नावली नामके उग्र तपको करके अच्युत स्वर्ग गई ॥५६–५७॥ वह अजितंजय भी चक्रवर्ती हुआ। तथा अभिनन्दन जिनकी वन्दना करता हुआ, पापाश्रवके रुक जानेसे 'पिहिताश्रव' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥५८॥ तथा मुझ (अच्युतेन्द्र) से बोधित होकर उसने राज्यको छोड़कर दो हजार राजकुमारोंके साथ मन्दरस्थविर मुनिके पास दीक्षा ले ली ॥५९॥ उन पिहिताश्रव मुनिके पास से हे पुत्रि ! तुमने अपने पूर्व तीसरे भवमें उपवास व्रत लिये थे और श्रीवर्मा नामके मेरे पूर्व भवमें पिहिताश्रवके जीव

सम्बन्धेन मनोहर्य्यां ललिताङ्गास्त्रिसप्तकाः ।
अर्चिताश्च व्यतीताश्च सागरोपमजीविन ॥६१॥

पाश्चात्यो ललिताङ्गोऽयं तावकस्तत्र पुत्रिके ।
स्वयंबुद्धोपदेशेन जिनपूजाफलादभूत् ॥६२॥

श्रृणवभिज्ञानकं वक्ष्ये ब्रह्मेन्द्राद्याः सुरेश्वराः ।
मदीयं कल्पमाजग्मुरैशानेन युवामपि ॥६३॥

इतिहासमपृच्छंस्ते मामिन्द्रा' श्रोतुमिच्छवः ।
युगन्धरजिनस्याहं कथामाकथये तदा ॥६४॥

जम्बूद्वीपविदेहेऽभूदितः सप्तमजन्मनि ।
सीताया दक्षिणे कूले सुसीमायां कुदर्शनः ॥६५॥

वादिप्रहसितो नाम्ना हेतुजातिच्छले रत. ।
आसीद्विकसितश्चास्य सखा शब्दविशारदः ॥६६॥ युग्मम् ।

आयात्पूर्वधरस्तत्र प्राप्तर्धिर्मतिसागरः ।
स नयैः कथयामास सद्धर्ममसृतालयम् ॥६७॥

श्रुत्वा प्रहसितो वादी प्रवव्राज समित्रकः ।
श्रुतज्ञानमुपोष्यान्ते महाशुक्रनिवास्यभूत् ॥६८॥

भुक्त्वैश्यं सवयस्योऽस्मात् षोडशाब्ध्युपमात्यये ।
द्वितीयद्वीपपाश्चात्ये विदेहे पुण्डरीकिणी ॥६९॥

राजा धनञ्जयस्तत्र भार्या चास्य यशस्विनी ।
द्वितीया जयसेनेति हलचक्रधरौ तयो. ॥७०॥

महातिबलनामानौ भूत्वा भुक्त्वा नरेशताम् ।
प्राप्ते च चक्रिणा दु.खे प्रवव्राज हलायुधः ॥७१॥ चतुष्कम् ।

पार्श्वेऽसौ शिवगुप्तस्य कृत्वा दुश्चरसत्तपः ।
प्राणतं कल्पमारोहद्विंशत्यब्ध्युपमायुपम् ॥७२॥

ललिताङ्गने मुझे संबोधित किया था इसलिए वे मुनिराज हम दोनोंके गुरु हुए ॥६०॥ मनोहरीके संबंधसे मैंने इसके पूर्व हुए इक्कीस ललिताङ्ग देवोंकी पूजा की। जो कि सागरोपम आयुवाले थे ॥६१॥ हे पुत्रि उन ललिताङ्गोंमेंसे तुमसे सम्बन्धित बाईसवां ललिताङ्ग है वह स्वयम्बुद्ध मंत्रीके उपदेशसे जिनपूजाके प्रभावसे हुआ है ॥६२॥

एक और स्मरणकी बात कहता हूँ सुनो। मेरे स्वर्गमें ब्रह्मेन्द्रादि देवता तथा ऐशान स्वर्गसे तुम दोनों दम्पति आये थे ॥६३॥ उन इन्द्रोंने युगन्धर जिनराजका इतिहास सुननेकी इच्छासे मुझसे पूछा तब मैंने यह कथा कही थी ॥६४॥

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें सीता नदीके दक्षिण किनारेपर सुसीमा नगरीमें उस भवसे सातवें भव पूर्वमें एक प्रहसित नामका वादी था, वह मिथ्यादृष्टि तथा हेतु, जाति, और छलमें प्रवीण था। उसका मित्र विकसित था जो कि शब्दशास्त्रमें विशारद था ॥६५-६६॥ वहांपर ऋद्धिधारी दश पूर्वोंके जानकार मतिसागर नामके मुनि आये। उन्होंने नयपूर्वक मधुर सद्धर्मका उपदेश दिया ॥६७॥ प्रहसित उनके वचनोंको सुनकर मित्र सहित दीक्षित हो गया और श्रुतज्ञान तपका आराधनकर अन्तमें महाशुक्र स्वर्गमें देव हुआ। वहाँ मित्र सहित भोगोंको भोगकर सोलह सागर प्रमाण आयुके समाप्त होनेपर दोनों धातकीखण्ड द्वीपके पश्चिम विदेहकी पुण्डरीकिणी नगरीमें राजा धनञ्जय और उसकी दो रानी यशस्विनी और जयसेनासे बलभद्र और नारायण हुए। उनका नाम क्रमसे महाबल और अतिबल था। राज्यको भोगकर अपने भाई नारायणका वियोग होने पर बलभद्र महाबलने दीक्षा ले ली ॥६८-७१॥ फिर शिवगुप्त मुनिके पास कठिन तप करके प्राणत स्वर्गमें गये जहाँ कि बीस सागर

ततश्च्युतो धातकीखण्डे प्राच्ये जातः प्रभङ्करे ।
महासेनस्य सुन्दर्य्यां जयसेनोऽयमङ्गभृत् ॥७३॥

श्रीमन्धरमुनेः पार्श्वे प्रव्रज्योग्रतपोरतः ।
बबन्ध तीर्थकृन्नाम सम्यक् षोडशकारणैः ॥७४॥

सिंहनि क्रीडितं कृत्वा ग्रैवेयेपूर्ध्वमव्ययम् ।
सम्प्राप्य त्रिंशदब्ध्यायुरहमिन्द्रोऽभवं ततः ॥७५॥

पूर्वस्मिन् पुष्करद्वीपे विदेहे रत्नसञ्चये ।
अजितस्य सुतः ख्यातो वसुमत्यां युगन्धरः ॥७६॥

असौ लौकान्तिकैर्देवैर्बोधितो दीक्षितः स्वयम् ।
विहत्य घातिकर्म्माणि प्राप्तानन्तचतुष्टयः ॥७७॥

प्रदिश्य धर्मं सुहितं शरीरिणां
प्रबोध्य भव्यान् हितकांक्षिणो बहून् ।
विहृत्य भूमिं नृसुरासुरार्चितो
जगाम मोक्षं भगवान्युगन्धरः ॥७८॥

इति पुरुदेवचरिते पुराणसंग्रहे युगन्धर-निर्माणगमनो नाम प्रथमः सर्गः समाप्तः ।

की आयु है ॥७२॥ वहाँसे च्युत होकर धातकीखण्ड द्वीपके पश्चिम मेरुकी पूर्व दिशावाले विदेहमें प्रभाकरी नगरीके राजा महासेन और रानी सुन्दरीसे जयसेन नामका पुत्र हुआ ॥७३॥ उसने श्रीमन्धर जिनराजके समीप दीक्षा लेकर उग्र तपको तप कर षोडश कारण भावनाओंका अच्छी तरह आराधन किया तथा तीर्थंकर प्रकृति बांधी ॥७४॥ वह सिंहनिष्क्रीडित व्रत करके आठवें ग्रैवेयकमें तीस सागरकी आयुवाला अहमिन्द्र हुआ। फिर वहाँसे च्युत हो पुष्करार्ध द्वीपके पूर्व सुमेरु पर्वतके पूर्व विदेह मे रत्नसंचय नगरके राजा अजितंजय और रानी वसुमतीके युगन्धर नामका पुत्र हुआ ॥७५-७६॥ लौकान्तिक देवोंसे सम्बोधित होकर उसने दीक्षा ले ली और चार घातिया कर्मोंका नाशकर अनन्त चतुष्टय (अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य) को प्राप्त किया ॥७७॥ उन्होंने प्राणियोंको हितकारी धर्मका उपदेश देकर और आत्महित चाहनेवाले बहुतसे भव्योंको प्रबोधितकर सकल भूमिमे विहार किया। तथा मनुष्य, देव और असुरोंसे पूजित होकर अन्तमें भगवान् युगन्धर मोक्ष पधारे ॥७८॥

इस प्रकार पुराणसंग्रहके पुरुदेव चरितमें युगन्धर स्वामीका निर्वाण नामक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

द्वितीय सर्ग

स्थितिर्धर्मानुबन्धस्य पट्षष्ठ्या सागरैः समा ।
इति प्रोक्तं मया पुत्रि यत्तत्किं नु न बुध्यसे ॥१॥

केवलज्ञान उत्पन्ने पिहितास्त्रवसद्गुरोः ।
गमिष्यामोऽभिजानासि नभस्तिलकपर्वतम् ॥२॥

ब्रह्मेन्द्रो लान्तवोऽहं च त्वत्प्रियस्त्वञ्च पुत्रिके ।
अयामैकविमानस्थाः स्वयम्भूरमणं वयम् ॥३॥

स्वल्पञ्चाशत्सहस्राणि पूर्वाणि प्रागतश्च्युतः ।
यशोधरमहादेव्यां वज्रदन्तोऽभवं सुत. ॥४॥

द्वाविंशो ललिताङ्गो यस्तावकीनस्ततश्च्युतः ।
स्वस्रीयो मेऽभवत्तेन समेष्यसि दिनत्रये ॥५॥

इत्युक्त्वा राजराजोऽपि सुतां व्रीडानताननाम् ।
प्रत्युद्गच्छामि माम्यास्ते प्रविशेति बहिर्ययौ ॥६॥

तदा पण्डितिकाऽऽगम्य हर्षोत्फुल्लमुखेक्षणा ।
कथयामास वृत्तान्तं पट्टकस्य जिनालये ॥७॥

अभूतमद्भुतं चित्रं मया वीक्ष्य प्रसारितम् ।
किमर्थं किन्नु कस्येति स्त्रीपुंसो विस्मयं गताः ॥८॥

कन्येयं वर्णतः श्यामा लिखिता पट्टके तया ।
श्रीमतीं सुव्रतां मन्य इत्यूचुस्तत्र केचन ॥९॥

दुर्दान्तवासवाद्याश्च छलन्तश्छलिकान् परान् ।
विपरीतं ब्रुवाणास्ते मामूस्थचिरयाऽनया ॥१०॥

द्वितीय सर्ग

हे पुत्रि ! इस प्रकार धर्मके प्रभावसे प्रहसितने छयासठ सागर तक स्वर्ग सुख भोगकर मोक्ष प्राप्त किया। यह कथानक जो मैंने कहा वह क्या तुम्हें याद नहीं आ रहा है ? पिहितास्रव मुनिराजको जब केवलज्ञान हुआ था और हम लोग नभस्तिलक पर्वतपर गये थे, उसकी याद शायद तुम्हें होगी ही ॥२॥ हे पुत्रि, ब्रह्मेन्द्र, लान्तवेन्द्र, मैं तुम्हारा पति और तुम एक विमानमें बैठकर स्वयम्भूरमण समुद्र गये थे, याद है न ॥३॥

तुमसे पचास हजार पूर्व (संख्या प्रमाण) वर्ष पहिले च्युत होकर मैं यशोधर और महादेवीसे वज्रदन्त नामका पुत्र हुआ हूँ ॥४॥ तुम्हारा वह बाईसवाँ ललितांग स्वर्गसे च्युत होकर मेरा भानजा हुआ है और वह यहाँ तीन दिनमें ही आनेवाला है ॥५॥ लज्जासे नतमुखी अपनी पुत्रीको इस प्रकार कहकर वह चक्रवर्ती भी "मै तुम्हारी मामीके आनेका स्वागत करने जाता हूँ" कहता हुआ बाहर चला गया ॥६॥ उसी समय हर्षित मुख और नेत्रवाली पण्डिता धायने आकर जिनालयमें हुए चित्र सम्बन्धी वृतान्तको सुनाया कि मेरे द्वारा फैलाये गये इस अभूतपूर्व अद्भुत चित्रको देखकर "यह किस लिए है क्या है, किसका है ?" इस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों आश्चर्यमे पड़ गये ॥७-८॥ कोई कहने लगे कि इस चित्रपटमें यह वर्णासे श्यामा कन्या चित्रित की गई है। मालूम होता है कि यह सुव्रता श्रीमती है ॥९॥ वहाँ दूसरे छलियोंको छलनेवाले दुर्दान्त और वासव आदि भी आये थे जो उलट-सुलट बोल रहे थे किन्तु इस पण्डिता धायने उन्हें अनादृत कर दिया ॥१०॥

ततः स परिषदोऽन्ते सम्प्राप्य गजविक्रमः ।
त्रिःपरीत्य वन्द्येशान् प्राविशत्पट्टकालयम् ॥११॥

आत्मन. पूर्वचरितं क्रमेणालोक्य पट्टके ।
सोऽभादीद् दीर्घमुच्छ्वस्य स्मृत्वा पत्नीं पुरातनीम् ॥१२॥

स्वयंप्रभाचरी नूनमालिखन्मार्गणाय माम् ।
पण्डितेभ्य इहान्येभ्यो भीत्वा किञ्चिज्जुगूह च ॥१३॥

गूढानि प्रकृतानीह कस्मिन् कानीति चोदिते ।
अभाषिष्ट त्वयोक्तानि सोऽस्मिन्सोऽस्मिन्निति ब्रुवन् ॥१४॥

सुता कस्येति सोऽपृच्छदवोचं मातुलस्य ते ।
इति प्रोक्ते गृहीत्वा तं ललिताङ्गचरोऽगमत् ॥१५॥

वज्रबाहुनरेन्द्रस्य सूनुरुत्पलखेटके ।
वसुन्धर्य्याम्महादेव्यामजनि श्रीप्रभाच्च्युतः ॥१६॥

सोऽपि पैतृस्वस्त्रीयस्ते वज्रजङ्घश्च नामतः ।
अद्राक्षमहमित्युक्ते जहर्ष प्राश्लिष्ट च ॥१७॥

जामातरं स्वसारञ्च प्रत्युद्गत्य नृपोत्तमः ।
आनीय स्वपुरं तुष्ट्या विवाहोत्सुकमानसः ॥१८॥

पूर्वं जिनेन्द्रदेवस्य किरीटमणिसंकटैः ।
घृष्टपादाङ्घ्रिजिनान् सम्यगर्चयित्वाऽतिकोविदः ॥१९॥

ततः पूजां तयोः कृत्वा सुतां तस्मै ददौ नृपः ।
महादानैर्महर्ध्या च सोऽपि विस्मापयन् सुरान् ॥२०॥

तौ द्वात्रिंशत्सहस्राणि कल्याणस्नानकानि च ।
अवाप्यारेमतुः पुण्याज्जिनपूजाफलोद्भवात् ॥२१॥

इसके बाद सबके अन्तमें अति पराक्रमी उस वज्रजंघने आकर जिनेन्द्रकी तीन प्रदक्षिणा दी और पीछे चित्रशालामें प्रवेश किया ॥११॥ उस चित्रपटपर अपने पूर्व जन्मोकी बातोंको देखकर अपनी पूर्वजन्मकी पत्नीका स्मरण किया और लम्बी श्वास लेकर कहने लगा ॥१२॥

मुझे खोजनेके लिये ही स्वयंप्रभाके जीवने निश्चयसे यह चित्र खींचा है परन्तु अन्य चतुर दर्शकोंसे डरकर इस चित्रमें कुछ बातें छिपा दी गई हैं ॥१३॥ इस चित्रमे किस स्थानमे क्या-क्या गूढ़ है ऐसा प्रश्न करनेपर तुम्हारे द्वारा बतलाये गये सभी संकेतोंको "इस जगह यह गूढ़ है इस जगह यह गूढ है" कहते हुए उस वज्रजंघने बतला दिया ॥१४॥ और मुझसे पूछा कि यह किसकी लड़की है तब मैंने कह दिया कि यह तुम्हारे मामा की पुत्री है। यह सुनकर वह ललिताङ्गका जीव उस चित्रको लेकर चला गया ॥१५॥

वह उत्पलखेट नगरमें श्रीप्रभ विमानसे च्युत होकर वज्रबाहु राजा और महादेवी वसुन्धरीसे वज्रजंघ नामका पुत्र पैदा हुआ है और वह तुम्हारा फुफेरा भाई है, मैंने उसे देखा है। यह सुन श्रीमती प्रसन्न हुई और धायका आलिंगन किया ॥१६-१७॥ विवाह करनेके लिए उत्सुक उसके पिताने भी जामाता और बहिनको प्रसन्नता-पूर्वक अपने नगरमें लाकर उनका स्वागत किया ॥१८॥ उस विद्वान् राजाने देवेन्द्रोसे पूजित जिन भगवान्‌की पहिले अच्छी तरह पूजा की, फिर अपनी बहिन और भानजेका सत्कार किया और वज्रजंघके लिए अपनी पुत्री विवाह दी। उस विवाह में अति सत्कार और दानसे उस राजाने देवताओंको भी चकित कर दिया था ॥१९-२०॥ वे दोनों और बत्तीस हजार स्नेही मित्र मिलकर जिन पूजन करनेसे प्राप्त पुण्यका आनन्द लेने लगे ॥२१॥

पश्चात्स्वपुरमायातौ प्राप्तपूजौ सपुत्रकौ ।
वज्रबाहुः स्वके राज्ये वज्रजङ्घमतिष्ठिपत् ॥२२॥

भोगान्विहाय निर्विण्णः श्रित्वा यमधरम्मुनिम् ।
हत्वा कर्माष्टकं घोरमपवर्गमवाप सः ॥२३॥

पूर्वाणाञ्च सहस्राणि बहूनीयुस्तयोः सुखम् ।
सशावत्कुर्वतो राज्यं श्रीमतीवज्रजङ्घयोः ॥२४॥

युग्मान्नैकोनपञ्चाशत्पुत्राणामभवस्तयोः ।
वीरबाहुसुबाह्वाद्यास्तेऽपि सर्वे प्रवव्रजु. ॥२५॥

प्रासादाऽग्रेऽन्यदा स्वैरमुपविष्टावपश्यताम् ।
आकाशे पुरुषौ शीघ्रमायान्तौ सकरण्डकौ ॥२६॥

खेन्द्रो मन्दरमाली ते गन्धर्वनगराधिपः ।
तद्देव्या वनमालायाः पुत्राविति निवेद्य तौ ॥२७॥

खावतीर्णौ तु तौ दूतौ पादयोः पतितोत्थितौ ।
कुङ्कुमार्द्रभुजाभ्यां च ददतुस्तौ समुद्रकम् ॥२८॥ युग्मम् ॥

सलाञ्छन विवृत्याऽथ शक्रालेखमदर्शताम् ।
वाचयामासतु. स्पष्टं दु.खानन्दार्द्रलोचनैः ॥२९॥

भृंगं तं प्रावृतं प्रेक्ष्य वज्रदन्तो दशाङ्गिकाम् ।
नारीमिव पराक्रान्तां विजहौ राजराजताम् ॥३०॥

उक्तञ्च—

दिव्य पुरं रत्नमथो निधिश्च दिव्यं मिथो भोजनभाजनञ्च ।
शय्यासनं भूपणमम्बरञ्च नाट्येन सार्धं दश चाङ्गभोगाः ॥३१॥

इसके बाद वज्रबाहु और वसुन्धरा सत्कार प्रतिष्ठा पाकर पुत्र और पुत्रवधू सहित अपने नगरमे आये। फिर वज्रबाहुने अपने राज्य पदपर वज्रजंघको अभिषिक्त कर दिया ॥२२॥ तथा विरक्त हो भोगोंको छोड़कर यमधर मुनिके पास दीक्षा ले ली और घोर तपस्या द्वारा अष्ट कर्मोंको नष्टकर मोक्ष पद पाया ॥२३॥ इधर उन दोनों श्रीमती और वज्रजंघके हजारो पूर्व वर्ष राज्य करते हुए क्षणके समान सुखसे व्यतीत हो गये ॥२४॥ उन दोनोंके वीरबाहु, सुबाहु आदि नामके ९८ पुत्र हुए और वे सब दीक्षित हो गये ॥२५॥ एक समय वे दोनो महलकी छतपर स्वेच्छापूर्वक बैठे थे। उन्होंने आकाशसे शीघ्रतापूर्वक आते हुए पिटारे सहित दो पुरुषोंको देखा ॥२६॥ उन दोनोंने आकर निवेदन किया कि हम गन्धर्व नगरके राजा मन्दरमाली विद्याधर और रानी वनमालाके पुत्र हैं ॥२७॥

उन दोनों दूतोंने आकाशसे नीचे उतरकर श्रीमती और वज्रजंघके चरणोंमें नमस्कार किया और उठकर उन दोनोंने कुंकुमसे लाल भुजाओ द्वारा वज्रजंघ और श्रीमतीको वह पिटारा दे दिया ॥२८॥ मुहर लगे हुए उस पिटोरेको खोलकर उसमे उन दोनोंने एक पत्र देखा तथा दुख और आनन्दसे सजलनेत्र होकर उस पत्रको वांचा ॥२९॥ मालूम हुआ कि वज्रदन्त चक्रवर्तीने कमलमें बन्द भौंरेको देख दशाङ्ग भोगवाले अपने राजपाटको दूसरोंसे भोगी गई नारीके समान छोड़ दिया है ॥३०॥ दशाङ्ग भोगोंके नाम क्रमशः ये हैं:—दिव्य नगर, दिव्य रत्न, दिव्य निधि, दिव्य भोजन, दिव्य भाजन, दिव्य शय्या, दिव्य आसन, दिव्य भूषण, दिव्य वस्त्र और दिव्य नाटक ॥३१॥

नगर्यां पुण्डरीकाह्वं प्रतिष्ठाप्य स्वपुत्रजम् ।
प्रवव्राज नरेन्द्रेन्द्रो वहुभिः क्षत्रियैरसौ ॥२२॥

विंशतिस्ते सहस्राणि नृपाः सोमार्कवर्चस. ।
सहस्रं सूनवश्चाऽपि सम्राज येऽनुदीक्षिताः ॥२३॥

राज्ञीनां तु सहस्राणि षष्टिः पण्डितया सह ।
प्राव्राजिषुर्विसृज्यैदयं कुशाग्रस्थमिवोदकम् ॥२४॥

अनुन्धरिसुतं बाल वर्द्धयेथां युवामिह ।
इति शास्ते महादेवी ह्यागम्यालेख्यदर्शनात् ॥२५॥

चिन्तागतिमनोगत्योस्तयोः श्रुत्वा तु वाचिकम् ।
निरगातां ससैन्यौ तु तूर्णमतिवरोदितौ ॥२६॥

महाशष्पवनम्प्राप्य श्रित्वा शष्पसरोवरम् ।
स्कन्धावारोऽमुचत्तत्र ह्यानन्दाकम्पनेरितः ॥२७॥

दत्वा सागरसेनाय दानं दमवराय च ।
आदाय नवपुण्यानि सम्प्राप्तौ पुण्डरीकिणीम् ॥२८॥

उक्तञ्च—

स्थापनमुच्चैः स्थानं पादोदकमर्चनं प्रणामश्च ।
वाक्कायहृदयशुद्धय एषणाशुद्धिश्च नवविधं पुण्यम् ॥२९॥

दृष्ट्वा देवी कुमारञ्चाप्यनुशिष्य वचोऽमृतैः ।
किञ्चित्कालमुषित्वात्र जग्मतुः स्वपुरं पुनः ॥४०॥

कालागुरुकधूपाढ्ये शयितौ गर्भवेश्मनि ।
मृत्वोत्तरकुरुष्वास्तामाशु दानेन दम्पती ॥४१॥

दशप्रकारवृक्षेभ्यो निर्मितो मानुषोत्तमम् ।
त्रीणि पल्यानि लभेतां दानपुण्योद्भवात्फलम् ॥४२॥

अपने पौत्र पुण्डरीकको राजगद्दीपर बैठाकर वह चक्रवर्ती बहुतसे क्षत्रियोंके साथ दीक्षित हो गया। इतना ही नहीं चन्द्र और सूर्य जैसा तेज रखनेवाले बीस हजार राजा और हजार राजपुत्र चक्रवर्तीके पीछे दीक्षित हो गये ॥३२-३३॥ तथा पण्डिता धायके साथ साठ हजार रानियोंने भी ऐश्वर्य भोगको कुशाग्रके पानी समान छोड़कर दीक्षा ले ली ॥३४॥ अब आप दोनों आकर अनुन्धरीके पुत्र उस बालक पुण्डरीकका पालन करें ऐसा महादेवी लक्ष्मीमती पत्र द्वारा आप दोनोंको निवेदन करती है ॥३५॥

चिन्तागति और मनोगतिके द्वारा उस पत्रको सुनकर मतिवर मंत्रीसे सलाह लेकर वे दोनों सैन्य सहित शीघ्र चले ॥३६॥ महाशष्प नामके वनमें पहुँचकर शष्पसरोवरके किनारे आनन्द नामके सेठ और अकम्पन नामके सेनापतिकी सलाहसे सेनाका पड़ाव डाल दिया ॥३७॥ वहाँ उन दोनों राजा-रानीने सागरसेन और दमवर मुनिको दान दिया और दाताके नव पुण्योंका लाभ लेकर पुण्डरीकिणी नगरीको गये ॥३८॥ नव पुण्य इस प्रकार हैं:—(१) पड़िगाहना (२) ऊँचे स्थानमें स्थापित करना (३) पैर धोना (४) पूजा करना (५) प्रणाम करना (६) वचन शुद्धि (७) काय शुद्धि (८) मनशुद्धि (९) एषणा शुद्धि। ये नव प्रकारके पुण्य हैं ॥३९॥ वहाँ महादेवी लक्ष्मीमती और कुमार पुण्डरीकको देखकर तथा मधुर वचनोंसे समझाकर, वे लोग वहाँ कुछ दिन तक रहे फिर अपने नगरको लौट आये ॥४०॥

एक समय अगुरु धूपके धुएसे व्याप्त शयनागारमें सोते हुए दोनों मृत्युको प्राप्त हुए और दान देनेकी माहात्म्यसे वे दोनों उत्तरकुरुमें भोगभूमियां हुए ॥४१॥ दश प्रकारके कल्पवृक्षोंसे निर्मित उस भोगभूमिमें तीन पल्यकी आयु पाकर उन्होंने दानके पुण्य-फलको भोगा ॥४२॥

उक्तञ्च—

मद्याङ्गतूर्याङ्गविभूषणाङ्गा ज्योतिर्गृहा भोजनभाजनाङ्गाः ।
प्रदीपवस्त्राङ्गवरस्रजङ्गा दशप्रकारास्तरवस्तु तत्र ॥४३॥

कदाचित्सूर्यदेवस्य दृष्ट्वा यान(यि)विमानकम् ।
अथ सस्मरतुर्जातिमन्योऽन्यप्रियवर्तिनौ ॥४४॥

आगतौ चारणौ वीक्ष्य सन्निविष्टौ शिलातले ।
मूर्ध्ना प्रणम्य पप्रच्छ के यूयमागताः कुतः ॥४५॥

उवाचाहं स्वयंबुद्धस्तत्राकार्षं सुसंयमम् ।
सौधर्मे मणिचूलाख्यो देव आसं स्वयम्प्रभे ॥४६॥

अच्युतः पुण्डरीकिण्यां सुन्दरी-प्रियसेनयो. ।
भ्राता प्रीतिसुदेवोऽयं ज्यायान् प्रीतिंकरोऽस्म्यहम् ॥४७॥

स्वयम्प्रभार्हतः पार्श्वे दीक्षितौ प्राप्तलीलिकौ(ऋद्धिकौ) ।
वन्दित्वा जिनचैत्यानि दातु त्वां रत्नमागतौ ॥४८॥

इतोऽन्यदुत्तरं नास्ति न भूत न भविष्यति ।
इह सेत्स्यन्ति सिद्धाश्च तस्मात्सम्यक्त्वमुत्तमम् ॥४९॥

जीवादीनां पदार्थानां श्रद्धान बुद्धदेशितम् ।
त्रैलोक्यसारसर्वस्वं युवाभ्यां गृह्यतामिति ॥५०॥

दत्वा ताभ्यां त्रिरत्नाद्य गतावम्बरचारिणौ ।
अन्ते गृहीतसम्यक्त्वौ मृत्वा सौधर्ममीयुतुः ॥५१॥

श्रीप्रभे श्रीधरो जज्ञे आर्यो देव. स्वयम्प्रभे ।
सम्यक्त्वात्स्त्रैणमुज्झित्वा साऽऽर्या जातः स्वयम्प्रभ· ॥५२॥

वहाँपर (१) मद्यांग (२) तूर्याङ्ग (३) विभुषणाङ्ग (४) ज्योतिरंग (५) गृहांग (६) भोज नांग (७) भाजनांग (८) प्रदीपांग (९) वस्त्रांग (१०) मालाग । ये दश जातिके कल्पवृक्ष है जो कि लोगोंको मनोवांछित भोग-सामग्री देते हैं ॥४३॥

किसी समय सूर्यदेवके विमानको आकाशमें जाता हुआ देखकर परस्पर अति स्नेहवाले उन दोनोंको जाति-स्मरण हो गया तथा वे मूर्च्छित हो गये ॥४४॥ फिर प्रबुद्ध होकर उन दोनोंने शिलातल पर आकर बैठे हुए दो चारण मुनियोंको देखा। शिरसे प्रणाम कर उनसे पूछा कि—हे प्रभु ! आप कौन हैं और कहांसे आये हैं ॥४४॥ उनमेंसे ज्येष्ठ मुनिने कहा कि मैं तुम्हारे 'महाबल' भवमें स्वयम्बुद्ध नामका मंत्री था। संयम धारण कर सौधर्म स्वर्गके स्वयम्प्रभ विमानमें मणिचूल नामका देव हुआ ॥४६॥ वहाँसे प्रच्युत होकर मैं पुण्डरीकिणी नगरीमे रानी सुन्दरी और राजा प्रियसेनका ज्येष्ठ पुत्र प्रीतिकर हुआ और यह मेरा छोटा भाई प्रीतिदेव है ॥४७॥ हम दोनोंने स्वयंप्रभ जिनराजके समीप दीक्षा लेकर तपवलसे चारण ऋद्धि पाई है। अभी जिन-प्रतिमाओंकी वन्दना करके यहाँ तुम्हें सम्यक्त्वरूप रत्न देनेको आये हैं ॥४८॥ इस रत्नसे वढ़कर संसारमें न कोई वस्तु है, न हुई है और न होगी। उससे ही भव्य प्राणियोंने मुक्ति पाई है, तथा आगे पायेंगे, इसलिए सम्यक्त्व सबसे श्रेष्ठ है ॥४९॥ जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट जीवादि पदार्थोंका श्रद्धानरूप सम्यक्त्व ही तीन लोकोंमें सार है और उसे आप दोनो ग्रहण करें ॥५०॥ उन दोनोंको इस तरह रत्नत्रयमें आद्य रत्न सम्यक्त्वको देकर वे चारण मुनि चले गये। अन्तमें सम्यग्दर्शनको धारण करके मर वे युगलिया सौधर्म स्वर्ग गये ॥५१॥ वज्रजंघका जीव श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर देव हुआ तथा सम्यक्त्वकी महिमासे श्रीमतीका जीव, स्त्री-पर्याय को छोड़कर स्वयम्प्रभ विमानमें स्वयम्प्रभ देव हुआ ॥५२॥

उत्पन्ने केवलज्ञाने श्रीप्रभे पर्वतेऽन्यदा ।
श्रीतिङ्करस्य पूजार्थमाजग्मुनृ सुरासुराः ॥५३॥

पप्रच्छ श्रीधरस्तत्र संशयं मुनिवन्दनम् ।
त्रयोऽपि मन्त्रिणस्ते मे कुत्रेत्युक्तिं जगाद सः ॥५४॥

निगोदेऽनन्तसंसारे तौ सम्भिन्नमहामती ।
वर्तेते शतबुद्धिश्च नरके घोरवेदने ॥५५॥

एवमुक्ते ततो गत्वा बोधयामास नारकम् ।
सम्यक्त्वं प्रतिपद्याऽसौ कालेनोद्वर्तितः क्रमात् ॥५६॥

पुष्करद्वीपपूर्वस्मिन् विदेहे रत्नसञ्चये ।
महीधरस्य सुन्दर्य्यां सुतोऽभूच्चक्रवर्त्तिन· ॥५७॥

विवाहहेतुनिर्विण्णः श्रित्वा यमधरं मुनिम् ।
जयसेनस्तपस्कृत्वा ह्यभवद् ब्रह्मकल्पराट् ॥५८॥ ॥युग्मम्॥

कथयन्त सुधर्मायां विबुधेभ्योऽनुरञ्जिनीम् ।
श्रीधरं पूजयामास ब्रह्मेन्द्रो देवसद्मनि ॥५९॥

तं दृष्ट्वा विस्मिता देवास्तयोः श्रुत्वा च सङ्गतम् ।
तत्र श्रद्धाय सम्यक्त्वं बहव· प्रतिपेदिरे ॥६०॥

स समुद्रोपमं भोगं भुक्त्वाऽत· श्रीधरश्च्युत· ।
प्राग्विदेहेषु वत्साह्वे सुसीमायामुभौ पुरी ॥६१॥

देव्यां सुन्दरनन्दायां सुदृष्टे· सुविधिः सुतः ।
तत्सूनुः केशवो नाम्ना सुन्दर्य्यामितरोऽभवत् ॥६२॥ युग्मम्॥

आसीदभयघोषस्य तत्सखश्चक्रवर्तिनः ।
सम्प्रापद्धर्मचक्रेशस्तथा विमलवाहन· ॥६३॥

एक समय श्रीप्रभ पर्वतपर प्रीतिंकर तीर्थंकरको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। उनकी पूजा करनेके लिए मनुष्य देव और असुर आये ॥५३॥ उस श्रीधर देवने भी मुनिराजकी वन्दना कर पूछा कि महाराज! हमारे शेष तीन मिथ्यादृष्टि मन्त्री कहाँ हैं? इस पर केवली भगवान्‌ने उत्तर दिया ॥५४॥ कि वे संभिन्न-मति और महामति नामके मंत्री अनन्त भ्रमणवाले निगोदमें पड़े हैं और शतबुद्धि मंत्री (दूसरे) नरकमें घोर दुःख सह रहा है ॥५५॥ यह सुनकर श्रीधर देवने जाकर उस नारकीको समझाया और सम्यक्त्व धारण कराया। वह शतमति भी अपनी आयु समाप्त होनेपर नरकसे निकल कर पुष्करार्ध द्वीपमें पूर्व विदेहके रत्न संचयपुरमें चक्रवर्ती महीधर और महादेवी सुन्दरीके जयसेन नामका पुत्र हुआ। वह अपने विवाहके समय ही श्रीधर देव द्वारा पुनः संबोधित हो विरक्त हुआ और यमधर मुनिके पास दीक्षा ले ली। पश्चात् वह जयसेन तप करके ब्रह्म स्वर्गका इन्द्र हुआ ॥५६-५९॥ सुधर्मा नामकी सभामें देवताओंको प्रसन्न करनेवाली कथा कहते हुए उस श्रीधरकी ब्रह्मेन्द्रने स्वर्गमें बड़ी पूजा की। यह देख सभी देव विस्मित हुए, तथा उन दोनोंके सम्बन्धको श्रवणकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उनमेंसे बहुतोंने सम्यक्त्व धारण किया ॥६०॥ इसके बाद एक सागर पर्यन्त भोगोंको भोगकर श्रीधर देव वहाँसे च्युत हुआ, और जम्बूद्वीपमें, पूर्व विदेहके वत्सकावती देशकी सुसीमा नगरीमें सुदृष्टि राजा और रानी सुन्दरनन्दाके घर सुविधि नामका पुत्र हुआ। तथा स्वयंप्रभ नामा देव सुविधि की सुन्दरी स्त्रीसे केशव नामका पुत्र हुआ ॥६१-६२॥

एक समय उस सुविधिकुमारके श्वसुर चक्रवर्ती अभयघोष, धर्म-चक्रवर्ती विमलवाहन मुनिराजके पास गये। उसने सम्पूर्ण

तत्पार्श्वे चक्रभृत्त्यक्त्वा राजराज्यमदीक्षत ।
विषवद् भूमिपैः सार्धमष्टादशसहस्रकैः ॥६४॥

पुत्राः पञ्चसहस्राणि चक्रिणा सह दीक्षिताः ।
सुविधिः केशवस्नेहादुत्कृष्टः श्रावकोऽभवत् ॥६५॥

दीर्घकालं विहृत्यान्ते कृत्वा सल्लेखनामुरम् ।
समुत्पेदेऽच्युते कल्पे प्राप्य तत्र प्रतीन्द्रताम् ॥६६॥

अथ देशव्रती भूत्वा केशव. श्रीधरान्तिके ।
आराध्य सोऽपि तत्रैव तस्य सामानिकोऽभवत् ॥६७॥

द्वाविंशतिसमुद्रान्तं भुक्त्वैश्यमवतेरतुः ।
जम्बूद्वीपविदेहेषु प्राक्तनीं पुण्डरीकिणीम् ॥६८॥

सुविधिर्वज्रनाभोऽभूच्छ्रीकान्तावज्रसेनयो. ।
इतरो धनदेवोऽत्र ह्यनन्तश्रीकुबेरयोः ॥६९॥

आद्यः पीठो महापीठः सुबाहुश्च तृतीयकः ।
शूर्योऽथ महाबाहुर्भ्रातरः पूर्वबान्धवाः ॥७०॥

त्रिंशच्छतसहस्राणि पूर्वाण्यासीत् कुमारराट् ।
ततो लौकान्तिकैर्देवैः प्राव्राजीद् बोधितः पिता ॥७१॥

तावन्त्येव च पूर्वाणि प्रचक्रे चक्रवर्त्तिताम् ।
धनदेवोऽपि तस्यासीद् गृहे रत्नपतिर्हितः ॥७२॥

अथान्यदा प्रबुद्धः (स) देवैरपि च कामिताम् ।
म्लानामिव शिरोमालां व्यसृजत्पुष्कलावतीम् ॥७३॥

दत्त्वैश्यं वज्रदन्ताय पीठाद्यैः भ्रातृभिः सह ।
संयमे स्वपितुस्तीर्थे तस्थौ सधनदेवकः ॥७४॥

एकादशसहस्राणि नरेन्द्रा रुद्रतेजसः ।
शतमात्रा स्वपुत्राश्च संयम प्रतिपेदिरे ॥७५॥

राज्यको विष-तुल्य छोड़कर अठारह हजार राजाओंके साथ दीक्षा ले ली। उस चक्रवर्तीके साथ पाँच हजार पुत्रोंने भी दीक्षा ले ली ॥६३-६४॥ सुविधिने अपने पुत्र केशवके स्नेहसे दीक्षा न लेकर उत्कृष्ट श्रावकके व्रत धारणकर लिये। तथा वहुत समय तक विहारकर अन्तमें सल्लेखना-पूर्वक शरीर त्याग किया, और अच्युत स्वर्गमें प्रतीन्द्र पदवी पाई। केशव भी श्रीधर मुनिके समीप देशव्रत (श्रावक व्रत) धारणकर, अन्तमें समाधिमरण कर उसी स्वर्गमे सामानिक देव हुआ ॥६५-६७॥ वाईस सागर पर्यन्त ऐश्वर्यको भोगकर वे वहांसे च्युत हुए, तथा जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमे पुण्डरीकिणी नगरीके राजा वज्रसेन और श्रीकान्ता रानीसे सुविधिका जीव देव तो वज्रनाभि नामका पुत्र हुआ। तथा केशवका जीव इसी नगरमें सेठ कुवेरदत्त और अनन्तमतीके यहाँ धनदेव नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥६८-६९॥ वज्रजंघके भवमे जो मंत्री, पुरोहित, सेनापति और सेठके जीव थे वे सब पीठ, महापीठ, सुवाहु और महावाहु नामके वज्रनाभिके भाई हुए ॥७०॥ उस वज्रनाभिकी तीस लाख पूर्व प्रमाण कुमारावस्था थी। उसके पिताने लौकान्तिक देवोंसे सम्बोधित होकर जिन-दीक्षा ले ली ॥७१॥ वज्रनाभिने तीस लाख पूर्व-प्रमाण चक्रवर्ती पद भोगा। उसका मित्र धनदेव उसका गृहपति रत्न था ॥७२॥

एक समय यथार्थ ज्ञानके उदय होनेसे राजा वज्रनाभिने देवताओं द्वारा अभिलषणीय उस पुष्कलावती देशको कुम्हलाई मालाके समान छोड़ दिया ॥७३॥ वज्रदन्त नामके पुत्रको राज्य देकर आठ भाइयोंके साथ और धनदेव मित्रके साथ अपने पिताके समीप दीक्षा ले ली ॥७४॥ महान् तेजवाले ग्यारह हजार राजा और उसके सौ पुत्रोंने भी दीक्षा ले ली ॥७५॥

द्वादशाङ्गं श्रुतज्ञानं सोऽध्यगीष्टातिश्रद्धया ।
सिंहनि-क्रीडितादीनि चकारोरुतपांसि च ॥७६॥

जगदग्रैश्यपण्यानि त्रैलोक्यक्षोभणानि च ।
कारणानि च जैनस्य भावयामास षोडश ॥७७॥

चक्रवर्त्ती स्वकालं स्वपञ्चभावनकं तपः ।
कृत्वान्ते श्रीप्रभं शैलमारुह्य प्राक्तनैः सह ॥७८॥

आराधनां तत्र चतुष्प्रकारामाराध्यमासानशनो जगाम ।
सर्वार्थसिद्धिं स निनाय तत्र कालं त्रयस्त्रिंशदथार्णवानाम् ॥७९॥

इति पुरुदेवचरिते पुराणसंग्रहे दामनन्द्याचार्यस्य कृती
सर्वार्थसिद्धिगमनो नाम द्वितीय सर्गः समाप्तः ।



निर्ग्रन्थ होकर उसने बड़ी श्रद्धाके साथ बारह प्रकारके श्रुतज्ञानका अभ्यास किया और सिंहनिष्क्रीडित आदि महान् तपोंको किया ॥७६॥ उस वज्रनाभिने तीर्थंकरप्रकृतिको बाँधनेवाली उन सोलह भावनाओंकी भावना की जो कि जगत्‌के श्रेष्ठ ऐश्वर्योंके लिए मूल्य-स्वरूप है और त्रैलोक्यमें हलचल पैदा करनेवाली हैं ॥७७॥ उस चक्रवर्तीने स्वकाल और स्वभावनाके अनुसार तप किये और अन्तमें अपने साथियों सहित श्रीप्रभ पर्वतके शिखरपर चढ़ चार प्रकारकी आराधनाओंकी आराधना की। एक मासका उपवास व्रत लेकर समाधिमरण कर सर्वार्थ-सिद्धि विमानमें अहमिन्द्र हुए और वहाँ तैंतीस सागर की आयु पाई ॥७८-७९॥

इस प्रकार दामनन्दी आचार्य विरचित इस पुराणसार संग्रहके पुरुदेव-चरितमें सर्वार्थसिद्धि गमन नामक द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।



तृतीयः सर्गः

इह भारतवासस्य विजयार्द्धस्य दक्षिणे ।
तृतीयस्याः समायास्तु प्रान्ते सङ्ख्येयवत्सरे ॥१॥

त्रयोदशस्वतीतेषु क्रमात् कुलकरेषु च ।
ततः कुलकरो जज्ञे नाम्ना नाभिः सुरार्चितः ॥२॥ युग्मम् ॥

तद्देवी मरुदेवीति सर्वश्रीभिरुपासिता ।
गजेन्द्रादीन् वरान् स्वप्नांस्तस्या सन्दर्श्य षोडश ॥३॥

सर्वेन्द्रान् कम्पयन् स्थानाद्रूपमादाय गोपतेः ।
स्वर्गाग्रादवतीर्यासौ गां देव्याः प्राविशन् मुखम् ॥४॥ युग्मम् ॥

नाभयेऽकथयद् देवी श्रुत्वा देवोऽप्यभाषत ।
आवां त्रैलोक्यनाथस्य प्राप्स्यावो गुरुतामिति ॥५॥

श्रीविद्युद्दिक्कुमारीभी रक्षितः शातमातुरः ।
जज्ञे नाथस्ततःकाले त्रैलोक्यमभिकम्पयन् ॥६॥

आश्वागम्य सुरेन्द्रास्तं नीत्वा मन्दरमस्तके ।
अभिषेकं प्रचक्रुस्ते महद्धर्या क्षीरवारिभिः ॥७॥

स्तुत्वाऽऽनीय जनन्यङ्के निक्षिप्यानन्दनाटकम् ।
आक्रीड्येशं गुरूंश्चापि सम्पूज्य स्वालयान्ययुः ॥८॥

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च वसुधारा दिने दिने ।
आजन्मनोऽपतद्दिव्या मासांस्तु दश पञ्च च ॥९॥

तृतीय सर्ग

इस भारतवर्षमें विजयार्द्धके दक्षिणमें तीसरे काल सुषम-दुषमाको बीतनेके जब कि संख्यात वर्ष शेष रह गये थे तब क्रमसे चौदह कुलकर हुए। उनमेंसे तेरह कुलकरोंका काल बीत जानेके बाद देवोंसे पूजित नाभि नामका कुलकर हुआ ॥१-२॥

उसकी रानी मरुदेवी सभी श्री आदि छहकुमारिका देवियोंसे सेवित थी अर्थात् श्री आदि देवियाँ उसकी सेवा करती थीं। उसने एक समय हाथी बैल आदि श्रेष्ठ सोलह स्वप्न देखे ॥३॥ तदनन्तर वह वज्रनाभिका जीव सभी इन्द्रोंके आसनोंको कँपाता हुआ सर्वार्थसिद्धिसे च्युत हुआ तथा इस पृथ्वी मण्डलमें आकर वृषभ रूपसे, उस मरुदेवीके मुखमें प्रवेश किया ॥४॥ तब मरुदेवीने नाभिराजासे सब बातें कहीं और नाभिराजाने उत्तर दिया कि हम दोनों त्रिभुवन-वन्द्य तीर्थंकरके माता-पिता होवेंगे ॥५॥

श्री ह्री आदि कुमारियोंसे माताके गर्भमें रक्षित वे भगवान् त्रैलोक्यको कम्पाते हुए यथासमय पर उत्पन्न हुए ॥६॥ तब इन्द्र आदिने शीघ्र आकर और भगवान्को सुमेरु पर्वतपर ले जाकर बड़े ठाठ-बाठके साथ क्षीरसागरके जलसे उनका अभिषेक किया। इसके बाद स्तुति करके उन्हें वापिस लाकर और माताकी गोदीमें विराजमान करके भगवान्की तथा उनके माता-पिताकी पूजा कर वे सब देवगण अपने-अपने धाम चले गये। पन्द्रह महीने अर्थात् गर्भ के छह मास पहलेसे लेकर भगवान्के जन्म होने तक प्रतिदिन स्वर्गसे साढ़े तीन करोड़ स्वर्ण-रत्नादिकी

अथ वैश्रवणो भक्त्या वासवस्याज्ञयाऽपि च ।
रयःकालानुयोगेन योगक्षेममुवाह सः ॥१०॥

देहो हेमनिभस्तस्य पञ्चचापशतोच्छ्रितः ।
वभूवाष्टसहस्रेष्टलक्षणव्यञ्जनाङ्कित. ॥११॥

यशस्वती-सुनन्दाभ्यां सुन्दरीभ्यां जगत्त्रये ।
रेमे च वल्गितस्ताभ्यां भाकान्तिभ्यामिवांशुमान् ॥१२॥

पुत्राणां शतमेकोनं सुतां चैकां यशस्वतीम् ।
सुषुवे वाहुवलिनं सुनन्दा सुन्दरीमपि ॥१३॥

अक्षराणि विभुर्ब्राह्म्या अकारादीन्यवोचत ।
वामहस्तेन सुन्दर्य्या गणितं चाऽप्यदर्शयत् ॥१४॥

अन्यदा सुखमासीनं पुरुं नाभिप्रचोदिताः ।
उपतस्थु. प्रजाः सर्वा जीविकोपायमीप्सवः ॥१५॥

किं नाथ करवामेति स्थिता वीचयानुकम्पया ।
प्रजाभ्यो दर्शयामास कर्मशिल्पकलागुणान् ॥१६॥

तत' सुरगणाः सेन्द्रा अभिषेकार्थमाययु' ।
नाभेयस्य प्रजानाञ्च वार्त्तासंस्थापनाय च ॥१७॥

मध्येऽर्धभरतस्याशु चक्रे वैश्रवणः पुरम् ।
साकेतं नामतः ख्यातं विनीतजनतावृतम् ॥१८॥

पुरग्रामाकरखेटादिराष्ट्रपत्तनमण्डिताम् ।
विभज्य वसुधां चक्रुर्देवा देवेन्द्रशासनात् ॥१९॥

तद्वार्त्तां लोकयात्रां च कर्मोपकरणानि च ।
चक्रिरे व्यवहारांश्च मनुजानीप्सवः सुराः ॥२०॥

ततो राज्याभिषेकं ते कृत्वा भगवतः सुराः ।
ददुस्त्रैलोक्यसाराणि दिव्यान्याभरणानि च ॥२१॥

वृष्टि होती रही ॥९॥ कुवेरने भक्तिसे और इन्द्रकी आज्ञासे उत्साहपूर्वक काल तथा ऋतुके अनुसार सब प्रकारका प्रबंध कर दिया था ॥१०॥ उन भगवान्का शरीर स्वर्णके समान कान्तियुक्त था। ऊँचाई पाँच सौ धनुष थी तथा शरीर एक हजार आठ शुभ लक्षण और व्यंजनोंसे युक्त था ॥११॥ तीनों जगत्में अति सुन्दरी यशस्वती और सुनन्दासे युक्त भगवान् ऐसे शोभित होते थे जैसे प्रभा और कान्तिसे संयुक्त सूर्य शोभित होता है ॥१२॥ यशस्वतीसे भरत आदि निन्यानवे पुत्रोंने और ब्राह्मी पुत्रने जन्म लिया। तथा सुनन्दासे बाहुबलि और सुन्दरीने जन्म लिया ॥१३॥ भगवान्ने अपनी पुत्री ब्राह्मीको दक्षिण हाथसे अकारादि अक्षर सिखलाये और बायें हाथसे सुन्दरीको गणित विद्या सिखाई ॥१४॥

एक समय सुखपूर्वक बैठे हुए ऋषभ भगवान्के पास, नाभि-राजा द्वारा भेजी गई सभी प्रजा, जीविकाका उपाय जाननेके लिए आई ॥१५॥ हे नाथ, हम क्या करें? ऐसा पूछनेपर दया-बुद्धिसे भगवान्ने प्रजाके लिए, कृषि आदि कर्म तथा शिल्पादि कलाओंको सिखलाया ॥१६॥ तदनन्तर देवगण इन्द्रों सहित ऋषभ भगवान्के राज्याभिषेक करनेके लिए तथा प्रजाके कुशल-क्षेमकी व्यवस्था के लिए आये ॥१७॥

कुवेरने शीघ्र ही आधे भरत क्षेत्रके बीचमें विनीत जनतासे परिपूर्ण साकेत नामसे प्रसिद्ध अयोध्या नगरको बसाया ॥१८॥ इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने पृथ्वीका विभागकर उसे पुर, ग्राम, आकर, खेट, राष्ट्र पत्तन आदिसे सुशोभित बनाया ॥१९॥ उन कुशल देवोंने जगत्में कृषि आदि कर्म, जीवन निर्वाहके उपाय और कार्य करनेके उपकरण-शस्त्रादिका बनाना सिखाकर लोक-व्यवहारको स्थापित किया ॥२०॥ तदनन्तर वे देवगण भग-वान्का राज्याभिषेक करके और तीन लोकमें सारभूत दिव्य वस्त्र-

राजक्षत्रोग्रभोगेभ्यो दत्त्वा सन्नगराकरान् ।
दिशन्कुर्वादिकान्नाथः शशास वसुधामिमाम् ॥२२॥

देवोपस्थापितान्भोगान् प्रत्यहं स मनोरमान् ।
नृपेभ्यः सोमप्रभादिभ्यश्चिरं रेमे विभाजयन् ॥२३॥

अलङ्काररसोपेतं नाटकाङ्गनयोत्कटम् ।
भक्त्येन्द्रशासनादेत्य नृत्यतीं देवनर्तकीम् ॥२४॥

नाम्ना नीलाञ्जनां साक्षाद् दर्शयन्तीमिवाङ्गजम् ।
निर्विवेद विभुर्वीक्ष्य सहसाऽभिनिचोदितः ॥२५॥

तदानीं बोधमायासुरेत्य लौकान्तिका जिनम् ।
कालः प्रवर्त्तयस्वेति धर्मतीर्थमिहेश्वर ॥२६॥

अथ सर्वेऽपि देवेशा ज्ञात्वा स्वासनकम्पनैः ।
परिनिःक्रमणे पूजां चक्रुरेत्य महर्द्धिकाम् ॥२७॥

क्षिप्रं वैश्रवणः कृत्वा शिविकां चातिसुन्दरीम् ।
तदोपस्थापयामास शक्रोऽपीशं व्यजिज्ञपत् ॥२८॥

पुरुः पुत्रशतं राज्ये प्रतिष्ठाप्यापहृत्य च ।
आपृच्छ्यान्तःपुरं चेशः आरुरोह सुदर्शनाम् ॥२९॥

पूर्वं नृपगणोत्क्षिप्ता मुहुस्तां विबुधेश्वराः ।
अदः क्रन्दितशब्दोऽभूदूर्ध्वमुत्कृष्टनादितम् ॥३०॥

गीतनाट्योपहारैश्च त्रिदशैः साप्सरोगणैः ।
सेव्यमानोऽथ सम्प्रापत्सिद्धार्थवनमीप्सितम् ॥३१॥

शिविकातोऽवतीर्याऽत्र वासांसि भूषणानि च ।
व्यजहात्पृथिवीञ्चेमां दोषिणीमिव योषितम् ॥३२॥

पञ्चमुष्टिस्ततः कृत्वा सन्तस्थे च दिगम्बरः ।
पार्थिवानां सहस्रैश्च चतुर्भिः सह संयमे ॥३३॥

आभरण आदिको देकर स्वर्ग चले गये ॥२१॥ पुनः भगवान्ने नाथवंशी, हरिवंशी, उग्रवंशी और कुरुवंशी आदि राजाओंको विभिन्न नगर, देश आदि देकर पृथ्वीका शासन किया ॥२२॥ उन भगवान्ने देवों द्वारा किये गये अर्थात् लाये गये मनोहर भोगोंको सोमप्रभादि राजाओंमें बाँटते हुए चिरकाल तक सुख भोगा ॥२३॥

एक समय नानारस और अलंकारोंसे युक्त और नाना हाव-भावोंसे सहित एक नाटक सभाके बीचमें इन्द्रकी आज्ञासे हो रहा था। वहाँपर साक्षात्कामदेवके रूपके समान नीलाञ्जना नामकी देवनर्तकी नृत्य कर रही थी। वह अचानक ही अदृश्य हो गई। यह देख प्रभुको वैराग्य हो गया ॥२४-२५॥ उसी समय, स्वर्गसे लौकान्तिक देवोंने आकर उन्हें सम्बोधा और कहा कि हे प्रभु! इस क्षेत्रमे धर्मतीर्थका काल चलाइये ॥२६॥ तब सभी देवोंके आसन कम्पित हुए और उन्होंने भगवान्के वैराग्यको जाना। सबने आकर भगवान्की बड़े वैभवसे पूजा की ॥२७॥ तब कुवेरने शीघ्र ही एक सुन्दर पालकी बनवाकर उपस्थित की और इन्द्रने भगवान्से निवेदन किया ॥२८॥ उन भगवान्ने अपने सौ पुत्रोंको राज्यमें प्रतिष्ठित कर सब परिग्रह का त्याग कर दिया तथा अपने अन्तःपुरसे पूछ कर सुदर्शना नामकी पालकीमे चढ़े ॥२९॥ सर्व प्रथम राजागण पालकीको उठा कर चले, फिर देवता लोग आकाश मार्गमें लेकर चले। उस समय वहाँपर जय-जयकारके शब्दसे आकाश गूँज उठा ॥३०॥ देवांगनाओं सहित, गीत, नृत्य और नाना प्रकारके उपहार भेंट करते हुए वे देवगण भगवान्को मनोहर सिद्धार्थ वनमें ले गये ॥३१॥ यहाँ पालकीसे उतरकर भगवान्ने वस्त्र आभूषणोंको तथा व्यभिचारिणी स्त्रीके समान इस पृथ्वीको छोड़ दिया ॥३२॥ इसके बाद भगवान्ने अपने केशोंको पाँच मुट्ठियोंसे लोंच कर

अचेलत्वं च लुञ्चित्वं व्युत्सृष्टांगं सपिच्छकम् ।
एतदुत्सर्गलिंगं तु जगृहे मुनिपुङ्गवः ॥३४॥

जिनेन्द्रकेशानादाय भक्त्या पिटके शुचौ ।
निचिक्षेप समभ्यर्च्य सुरेन्द्रः क्षीरवारिधौ ॥३५॥

चतुर्भिरमलैर्ज्ञानैर्युक्तोऽपि त्रिदशार्चितः ।
यथोक्तमप्यतश्चक्रे तपोग्रं च द्विषड्विधम् ॥३६॥

षट्सु मासेष्वतीतेषु कच्छाद्याः पार्थिवोत्तमाः ।
क्षुत्पिपासोष्णशीताद्यैरसह्यैराकुलीकृताः ॥३७॥

अभूवंस्तापसाः केचित् पाण्डुपत्रफलाशिनः ।
पारिव्राज्यं तदाऽऽदत्त मरीचिश्च तृषार्दितः ॥३८॥ युग्मम् ॥

नमिश्च विनमिः सौख्याशावेत्येशमयाचताम् ।
दृष्ट्वा तौ धरणेशोऽप्यागत्य श्रेण्योरतिष्ठिपत् ॥३९॥

जगदीशो बुभुक्षादीन्सहमानोऽपि तान् विभुः ।
धर्मसंस्थितये चक्रे गोचाराऽग्रगवेषणम् ॥४०॥

देवो नृपगणैर्भक्त्या ग्राम्यनागरराष्ट्रकैः ।
अर्चमानोऽथ वर्षेण प्रापद् गजपुरं क्रमात् ॥४१॥

राजा सोमप्रभो भ्राता श्रेयांश्च सहितावुभौ ।
अन्योन्यस्य स्वयं दृष्टान् स्वप्नान् स्म गदतस्तकौ ॥४२॥

मेरुं कल्पतरुं चन्द्रं रत्नद्वीप सुरध्वजम् ।
विद्युन्माला विमानानि विरञ्चिपुरुषोत्तमम् ॥४३॥

वयमद्राक्ष्म रात्र्यन्ते किमेषां फलमित्युभौ ।
सामान्यश्रेष्ठिसचिवौ चक्रतुः स्वप्नसंकथाम् ॥४४॥ युग्मम् ॥

चार-हजार राजाओंके साथ दिगम्बरी-दीक्षा धारण करली ॥३३॥ वस्त्र-रहितता केश-लुंचिता, अंग-निःस्पृहता और मयूरपिच्छिका, इन स्वाभाविक चिन्होंको मुनियोंमें श्रेष्ठ उन ऋषभदेवने ग्रहण किया ॥३४॥ इन्द्र, जिन भगवान्‌के केशोंको एक पवित्र पिटारेमें बन्द कर ले गया और अति सत्कार-पूर्वक क्षीर-सागरमे उन्हें समर्पित किया ॥३५॥ इन्द्रोंसे पूजित वे भगवान् स्वतः चार निर्मल ज्ञानोंसे युक्त थे तो भी उन्होंने यथाविधि बारह प्रकारके उग्रतपोंको किया ॥३६॥

छः माह बीतनेके बाद भगवान्‌के साथ दीक्षित कच्छ, महाकच्छ आदि राजागण असह्य भूख, प्यास, गर्मी और सर्दीसे पीड़ित होने लगे ॥ ३७ ॥ उनमेसे कितने तो पके फल, पत्ते खाने वाले साधु हो गये। भगवान्‌का पौत्र मरीचि प्याससे पीडित हो मिथ्यामत का प्रचारक परिव्राजक साधु हो गया ॥ ३८ ॥ एक समय कच्छ, महाकच्छके पुत्र नमि, विनमि भगवान्‌के पास याचना करने आये। तब धरणेन्द्रने उन दोनोंको विजयार्ध पर्वतकी उत्तर-दक्षिण श्रेणीका स्वामी बना दिया ॥ ३९ ॥ भूख-प्यास सहनेकी शक्ति होते हुए भी वे भगवान् धर्म-स्थापनाके निमित्त अर्थात् यतियोंकी चर्या प्रकट करनेके लिए छः माहकी तपस्याके बाद गोचरीके लिए निकले ॥ ४० ॥ वे भगवान् नृपों द्वारा, ग्रामीणों द्वारा, नगरो तथा राष्ट्रों द्वारा भक्ति-पूर्वक पूजे जाते हुए क्रमसे एक वर्षमे हस्तिनागपुर पहुंचे ॥ ४१ ॥ वहांके राजा सोमप्रभ और उनके भाई श्रेयासने रात्रिमें कुछ शुभ स्वप्न देखे और आपसमें एक दूसरेसे देखे हुए स्वप्नोंको कहने लगे ॥४२॥ उन्होने कहा कि हम लोगोने स्वप्नमे मेरु, कल्पवृक्ष, चन्द्रमा, रत्नद्वीप, देवध्वजा, विद्युन्माला तथा विमान और ब्रह्माको रात्रिके अन्तिम प्रहरमें देखा है, इनका क्या फल होगा ? इस प्रकार उत्तम मन्त्रियोवाले उन दोनोंने अपने-अपने मंत्रियोसे स्वप्न कहे ॥ ४३-४४ ॥

आगमिष्यति नः कोऽपि द्रक्ष्यामो बन्धुसत्तमम् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यात भद्रं चाद्य भविष्यति ॥४५॥

अभूतपूर्वां मूर्तिं च श्रिय राजाऽऽलयस्य च ।
दिशां प्रसन्नतां चैव वीक्ष्य विस्मयमापतुः ॥४६॥

कथाभिः पुरुदेवस्याऽध्यासिताभ्यां पुनः सुखम् ।
ज्ञात्वोपस्थापयाञ्चक्रुर्वेलामक्तं तु भाक्तिकाः ॥४७॥

भोक्तुं समुपविष्टाभ्यां रम्ये मणिमहीतले ।
एत्य सिद्धार्थतातोऽयमाख्यदागमनं विभो. ॥४८॥

यन्नामग्रहण यस्मै नमश्चेत्युदितं पदम् ।
संसारतरणे शक्तं भक्तृणां नौरिवार्णवे ॥४९॥

यस्य चोदकमूर्धाभिषेकान्ते विबुधेश्वरः ।
यद्रूपदर्शनातृप्तो वज्री चाभूत्सहस्रदृक् ॥५०॥

रात्रिं दिव कथा यस्य क्रियते भवदादिभि· ।
सोऽद्य प्राघूर्णकोऽस्माकं जगच्चन्द्र इहागमत् ॥५१॥

उदग्द्वारेण सविश्य पुरं नः करिराड्गति· ।
चान्द्रीं च चर्यामास्थाय युगमात्रार्पितेक्षणः ॥५२॥

आदरोदितसम्भ्रान्तैः पाद्यार्घ्यासन्नहस्तकै· ।
नरनारीगणैर्भक्त्या स्तुतवन्दितपूजित· ॥५३॥

इज्याञ्जलिनमस्कारैरनुभूतश्च नागरै· ।
गेह गेहमटन्नीश· प्राविक्षन्नोऽजिर पुर· ॥५४॥ त्रिकम् ॥

श्रुत्वा सपरिवारौ तौ तेनोक्तं प्रत्यगीयतुः ।
सम्भ्रान्तौ जिनचन्द्राय बुध-शुक्राविवेन्दवे ॥५५॥

प्रोद्गतादित्यदीप्तं च शरत्पूर्णेन्दुसौम्यकम् ।
अद्राष्टां भगवद्रूपं भूदिगाकाशभूषणम् ॥५६॥

हम लोगोंका कोई इष्टबन्धु आवेगा, हम अपने तीन लोकमें प्रसिद्ध श्रेष्ठ-बन्धुको देखेंगे, आज हमारा कल्याण होगा, ऐसा उन लोगोंने कहा ॥ ४५ ॥ वे दोनों, अपनी अभूतपूर्व विभूति को, राज-भवनकी शोभाको तथा दिशाओंकी स्वच्छताको देख आश्चर्य-चकित होगए ॥ ४६ ॥ जिस समय वे दोनों भगवान् ऋषभ-देवकी कथा कहते हुए बैठे थे कि प्रहरी लोगोंने भोजन करनेके समयकी सूचना दी ॥ ४७ ॥ सुन्दर मणियोंसे निर्मित स्थलपर भोजन करनेके लिए बैठे हुए उन दोनोंको सिद्धार्थ नामक द्वार-पालने भगवान्के आगमनका समाचार दिया ॥ ४८ ॥ कि जिन भगवान्का नाम मात्र लेना, और जिनके नमस्कारके लिये कहे गये शब्द, भक्त लोगोंको संसारसे पार उतारनेके लिए समुद्रमें नौकाके समान है, जिनके जन्माभिषेकके बाद रूप देखनेमें अतृप्त होकर इन्द्रने सौ नेत्र बना लिए थे। जिनकी कथा आप लोग रात-दिन करते हैं वे जगत् के चन्द्र आज हमारे अतिथि बनकर यहाँ आये हुए हैं ॥४९–५१॥ गजके समान मस्त गतिसे चलते हुए उन्होंने उत्तर ओरके दरवाजेसे हम लोगोंके नगरमें प्रवेश किया है। वे चान्द्री चर्याका अवलम्बन कर चार हाथ प्रमाण भूमिको देखते हुए चले आरहे हैं ॥५१–५२॥ नगर-निवासी नर-नारीजनोंसे चरणोंमें अर्घ्य-दान, आसन-प्रदान आदिके द्वारा आदर-सत्कार पाते स्तुति, वन्दना और पूजाको प्राप्त करते हुए, अञ्जलि-बद्ध नमस्कार करनेवाले नागरिकोंसे मिलते हुए, घर-घर विहार करते हुए वे भगवान् हमारे आंगनमे प्रवेश कर रहे हैं ॥५३–५४॥

इस तरह सिद्धार्थसे कही इन बातोंको सुनकर परिवार सहित वे दोनों जिन भगवान्के स्वागतके लिये सन्मुख गये। जैसे कि चन्द्रमाके स्वागतके लिए बुध और शुक्र जाते हैं ॥५५॥ उन दोनोंने, उगते सूर्यके समान कान्तिमान्, शरत् कालीन पूर्ण चन्द्रमा

कृत्वा प्रदक्षिणं नाथं चन्द्रार्काविव मन्दरम् ।
पादयोः पेततुर्मूर्ध्ना शरत्स्रग्धारकुण्डलौ ॥५७॥

मौनव्रतिकमापृच्छ्य सुखपृच्छां शिरस्करौ ।
विमोरागमनं काले चिन्तवन्तौ पुरः स्थितौ ॥५८॥

सा च लक्ष्मीवती देवी सपत्नीभिः सपुत्रिका ।
सग्रहा चन्द्रलेखेव चक्रे नाथं प्रदक्षिणाम् ॥५९॥

श्रेयाननिमिषाक्षिभ्यां पश्यन्नञ्चितरोमभृत् ।
क्व मन्येऽद्राक्षमीदृक्षं रूपं प्रागित्यचिन्तयत् ॥६०॥

उपशान्तेन कान्तेन दीप्तेनाप्रतिघातिना ।
निभृतेनोर्जितेनातिजैनेनाद्भुतवर्ष्मणा ॥६१॥

बोधितोऽयं भवान् ज्ञात्वा दयाऽपीशस्य स्वस्य च ।
पादावाश्लिष्य बाहुभ्यां स्नेहान्मो ह्याजगाम स ॥६२॥ युग्मम् ॥

उत्थायाश्रूणि सम्मृज्य बुध्वाऽऽगमनकारणम् ।
धन्योऽद्यास्मीति सत्पात्रसम्प्राप्ते प्रीतमानस. ॥६३॥

प्रतिगृह्य समभ्यर्च्य सविधिज्ञो यथोविधि ।
पुण्ड्रेक्षुरसमादाय सकुम्भो जिनमब्रवीत् ॥६४॥

उद्गमोत्पाददोषैश्च विशुद्धन्नध.कर्मभिः ।
त्रैलोक्यशान्तये नाथ प्रतीच्छ प्रासुकं रसम् ॥६५॥

संशयघ्न मलापेतं व्रतस्वाध्यायविघ्ननुत् ।
स्वतन्त्रमिति चासेम पाणिपात्रम्प्रवर्तितम् ॥६६॥

के समान सौम्य, पृथ्वी, दिशा और आकाशके भूषण-स्वरूप, उन जिन भगवान्के रूपको देखा ॥५६॥ सुमेरु पर्वतकी जैसे चन्द्र-सूर्य प्रदक्षिणा करते हैं उसी तरह इन दोनोने भगवान्की परिक्रमा की, तथा शरत्-कालके समान स्वच्छ माला और कुण्डल वाले उन दोनोंने शिर नवाकर उनके चरणोमे प्रणाम किया ॥५७॥ शिरपर हाथ रखकर और उन मौनव्रती भगवान्से क्षेम-वार्ता पूछकर, भगवान्के सम्मुख उपस्थित वे प्रभुके योग्य काल मे आगमन के विषय मे सोचने लगे ॥५८॥

अपनी सपत्नियों तथा पुत्री सहित उस लक्ष्मीमती रानीने ग्रहों सहित चाँदनीके समान उन भगवान्की प्रदक्षिणा की ॥५९॥ हर्षसे पुलकित नेत्रवाला श्रेयान् राजा भगवान्को निर्मिमेष नयनोंसे देखता हुआ सोचने लगा कि मैंने पहले ऐसे रूपको कहीं देखा है ? ॥६०॥

ऋषभदेव के उस उपशान्त मनोहर दीप्तिमान् सुन्दर अप्रतिहत तेजस्वी जितेन्द्रिय शरीरके प्रभावसे प्रबोधको प्राप्त हुआ, अर्थात् उसे जातिस्मरण हो आया। अपने और भगवान्के पूर्वले दश भवोंको जानकर भगवान्के चरणोंसे लिपट गया और सोचने लगा कि ये भगवान् हमारे स्नेहसे ही यहाँ आये हैं ॥६१-६२॥ उठकर आनन्द-अश्रुओंको पोंछकर तथा भगवान्के आनेके कारणको जानकर प्रसन्न-मन हो कहने लगा कि ऐसे सत्पात्रको पा मैं धन्य हूँ ॥६३॥ क्रिया विधिको जानने वाले उस श्रेयांसने विधि-पूर्वक उनका सत्कार और पूजाकर कलशमें गन्नेके रसको लेकर जिन भगवान्से निवेदन किया ॥६४॥ हे नाथ उद्‌गम, उत्पाद आदि दोषोंसे तथा अधः कर्मसे रहित विशुद्ध इस प्रासुक रसको त्रैलोक्यकी शान्तिके लिए लीजिए ॥६५॥ भगवान्ने "यह आहार संशयको दूर करनेवाला है, उद्‌गमादि दोषोंसे रहित है, व्रत और

प्रतिलब्धे जिनेन्द्रेऽथ श्रेयसा सहसाम्बरे ।
अहो दानमहो दानमिति शब्दो महानभूत् ॥६७॥

सुरदुन्दुभयो नेदुः सुरभिः पवनो ववौ ।
अपतद्वसुधारा च पूरयन्ती महीतलम् ॥६८॥

शिरःकम्पांगुलिस्फोटहस्तभ्रामणनिःस्वनैः ।
साधु साध्विति देवैः खात्पुष्पवृष्टिश्च पातिता ॥६९॥

स्वल्पप्रमाणभिक्षां तां तपःसंयमरक्षिकाम् ।
आदायाऽभ्यर्चितो नाथो निर्गत्योद्यानमाश्रयत् ॥७०॥

धर्मतीर्थंकरे याते दानतीर्थंकरं सुराः ।
महयामासुराघोष्य पात्रदानफलं महत् ॥७१॥

ततो नृपगणाः श्रुत्वा महतीं देवघोषणाम् ।
पूजयामासुरागत्य दानधर्मस्य नायकम् ॥७२॥

प्राप्तराज्याभिषेकस्तैः पृष्टो नरगणेश्वरैः ।
कथयामास तेभ्योऽसावितिहासं यथागतम् ॥७३॥

पुरुदेवोऽपि कुर्वंस्तत्तपश्चित्रैरभिग्रहैः ।
प्रापद् वर्षसहस्रेण पूर्वतालपुरं क्रमात् ॥७४॥

न्यग्रोधपादपस्याधः सुध्याने शकटाऽमुखे ।
क्षपकश्रेणिमारूढः शुक्लध्यानपरायणः ॥७५॥

घातिकर्माणि चत्वारि मोहादीनि प्रहत्य सः ।
प्रापदार्हन्त्यमस्यैश्यं त्रैलोक्यक्षोभणं विभुः ॥७६॥

स्वासनस्पन्दनैरिन्द्रा ज्ञानोत्पत्तिं स्म जानते ।
शङ्खभेरिमृदङ्गादिघण्टाभिश्चेतरे सुराः ॥७७॥

स्वाध्यायके विघ्नका नाशक है, स्वतन्त्र है," ऐसा विचार कर उसे ग्रहण करनेके लिए अपना अपना पाणिपात्र पसार दिया ॥६६॥ श्रेयांस द्वारा प्रदत्त दानको जिनेन्द्र द्वारा ग्रहण करनेपर सहसा आकाशमे धन्य दान, अहो दान ! ऐसा महान् शब्द हुआ ॥६७॥ उस समय देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं, सुगन्धित पवन चलने लगा और जगतीतलको ढँकनेवाली धनराशि स्वर्गसे बरसने लगी ॥६८॥ शिर कँपाते हुए, अंगुलियोंसे शब्द करते, ताल ठोकते और हाथ घुमाते हुए देवोंने "बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहते हुए आकाशसे पुष्पवृष्टि की ॥६९॥ तप और संयमकी रक्षा करनेवाली भिक्षाको थोड़ी मात्रामें लेकर उन लोगोंसे पूजित वे भगवान् निकलकर उद्यानमें आये ॥७०॥ धर्म-तीर्थको चलाने वालेके चले जानेपर दान-तीर्थके प्रवर्तक उस श्रेयांसकी देवोंने सत्पात्र-दानकी महिमाको घोषित करते हुए पूजा की ॥७१॥ इसके बाद उस महान् देव-घोषणाको सुनकर राजा लोगोंने आकर दान-धर्म-प्रवर्तक श्रेयांसकी पूजा की ॥७२॥ उन लोगोंने श्रेयांसका राज्याभिषेक किया और पूछा तब राजा श्रेयांसने पूर्व-जन्ममें हुए सब वृत्तान्तको सुनाया ॥७३॥

भगवान् आदिनाथने भी नाना प्रकारके अभिग्रहोंसे[१] तप करते हुए एक हजार वर्ष बिताये। तथा विहार करते हुए क्रमसे पूर्वतालपुर नगर पहुँचे ॥७४॥ वहाँ ध्यानके साधन-स्वरूप शकट नामके उपवनमें वटवृक्षके नीचे भगवान् शुक्ल ध्यानमें लवलीन हो क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ हुए अर्थात् क्षपक श्रेणी पर चढ़े ॥७५॥ मोहादिक चार घातिया कर्मोंका नाशकर भगवान्ने त्रैलोक्यको हर्षित करने वाले परम ऐश्वर्यशाली अर्हन्त पद को प्राप्त किया ॥ ७६ ॥ अपने आसनके कँपनेसे इन्द्र लोगोंने भग-

१ भोजनके समय अटपटी प्रतिज्ञाके लेनेको अभिग्रह कहते हैं।

प्राप्यानीकविमानैः स्वैः कृतादरविभूषणाः ।
विभूतिं तपसो जैनीं ददृशुस्ते सविस्मयाः ॥७८॥

विरच्य प्रातिहार्याणि पूजां चक्रुः सुरासुराः ।
गीतनृत्यस्तवाऽऽतोद्यैः प्रणमन्तः सयोषितः ॥७९॥

पुत्र-कैवल्य-चक्राणां निशम्योत्पत्तिमेकदा ।
भरतोऽगान्नृपैः सार्धं वन्दितुं परमेश्वरम् ॥८०॥

प्रातिहार्यैरथाऽष्टाभिश्चतुर्भिस्त्रिंशता च सः ।
अतिशयैश्च संयुक्तं ववन्दे परमेश्वरम् ॥८१॥

दृष्ट्वा वृषभसेनस्तं तत्पुरे भरतानुजः ।
प्रव्रज्याऽऽपद् गणेशत्वमभिषिक्तो नृदेवपैः ॥८२॥

सानुजाय जयायैश्यं दत्वा कुरुधराधिपौ ।
श्रेयान् सोमप्रभश्चेशं शरणं तौ स्म गच्छतः ॥८३॥

ब्राह्मी ससुन्दरी तुष्टा प्रपद्य शरणं पुरुम् ।
अभिषेकमवाप्याभूदार्यिकाणां पुरस्सरी ॥८४॥

याऽष्टा निषद्या वृषभस्य शिष्या बभूव सङ्घोऽपि चतुःप्रकारः ।
रराज देवासुरसङ्घमध्ये ज्योतिर्वृतश्चन्द्र इवोर्जमासे ॥८५॥

इति पुरुदेवचरिते पुराणसंग्रहे भगवतः केवलज्ञानोत्पत्तिर्नाम तृतीयः सर्गः समाप्तः ।

चान्को "केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई है" यह जाना। दूसरे भवन-वासी, व्यन्तर तथा ज्योतिषीदेवोंने भी अपने भवनोंमे शंख, भेरी, मृदंग और घण्टादिके बजनेसे केवलज्ञानकी उत्पत्तिको जाना। वे सब अपने-अपने अनीक जातिके देवोसे रचित विमानोमें खूब सज-धज कर आये और जिन भगवान्के तपो-जनित विभूतिको अर्थात् समवसरणके वैभवको देखकर आश्चर्य-चकित हुए ॥७७–७८॥ अष्ट प्रातिहार्योंकी रचना करके देवाङ्गनाओ सहित प्रणाम करते हुए देव असुरोंने गीत, नृत्य, स्तोत्र और वाद्योंसे भगवान्की पूजा की ॥७६॥ भरत चक्रवर्तीने एक कालमे ही घरमें पुत्रकी, आयुधागारमें चक्ररत्नकी और भगवान्को केवल-ज्ञानकी उत्पत्ति सुनी। तब सर्वप्रथम महाराज भरत राजाओंके साथ भगवान्की वन्दना करनेके लिए गये ॥८०॥ वहाँ आठ प्रातिहार्य और चौंतीस अतिशयसे युक्त भगवान्की उन्होंने वन्दना की ॥८१॥ भरतके छोटे भाई वृषभसेनने भगवान्के दर्शन कर उनके सामने ही दीक्षा ले ली, और नरेन्द्रो तथा देवेन्द्रों द्वारा अभिषिक्त हो गणधर पद पाया ॥८२॥ कुरुवंशी श्रेयांस और सोमप्रभ दोनों भाइयोंने अपने राज्यको जयकुमार और उसके छोटे भाईको देकर और भगवान्की शरणमे आकर दीक्षा धारण कर ली ॥८३॥ सुन्दरी और ब्राह्मीने भी अतिसन्तुष्ट हो आदिनाथ भगवान्की शरण ली और मनुष्य तथा देवोंसे अभिषिक्त होकर आर्यिकाओंमें अग्रणी हुई ॥८४॥ भगवान् आदिनाथके समवशरणमे इस प्रकार चार प्रकारका संघ बना और उन देव-असुरादिके तथा चतुर्विध, संघके बीचमें भगवान् ज्योतिषियोंसे घिरे हुए कार्तिक मासके चन्द्रमाके समान सुशोभित हुए ॥८५॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके पुरुदेवचरितमें केवलज्ञानोत्पत्ति नामका तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थः सर्गः

अथ कृत्वाऽर्हतः पूजामष्टाहं त्रिदशैः सह ।
भरतो भारतं नास्य विजिगीषुः ससैन्यकः ॥१॥

कृत्वा चक्रमहं पश्चाद्ध्यौ चक्रपुरःसरः ।
गत्वाऽनुगङ्गमाद्वारमकरोद् भक्तमष्टमम् ॥२॥

प्रविश्योद्घाटिते द्वारे रथमारुह्य कल्पितम् ।
युक्त पवनवेगाभ्यां वाजिभ्यामजितञ्जयम् ॥३॥

तुम्बदघ्नं महाबाहुरवगाह्य महार्णवम् ।
वैशाखस्थानमास्थाय वज्रकाण्डधनुष्करः ॥४॥

अमोघ शरमादाय व्यमुचन्नामकाङ्क्षितम् ।
प्रगत्याऽशनिवेगोऽस्तो द्वादशे योजनेऽपतत् ॥५॥ त्रिकम् ॥

तत्प्रपातेन सम्भ्रान्तो मागधो भवनाधिपः ।
उत्पन्नश्चक्रवर्तीति बुबुधे वीक्ष्य नामकम् ॥६॥

निन्दित्वाऽल्पं स्वकं धर्म्मं भग्नमानः सुराधिपः ।
साराण्यग्राणि रत्नानि गृहीत्वा स्वोचितानि सः ॥७॥

पृथिवीसारहारं च मुकुटं कुण्डले अपि ।
प्रागुपस्थापयाञ्चक्रे वस्त्रतीर्थोदकानि च ॥८॥ द्विकम् ॥

किमहङ्करवाणीति प्रतिगृह्य विशांपतिम् ।
विश्वस्तः प्राविशत्तेन भरतोऽपि विनिर्ययौ ॥९॥

चतुर्थ सर्ग

देवताओंके साथ आठ दिन तक भगवान्‌की पूजा कर, सेना सहित वह भरत भारतवर्षको जीतनेका इच्छुक हुआ ॥ १ ॥ पश्चात् उसने घर आकर चक्ररत्नकी पुजा की और चक्रको आगेकर गंगाके किनारे-किनारे उसके दरवाजे तक गया और वहाँ उसने अष्टम भक्त अर्थात् तेला या तीन दिनका उपवास किया ॥२॥ फिर उसने दरवाजेके खुलनेपर पवनके समान वेगवाले घोड़ोंसे जुते हुए देव-रचित अजितंजय नामके रथमें बैठकर प्रवेश किया। विशालबाहु वह भरत बारह योजन प्रमाण महासमुद्रको पारकर वैशाख नामके आसनसे स्थित हो उसने वज्रकाण्ड नामक धनुषको संभाला, अपने नामसे अंकित अमोघ बाणको उसने छोड़ा और उल्कापात जैसे वेग वाला वह बाण १२ योजनपर जा गिरा ॥३–५॥ उस बाणके गिरनेसे मागध नामका भवनवासी देव घबड़ा गया और बाण पर लिखा नाम बांचनेसे उसने जाना कि चक्रवर्ती संसारमें उत्पन्न हो गया है ॥६॥ गलित मान होकर वह देव अपने अल्प पुण्यकी निन्दा करता हुआ अपने योग्य तथा उत्तम-उत्तम मणियोंको लेकर, पृथिवीमें श्रेष्ठ हारको तथा कुण्डलों और मुकुटको लेकर, नाना वस्त्राभूषण और नाना तीर्थोंके जल सहित भरतके सामने आ उपस्थित हुआ ॥७–८॥ "मैं क्या करूँ" इस प्रकार कहते हुए उस देवने भरतका सत्कार किया तथा उनकी अनुज्ञासे विश्वस्त होकर वह अपने स्थानको चला गया। भरतराजने भी वहाँसे प्रस्थान किया ॥९॥

आवयन् दाक्षिणात्यांश्च नृपतीन् व्यन्तरांस्तथा ।
गत्वाऽनुसागरं द्वारं वैजयन्तमथाऽऽस्तवान् ॥१०॥

नाम्ना वरतनुं तत्र देवं पूर्ववदाह्वयत् ।
सोऽपि चूडामणिञ्चैव ग्रैवेयकमुरस्सरम् ॥११॥

वीरांगदे च कटके नंद्यावर्त्तं च सूत्रकम् ।
उपानीयाञ्जलिं कृत्वा किङ्करः समुपस्थितः ॥१२॥ युग्मम् ॥

अपाच्यान् स्ववशीकुर्वन्नाजगामानुवेदिकम् ।
आवयन् देवभूपांश्च सिन्धुद्वारमुपेयिवान् ॥१३॥

गंगाद्वारविधानेन प्रभास नामतः सुरम् ।
आनम्य जगृहे तस्मात् सन्तानं माल्यदामकम् ॥१४॥

मुक्ताजालञ्च मौलिञ्च रत्नचित्रञ्च हैमकम् ।
पूजां तीर्थोदकं चापि प्रतिगृह्योत्तरामगात् ॥१५॥

चक्ररत्नानुमार्गेण विजयार्द्धस्य वेदिकाम् ।
प्राप स्वावधिना ज्ञात्वा सोपवासं नरेशपम् ॥१६॥

विजयार्द्धकुमारोऽपि सिंहासनमनुत्तरम् ।
तत्र चामरयुग्मानि गृहीत्वाऽनुपमानि सः ॥१७॥

भृंगारं कुम्भतोयं चाऽप्यभिषेकं च चक्रिणे ।
उपस्थाप्य तवास्मीति पूजितः स्म निवर्तते ॥१८॥ त्रिकम् ॥

पूजां चक्रस्य कृत्वाऽऽयात्स तिमिश्रगुहामुखम् ।
तद्वासी कृतमालोऽपि तिलकाद्यांश्चतुर्दश ॥१९॥

अलंकारान् प्रगृह्याऽसौ तवाऽहमिति चाश्रणोत् ।
आज्ञप्तो राजराजेन ततो योद्धा चमूपतिः ॥२०॥

कुमुदावेलकं नाम वाजिरत्नं शुकप्रभम् ।
आरुह्य दण्डरत्नेन गुहाद्वारमताडयत् ॥२१॥ त्रिकम् ॥

तदनन्तर दक्षिणवासी राजाओं और व्यन्तरोंको आज्ञा करता हुआ वह चक्रवर्ती समुद्रके किनारे-किनारे जाकर वैजयन्त द्वारके पास पहुँचा ॥१०॥ वहाँ वरतनु नामक देवको मागध देवके समान ही बुलाया। वह भी चूडामणि रत्न, ग्रैवेयक हार, वीरोंके केयूर, कड़े तथा नंद्यावर्त नामकी करधनीको भेंट करता हुआ हाथ जोड़े सेवकके रूपमे उपस्थित हुआ ॥११-१२॥ दक्षिण तरफ रहनेवाले लोगोंको अपने वशमे करता हुआ जम्बूद्वीपकी वेदिकाके किनारे किनारे वह चक्रवर्ती चला और अनेकों देवों और राजाओंपर आज्ञा करता हुआ सिन्धु नदीके द्वार पर आ पहुँचा ॥१३॥ गंगाद्वारके विधानके समान उस चक्रवर्तीने यहाँ प्रभास नामके देवको वशमे किया और उस देवने सन्तानक आदि कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी माला, मोतियोंका ढेर, मुकुट, रत्नोंसे जटित स्वर्णमाला तथा तीर्थोदक, भेटमें दिये और इस प्रकार उससे पूजा-प्रतिष्ठा पाकर भरतराज उत्तर दिशाको गये ॥१४-१५॥

चक्ररत्नके पीछे-पीछे चलकर वह चक्रवर्ती विजयार्द्ध पर्वतकी वेदिकाके पास पहुँचा। वहाँ उस चक्रवर्तीने उपवास किया। तब वहाँके देव विजयार्द्धकुमारने अपने अवधिज्ञानसे चक्रवर्तीका आगमन जानकर उत्तम सिंहासन, अनुपम चमरोंके युगल और झारी चक्रवर्तीको प्रदान किया तथा जलके घड़े लाकर उनका अभिषेक किया "मैं तुम्हारा ही दास हूँ" ऐसा निवेदन कर वह देव चला गया ॥१६-१८॥ इसके बाद चक्ररत्नकी पूजा कर वह चक्रवर्ती विजयार्ध पर्वतकी तिमिश्र गुफाके द्वार पर पहुँचे। वहाँ रहनेवाले कृतमाल देवने तिलक आदि चौदह प्रकारके आभूषण भेंटमें दिये और "मैं तुम्हारा ही सेवक हूँ" ऐसा निवेदन कर चला गया। तदनन्तर चक्रवर्तीकी आज्ञासे उस युद्ध-विशारद सेनापतिने हरे वर्णवाले कुमुदावेलक नामके अश्वरत्न पर चढ़कर

तत उद्घाटिते द्वारे प्राविशत्सह सेनया ।
सन्नह्यारुह्य राजेन्द्रो गजं विजयपर्वतम् ॥२२॥

नाभून्नक्तदिवं भासा काकिणीमणिरत्नयोः ।
कामवृष्टिर्गृहपतिर्भद्रास्यः स्थपतिश्च तौ ॥२३॥

उन्मग्नजलनामा च निमग्नजलवाहिका ।
गुहामध्ये महानद्योः स्कन्धावारोऽभवत्तयोः ॥२४॥

कारयामासतुः क्षिप्रं सङ्क्रमं सरितोरुभौ ।
तेनाऽतीत्योत्तरद्वारं सम्प्राप्योद्घाट्य पूर्ववत् ॥२५॥

भारतोत्तरद्वारे हि सन्निविष्टा महाचमूः ।
दृष्ट्वाऽऽवर्तचिलातास्तामभिजग्मुर्महाबलाः ॥२६॥ चतुष्कम् ।

ततोऽश्वरत्नमारुह्य चमूपतिरलङ्घ्यधीः ।
द्रावयामास तानाशु मेघानिव महानिलः ॥२७॥

तेषां मेघमुखा नागाः स्वोचिताः कुलदेवताः ।
ततस्तांश्चारणं जग्मुः शयित्वा दर्भसंस्तरे ॥२८॥

ततो मेघमुखा वृष्टिं खमावृत्य महाम्बुधैः ।
ववर्षुर्मुष्टिमात्राभिर्धाराभिस्ते चमूम्प्रति ॥२९॥

दृष्ट्वा वृष्टिं निधीशस्तां सविद्युद्गर्जिताशनिम् ।
चकारोपर्य्यधस्ताच्च रत्ने द्वे छत्रचर्मणी ॥३०॥

द्विषड्योजनविस्तीर्णा प्लवमानाऽप्सु वाहिनी ।
अण्डायते स्म सप्ताहं सागरेऽन्तर्निमग्नवत् ॥३१॥

ततो निधिपतौ क्रुद्धे गणदेवैरभिद्रुताः ।
मेघाश्च विमचामासुर्नष्टा वृष्टिः क्षणान्तरे ॥३२॥

दण्डरत्नसे गुहा-द्वारका भेदन किया ॥ १९-२१ ॥ तब दरवाजा खुलने पर, चक्रवर्तीने लड़ाईकी तैयारी कर सेनाके साथ विजयपर्वत नामके हाथीपर चढ़कर उसमें प्रवेश किया। काकणीरत्न और मणिरत्नकी कान्तिसे उस गुफामें रात-दिनका विभाग नहीं मालूम पड़ता था। उस गुफाके भीतर उन्मग्नजला और निमग्नजला नामकी दो नदियाँ थीं। उनके किनारे सेनाका पड़ाव पड़ा था। कामवृष्टि नामके गृहपति और भद्रमुख नामके स्थपतिने शीघ्र ही उन दोनों नदियोंपर पुल बना दिया। जिस द्वारा उन दोनों नदियोंको पारकर वे सब उत्तर दरवाजेके पास गये और पूर्वके समान ही उस दरवाजेको भी खोला ॥२२-२५॥

भरत क्षेत्रके उत्तर द्वारपर आई हुई उस बड़ी सेनाको देख कर बड़े पराक्रमवाले आवर्त और चिलात म्लेच्छ राजाओंने उस पर चढ़ाई कर दी ॥२६॥ इसके बाद अलंघ्यबुद्धिवाले उस सेनापतिने अश्वरत्न पर चढ़कर उन सबको शीघ्र ही, जैसे प्रबल वायु मेघोंको भंग करता है, उसी तरह भंग कर दिया ॥२७॥ उनकी कुल परम्परासे आये हुए उन म्लेच्छोंके मेघमुख और नागमुख नामके नागकुमार कुलदेवता थे। उनकी उन्होंने आराधना की और उस कालमें वे कुशासनपर शयन करते थे ॥ २८॥ तब मेघमुख नामके देवोंने बड़े-बड़े बादलोंसे आकाशको ढँककर चक्रवर्तीकी सेना पर मूसलाधार वर्षा की ॥२९॥ उस चक्रवर्तीने तड़तड़ाती हुई बिजली सहित उस वृष्टिको देखकर ऊपर छत्ररत्न तथा नीचे चर्मरत्न बिछा दिया ॥३०॥ बारह योजन तक फैली हुई तथा पानीके बीचमें तैरती हुई वह सेना सात दिन तक समुद्रमें डूबे हुए अण्डेके समान मालूम पड़ती थी ॥३१॥ तब चक्रवर्ती अति क्रुद्ध हुआ। इस पर गण-देवताओंने उन मेघमुख देवोंको डरा कर भगा दिया और क्षणभरमें वृष्टि बन्द हो गई ॥३२॥ मेघमुख

उक्ता मेघमुखैर्नागैस्त्रिलाताश्चक्रवर्त्तिनम् ।
जग्मुः शरणमादाय कन्या मृगाङ्कलोचनाः ॥३३॥

किं वयं करवामेति प्रणतान्वीक्ष्य चक्रभृत् ।
मा भैषी इत्यनुरक्तो ययौ सिन्ध्वनुवेदिकम् ॥३४॥

सिन्धुदेवी ततो ज्ञात्वा सिन्धुकूटनिवासिनी ।
भर्मकुम्भसहस्रेण स्नपयित्वा नरोत्तमम् ॥३५॥

तस्मै भद्रासने दिव्ये पादपीठयुते ददौ ।
ततो हेमवतो मूलं स व्यमुञ्चदनीकिनीम् ॥३६॥ युग्मम् ।

शयानो दर्भशय्यायामुपोषितमथाष्टकम् ।
धृत्वा तीर्थोदकैः स्नात्वा कृतकौतुकमंगल. ॥३७॥

सन्नह्य विधिनाऽऽरुह्य रथं साश्वमलङ्कृतम् ।
वज्रकाण्डधनु.पाणिश्चक्ररत्नपुरःसरः ॥३८॥

क्षुल्लकं हिमवत्कूटं यस्यां दिशि ततोऽगमत् ।
यदुक्तं स्थानमास्थाय बाण तूणीरतोऽग्रहीत् ॥३९॥ त्रिकम् ।

भो भो श्रृणुत सर्वेऽपि मद्देशस्य निवासिनः ।
सुवर्णा नागभूता वेत्युक्त्वा स व्यसृजच्छरम् ॥४०॥

योजनानां द्विषड् गत्वा नामकाङ्कः पपात सः ।
ज्ञात्वाऽतो हेमवद्वासी कुमारश्चक्रवर्त्तिनम् ॥४१॥

आदायोपधिमालां च सगोशीर्षं च चन्दनम् ।
दत्वाऽस्मै पूजयित्वा च तच्छासनरतोऽभवत् ॥४२॥ युग्मम् ।

मुक्त्वा हैमवतं देवमायाद् वृषभपर्वतम् ।
तत्सानावलिखद्युक्तं काकिण्या नामकं स्वकम् ॥४३॥
पुरुदेवस्य पुत्रोऽहं भरतो राजराडिति ।
प्रोवाचोच्चै रथाऽगच्छद्विजयार्द्धस्य वेदिकाम् ॥४४॥

नामक उन नागकुमार देवोंके कहने पर वे म्लेच्छ राजागण अपनी कन्याओंको भेंट लेकर चक्रवर्तीकी शरण में गये ॥३३॥ "हम लोग क्या आज्ञा पालें" इस प्रकार नम्रीभूत उन्हें देखकर चक्रवर्तीने "डरो मत" ऐसा कहकर और अनुरागयुक्त हो वह सिन्धु नदीकी वेदिकाके किनारे-किनारे चला ॥३४॥

तब सिन्धु नदीके कूटपर रहनेवाली जानकर सिन्धुदेवीने उस चक्रवर्तीको हजार स्वर्ण-कलशोंसे स्नान कराके उसके लिए पादपीठ-से युक्त दो भद्र सिंहासन दिये। फिर इसके बाद उसने सेनाको हिमवान् पर्वतके तटकी ओर जानेकी आज्ञा दी ॥३५-३६॥

वहाँ कुशोंकी शय्यामे शयन किया तथा अष्टोपवास धारणकर उस चक्रवर्तीने तीर्थोंसे लाये गये जलसे स्नान किया। फिर प्रसन्न-चित्त हो मंगलविधि की और युद्धके लिए तैयार हुआ। विधिपूर्वक सजे हुए उत्तम अश्वरथमे बैठकर वह चक्रवर्ती चक्ररत्नको आगे करके हाथमे वज्रकाण्ड नामक धनुष लेकर उस दिशाकी ओर गया जिस ओर छोटा हिमवान् कूट था। और वहाँ युक्त आसनसे स्थित होकर चक्रवर्तीने अपने तरकशसे बाणको निकाला ॥३७-३९॥ तथा "रे रे मेरे देशमें निवास करनेवाले सुवर्णकुमार और नाग-कुमारो सुनो" यह कहते हुए बाण छोड़ दिया ॥४०॥ नामसे अंकित वह बाण बारह योजन जाकर गिरा। तब वहाँ रहनेवाले देवने चक्रवर्तीको आया हुआ जाना और औषधि माला तथा गोशीर्ष और चन्दन लाकर उसे भेंट चढ़ाई तथा पूजा की और उसके शासनको स्वीकार कर लिया ॥४१-४२॥

अनन्तर हिमवत कूटको छोड़कर वह चक्रवर्ती वृषभाचल पर आया। उस पर्वतकी शिखरपर उसने काकणीरत्नसे अपना नाम लिखा "मैं पुरुदेवका पुत्र चक्रवर्ती भरत हूँ" इस प्रकार घोषणा करता हुआ वह विजयार्द्ध पर्वतकी वेदिकाके पास गया ॥४३-४४॥

उक्ता मेघमुखैर्नागैश्चिलातश्चक्रवर्त्तिनम् ।
जग्मुः शरणमादाय कन्या मृगाङ्कलोचनाः ॥३३॥

किं वयं करवामेति प्रणतान्वीक्ष्य चक्रभृत् ।
मा भैर्षी इत्यनुरक्तो ययौ सिन्ध्वनुवेदिकम् ॥३४॥

सिन्धुदेवी ततो ज्ञात्वा सिन्धुकूटनिवासिनी ।
भर्मकुम्भसहस्रेण स्नपयित्वा नरोत्तमम् ॥३५॥

तस्मै भद्रासने दिव्ये पादपीठयुते ददौ ।
ततो हेमवतो मूलं स व्यमुञ्चदनीकिनीम् ॥३६॥ युग्मम् ।

शयानो दर्भशय्यायामुपोषितमथाष्टकम् ।
धृत्वा तीर्थोदकैः स्नात्वा कृतकौतुकमंगलः ॥३७॥

सन्नह्य विधिनाऽऽरुह्य रथं साश्वमलङ्कृतम् ।
वज्रकाण्डधनुःपाणिश्चक्ररत्नपुरःसरः ॥३८॥

क्षुल्लकं हिमवत्कूटं यस्यां दिशि ततोऽगमत् ।
यदुक्तं स्थानमास्थाय बाणं तूणीरतोऽग्रहीत् ॥३९॥ त्रिकम् ।

भो भो शृणुत सर्वेऽपि मद्देशस्य निवासिनः ।
सुवर्णा नागभूता वेत्युक्त्वा स व्यसृजच्छरम् ॥४०॥

योजनानां द्विषड् गत्वा नामकाङ्कः पपात सः ।
ज्ञात्वाऽतो हैमवद्वासी कुमारश्चक्रवर्त्तिनम् ॥४१॥

आदायोपधिमालां च सगोशीर्षं च चन्दनम् ।
दत्वाऽस्मै पूजयित्वा च तच्छासनरतोऽभवत् ॥४२॥ युग्मम् ।

मुक्त्वा हैमवतं देवमायाद् वृषभपर्वतम् ।
तस्मानावलिखद्युक्त काकिण्या नामकं स्वकम् ॥४३॥
पुरुदेवस्य पुत्रोऽहं भरतो राजराडिति ।
प्रोवाचोच्चै रथाऽगच्छद्विजयार्द्धस्य वेदिकाम् ॥४४॥

नामक उन नागकुमार देवोंके कहने पर वे म्लेच्छ राजागण अपनी कन्याओंको भेट लेकर चक्रवर्तीकी शरण में गये ॥३३॥ "हम लोग क्या आज्ञा पालें" इस प्रकार नम्रीभूत उन्हें देखकर चक्रवर्तीने "डरो मत" ऐसा कहकर और अनुरागयुक्त हो वह सिन्धु नदीकी वेदिकाके किनारे-किनारे चला ॥३४॥

तब सिन्धु नदीके कूटपर रहनेवाली जानकर सिन्धुदेवीने उस चक्रवर्तीको हजार स्वर्ण-कलशोंसे स्नान कराके उसके लिए पादपीठ-से युक्त दो भद्र सिंहासन दिये। फिर इसके बाद उसने सेनाको हिमवान् पर्वतके तटकी ओर जानेकी आज्ञा दी ॥३५–३६॥

वहाँ कुशोंकी शय्यामें शयन किया तथा अष्टोपवास धारणकर उस चक्रवर्तीने तीर्थोंसे लाये गये जलसे स्नान किया। फिर प्रसन्न-चित्त हो मंगलविधि की और युद्धके लिए तैयार हुआ। विधिपूर्वक सजे हुए उत्तम अश्वरथमें बैठकर वह चक्रवर्ती चक्ररत्नको आगे करके हाथमें वज्रकाण्ड नामक धनुष लेकर उस दिशाकी ओर गया जिस ओर छोटा हिमवान् कूट था। और वहाँ युक्त आसनसे स्थित होकर चक्रवर्तीने अपने तरकशसे बाणको निकाला ॥३७–३९॥ तथा "रे रे मेरे देशमें निवास करनेवाले सुवर्णकुमार और नाग-कुमारो सुनो" यह कहते हुए बाण छोड़ दिया ॥४०॥ नामसे अंकित वह बाण बारह योजन जाकर गिरा। तब वहाँ रहनेवाले देवने चक्रवर्तीको आया हुआ जाना और औषधि माला तथा गोशीर्ष और चन्दन लाकर उसे भेंट चढ़ाई तथा पूजा की और उसके शासनको स्वीकार कर लिया ॥४१–४२॥

अनन्तर हिमवत कूटको छोड़कर वह चक्रवर्ती वृषभाचल पर आया। उस पर्वतकी शिखरपर उसने काकणीरत्नसे अपना नाम लिखा "मैं पुरुदेवका पुत्र चक्रवर्ती भरत हूँ" इस प्रकार घोषणा करता हुआ वह विजयार्द्ध पर्वतकी वेदिकाके पास गया ॥४३–४४॥

तत्रोपवासितं, ज्ञात्वा द्वितयश्रेणिवासिनौ ।
नमिश्च विनमिस्तूर्णं सह गान्धारपन्नगैः ॥४५॥

अग्र्याण्यादाय रत्नानि स्त्रीरत्नं चोपनिन्यतुः ।
प्रतिगृह्य सुभद्रां तां महर्द्ध्या तावपूजयत् ॥४६॥ युग्मम् ।

विद्याधरान् वशीकृत्य गतो गङ्गानुवेदिकम् ।
चकाराऽष्टमं भक्तं दर्भसंस्तरशायकः ॥४७॥

गङ्गादेवी ततो ज्ञात्वा गङ्गाकूटनिवासिनी ।
रत्नकुम्भसहस्रेण स्नापयित्वा यथोचितम् ॥४८॥

सपादपीठके तस्मै रत्नसिंहासने ददौ ।
विजयार्द्धोत्तरावासानाश्रावयदतोऽन्यपान् ॥४९॥ युग्मम् ।

म्लेच्छराजसहस्राणि विनाम्याष्टादशैव सः ।
तेभ्यश्चादाय रत्नानि खण्डकापातमाययौ ॥५०॥

सन्निवेश्य महासेनामुपोषितमथाष्टमम् ।
विज्ञाय नाट्यमालस्तु देवोऽलङ्कारभाण्डकम् ॥५१॥

नागरूपे च वै कच्चे विद्युदाभे च कुण्डले ।
दत्त्वा तस्मै प्रसीदेश किंकर्तव्यमिति स्थितः ॥५२॥

अयोध्यः पूर्ववद् गत्वा गुहाद्वारमपावृणोत् ।
प्रवेशो निर्गमश्चास्य सिन्धुनिर्भेदवद् भवेत् ॥५३॥

दक्षिणादथ निर्गत्य भागीरथ्या गुहामुखात् ।
विजित्य भारतं वास्य सम्पूर्णं सन्नरामरः ॥५४॥

षष्ट्या वर्षसहस्रैः स प्रस्थितः स्वपुरीमुखः ।
ततः सुदर्शनं चक्रं प्रवेष्टुं स्म न वाञ्छति ॥५५॥ युग्मम् ।

बुद्धिसागरनामानं पृच्छति स्म पुरोधसम् ।
किमर्थं चक्ररत्नं नः प्रवेष्टुं नैतदिच्छति ॥५६॥

वहाँपर उसने उपवास किया। यह मालूम कर दोनों श्रेणियोंमें रहनेवाले नमिकुमार और विनमिकुमार विद्याधरोंने गन्धार और पन्नग जातिके विद्याधरोंके साथ शीघ्र आकर अनेक श्रेष्ठ रत्न तथा सुभद्रा नामके स्त्रीरत्नको भी भेंट किया। अनन्तर चक्रवर्तीने सुभद्राको स्वीकार कर उन दोनोंका सत्कार किया ॥४५-४६॥

इस तरह विद्याधरोंको वशमें करके वह गंगा नदीकी वेदिकाकी ओर चला और वहाँ कुशासनपर सोते हुए उसने अष्टोपवास किये ॥४७॥ गंगाके कूटमें रहनेवाली गंगादेवीने यह जानकर उस चक्रवर्तीका हजार सोनेके कलशोंसे अभिषेक कराया। तथा पादपीठ सहित रत्नजटित दो सिंहासन भेंट दिये तथा विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमे रहनेवाले अन्य राजाओंकी खबर दी ॥४८-४९॥

इसके बाद चक्रवर्ती अठारह हजार म्लेच्छ राजाओंको वशकर उनसे भेंटमें रत्न ले खण्डकाप्रपात (काण्डकप्रपात) नामकी गुफाके पास आया ॥५०॥ वहाँ सेनाका पड़ाव डालकर चक्रवर्तीने अष्टोपवास किया। यह जानकर नाट्यमाल नामके देवने अलंकारका पिटारा, नागरूप दो मालाएँ तथा बिजली जैसी चमकवाले दो कुण्डल भेंटकर "स्वामिन्! प्रसन्न होइये, आज्ञा दीजिये।" इस प्रकार कहकर स्थित हो गया। फिर बिना युद्ध किये हुए ही वह चक्रवर्ती पूर्वकी ओर बढ़ा और वहाँकी गुफाके दरवाजेको खोला। इसमें प्रवेश और निर्गमन सिन्धु नदीके समान ही हुआ ॥५१-५३॥ उसने इस तरह गंगा नदीकी गुफाके दक्षिण दरवाजेसे निकलकर देव और मनुष्यों सहित सारे भारतवर्षको जीत लिया। साठ हजार वर्षोंके बाद वह अपनी राजधानीको आया पर फिर भी उसका सुदर्शन चक्र नगरमे प्रवेश नहीं करता था ॥५४-५५॥ तब उसने बुद्धिसागर नामके अपने पुरोहितसे पूछा कि यह हमारा चक्ररत्न नगरमें प्रवेश क्यों नहीं कर रहा है ॥५६॥ उसने कहा कि

प्रोवाच भ्रातरो येन न शृण्वन्ति विभोस्तव ।
तेन नेच्छति रत्नाग्रं प्रवेष्टुं त्वत्पुरीमिति ॥५७॥

तच्छ्रुत्वा प्रेषयामास तेभ्यो दूतान् सलेखकान् ।
दृष्ट्वा भव्यनृसिंहास्ते तन्निमित्तेन बोधिताः ॥५८॥

तत्यजु स्वानि राज्यानि यानानि वसुसंयुताः ।
गत्वा भगवतः पार्श्वे श्रामण्यं प्रतिपेदिरे ॥५९॥

श्रुत्वा बाहुबली क्रुद्धो निर्ययौ पोदनाद्रम् ।
अक्षौहिण्यैकया सार्धं युयुत्सुर्युद्धशौण्डक. ॥६०॥

भृत्योऽहं न तवास्मीति प्रेष्यपूर्वं वचोऽपरान् ।
प्रत्यागच्छन्नरेन्द्रेन्द्रं गिरीन्द्रं करिराडिव ॥६१॥

अस्पर्ध्यं स्थितयो. साम्यं सरःसागरयोरिव ।
उभयोः सेनयोर्वीक्ष्य सम्मन्त्र्योभयमन्त्रिणः ॥६२॥

अस्तु वां धर्मसङ्ग्रामो मा कृपातां जनक्षयम् ।
इति विज्ञापितौ तौ तैर्धर्म्मयुद्धाय तस्थतुः ॥६३॥

विद्याधराऽग्रयक्षैश्च त्रिदशै' साप्सरोगणैः ।
आपूर्णमम्बरं क्षिप्रं धर्मयुद्ध दिदृक्षुभिः ॥६४॥

ततोऽनिमिषदृष्टिभ्यां चक्रतु' पुष्करेक्षणौ ।
तत्रादौ दृष्टिसङ्ग्रामं भग्नोऽभूद् भरतस्तदा ॥६५॥

पुन. सरसि बाहुभ्यां तरङ्गोद्गमसंकटम् ।
ऊर्मियुद्धमभूद् घोरम्परावृत्तोऽत्र राजराट् ॥६६॥

तृतीयं भूतले व्यक्तं पुन. सास्फोटवल्गितम् ।
गृहीतवञ्चितावेष्टं मल्लयुद्धमभूच्चिरम् ॥६७॥
अप्रमेयं महावीर्य्यंमहाद्युतिपराक्रमम् ।
महोत्साहं महाधैर्य्यं दयमान पितुः सुतम् ॥६८॥

आपके भाई आपकी आज्ञा नहीं मानते हैं इसलिए यह चक्ररत्न नगरीमें प्रवेश नहीं कर रहा है ॥५७॥ यह सुनकर उसने पत्र सहित दूतोंको अपने भाइयोंके पास भेजा। यह देख सिंहके समान वलशाली आसन्न भव्य वे सब भाई उन पत्रोंको पा विरक्त हो गये ॥५८॥ वैभवशाली उन लोगोंने अपना राज्य, धन तथा सवारी वगैरह सब त्याग दिये और भगवान्‌के पास जाकर मुनिधर्म धारण कर लिया ॥५९॥

किन्तु यह सुनकर वाहुवली वहुत क्रुद्ध हुआ और अपने नगर पोदनपुरसे शीघ्र ही युद्ध-प्रवीण वह वीर एक अक्षौहिणी सेनाके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे निकला ॥६०॥ "मैं तुम्हारा सेवक नहीं हूँ' यह सन्देश दूत-द्वारा भेजकर वह चक्रवर्तीकी ओर इस प्रकार चला मानो सुमेरु पर्वतकी ओर ऐरावत हाथी ही चल रहा हो ॥६१॥ तव प्रतिद्वन्द्विताके लिए आई हुई विशाल नदी और समुद्रके समान उन दोनोंकी सेनाओंको देखकर दोनों तरफके मन्त्रियोंने विचारणा की ॥६२॥ और निवेदन किया कि 'आप दोनों-का ही धर्म-संग्राम हो, व्यर्थमें सेनाका नाश क्यों हो।" इस प्रकार उनके द्वारा निवेदन करनेपर दोनों धर्मयुद्ध करनेके लिए तैयार हो गये। विद्याधरोंके इन्द्र, यक्षगण और देवांगनाओं सहित देवगणों द्वारा युद्ध देखनेकी इच्छासे शीघ्र ही आकाश व्याप्त हो गया ॥६३-६४॥ कमल जैसे नेत्रवाले उन दोनों भाइयोंने सर्वप्रथम निर्निमेष दृष्टिसे दृष्टिसंग्राम करना प्रारम्भ किया। किन्तु इस युद्धमें भरत पराजित हुआ ॥६५॥ फिर सरोवरमें हाथोंसे बड़ी तरंगोंको उछालते हुए एक बड़ा घोर जलयुद्ध हुआ। इस युद्धमे भी भरत पराजित हो गया ॥६६॥ इसके बाद पृथ्वीपर ताल ठोक-ठोककर व्यक्त होनेवाला तथा पकड़-छोड़वाला मल्लयुद्ध चिरकाल तक हुआ ॥६७॥ इसके बाद दयालु बाहुबली हाथीकी सूँड़के समान

शीघ्रं करिकराकारदोर्भ्यां बाहुबली नृपः ।
तस्था उद्धृत्य राजेन्द्रं सुरलोकमिवाद्रिराट् ॥६९॥ युग्मम् ।

निचिक्षेप शनैर्भूमौ विजयानन्ददुन्दुभिः ।
दध्वान निजसेनायां जयस्वांम्भोनिधिध्वनीन् ॥७०॥

अहो धैर्यमहो सत्त्वं साधुसाध्विति खे भुवि ।
सौनन्देयं प्रशंसद्भिरुत्कृष्टं नृसुरासुरैः ॥७१॥

ततो निधिपतिः क्रुद्धश्चक्ररत्नमथाऽह्वयत् ।
आगच्छत्खे सहस्रारं तत्क्षणाद्यक्षरक्षितम् ॥७२॥

आज्ञप्तं तत्क्षणे गत्वा परीत्येनमशक्नुवन् ।
भेत्तुं बाहुबलीशान तद्दक्षिणभुजे स्थितम् ॥७३॥

दीप्यमानं ततश्चक्रं दृष्ट्वाऽन्यमिव भास्करम् ।
कर्णावपिदधुः सर्वे भ्रातरं वीक्ष्य निष्कृपम् ॥७४॥

सुनन्दानन्दनो निन्दन्नैश्वर्यं धिग्धिगस्त्विति ।
भोगान् विहाय कैलाशे नैर्ग्रन्थ्यं प्रतिपेदिवान् ॥७५॥

व्युत्सृष्टाङ्गस्ततो योगी भूत्वा ध्यानपरायणः ।
सन्तस्थे प्रतिमां वर्षं वल्लिवल्मीकवेष्टितः ॥७६॥

घातिकर्मक्षयात्प्रापत्केवलज्ञानराजताम् ।
कृतकृत्योऽपि भूत्वाऽसौ पारिषद्योऽभवद् विभोः ॥७७॥

एकच्छत्रमवाप्योर्वीं प्रविश्य भरतः पुरम् ।
चक्रवर्त्यभिषेकं सत्सम्प्रापत्सुरपार्थिवैः ॥७८॥

मजबूत बाहुओंसे एक पिताके पुत्र, महान् बलवाले, महाकान्ति और पराक्रमवाले, बड़े उत्साही और धैर्यवाले उस चक्रवर्तीको शीघ्र ही उठाकर खड़ा हो गया मानो सुमेरु पर्वत स्वर्गको लेकर ही खड़ा हो ॥६८–६६॥ फिर उसने चक्रवर्तीको धीरेसे जमीनपर रख दिया। उसी समय उसकी सेनामें जयवन्त होओ आदि समुद्रके समान शब्द करती हुई विजयानन्द दुन्दुभि बजने लगी ॥७०॥ आकाश और पृथिवीपर देवो, असुरों और मनुष्योंने सुनन्दाके पुत्र बाहुबलीकी प्रशंसा करते हुए 'अहो धैर्य! अहो पराक्रम! बहुत ठीक! बहुत ठीक' आदि शब्द कहे ॥७१॥ तब क्रुद्ध होकर चक्रवर्तीने चक्ररत्नका स्मरण किया और वह हजार धारवाला, यक्षोंसे रक्षित उसी क्षण आकाशमे आ गया ॥७२॥ उसी समय आज्ञा पाकर वह चक्र बाहुबलिके पास गया और उस बाहुबली राजाको भेदन करनेमें असमर्थ होता हुआ उनकी प्रदक्षिणाकर उनके दाहिने हाथमें आकर स्थित हो गया ॥७३॥ एक ओर दूसरे सूर्यके समान चमकते हुए उस चक्रको देखकर तथा दूसरी ओर दयाशून्य उस भाईको देखकर सभीने अपनी आँख और कान बन्दकर लिये ॥७४॥

बाहुबलीने भी 'धिक्कार हो धिक्कार हो' इस प्रकार ऐश्वर्यकी निन्दा करते हुए भोगोंको छोड़कर, कैलाश पर्वतपर जिन-दीक्षा ले ली ॥७५॥ इसके बाद निश्चलांग और ध्यानमें लवलीन वे योगी बाहुबली, लताओं और वामियोंसे वेष्टित होकर प्रतिमायोग धारणकर एक वर्ष तक खड़े तप करते रहे ॥७६॥ तथा घातिया कर्मोंके नष्ट हो जानेसे वे केवलज्ञानको प्राप्त हुए और कृतकृत्य होकर वे भगवान्‌के समवशरणमें शामिल हो गये ॥७७॥

इधर भरतने समस्त पृथिवीको अपने एकच्छत्र राज्यके अन्दर पाकर नगरमें प्रवेश किया तथा देवता और राजाओंने चक्रवर्तीका

दत्त्वा कामं नरेन्द्रेभ्यो ह्युपकल्याणिकाधिकान् ।
प्रामोदं घोषयामास वर्षाणि द्वादशेप्सितम् ॥७९॥

दण्डच्छत्रे च रत्ने रथचरणमसिश्चायुधागारजानि
प्रोद्भूता श्रीगृहेऽन्तर्नवनिधि-मणयः काकिणी चर्मणी च ।
विद्याद्रकृच्छ्रेणिजातौ तुरगकरिवरा उत्तरस्यां च योषित्
साकेतेऽभूत्पुरोधाः स्थपतिगृहपती तस्य सेनापतिश्च ॥८०॥

इति श्री पुरुदेवचरिते पुराणसङ्ग्रहे दामनन्दिनः कृतौ भरतविजयो नाम चतुर्थः सर्गः ॥४॥

अभिषेक किया ॥७८॥ इसके बाद भरतने कल्याणेच्छुक राजाओं-को मनवांच्छित दान देकर बारह वर्ष तक उत्सवकी घोषणा कर दी ॥७९॥ उस चक्रवर्तीके चौदह रत्नोंमें से दण्ड छत्र, चक्र और खड्गरत्न आयुधागारमें उत्पन्न हुए। कोषागारमें नवनिधियाँ, चूडामणिरत्न, कांकणी और चर्म रत्न उत्पन्न हुए तथा विद्याधरोंकी उत्तर श्रेणीमें अश्वरत्न, हस्तिरत्न तथा स्त्रीरत्न हुए और अयोध्यामें पुरोहितरत्न, स्थपतिरत्न, गृहपतिरत्न तथा सेनापति-रत्न उत्पन्न हुए ॥८०॥

इस प्रकार दामनन्दि आचार्य द्वारा विरचित पुराण-सारसंग्रहके पुरुदेव चरितमें भरतका दिग्विजय नामका चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

पञ्चमः सर्गः

जिनेन्द्रोऽपि हितं धर्म्मं प्रजाभ्यो देशयन्महीम् ।
तारयंश्च बहून्भव्यान् विजहार निरञ्जनः ॥१॥
आसंश्चतुरशीतिश्च गणा गणभृतोऽपि च ।
तावन्त्येव सहस्राणि मुनीनां मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥२॥
आर्यिकाणां सहस्राणि त्रिंशद् दशगुणानि तु ।
तथोक्तानि तु पञ्चाशत्सहस्राण्यधिकानि च ॥३॥
श्रावकाणां सहस्राणि त्रिंशद् दशगुणानि तु ।
श्राविकाणां प्रमाण तु सहस्रैः शतपञ्चकैः ॥४॥
ययु' पूर्वसहस्राणि शताभ्यस्तानि विंशतिः ।
कौमारेऽतस्त्रयः षष्टिः राज्यस्यैकं च संयमे ॥५॥

उक्तञ्च—

सप्ततिलक्षा कोटिः षट्पञ्चाशत्सहस्रसंयुक्ता ।
पूर्वस्य तु प्रमाणं बोद्धव्या वर्षकोटीनाम् ॥६॥
॥७०५६०००००००००००॥

नक्षत्र चोत्तरापाढं माङ्गल्येषु च सप्तसु ।
निर्वाणमभिजिद्योगे पुरुदेवस्य पूज्यते ॥७॥

उक्तञ्च—

स्वर्गावतरणं जन्म विवाहराज्याभिषेकनि क्रमणम् ।
केवलबोधो निर्वाणं सप्त च मङ्गलानि पुरोः ॥८॥
अथाऽन्तेऽष्टापदं शैल देवेन्द्रैर्बहुशोऽर्चितः ।
चतुर्विधेन संघेन सहारुह्य जिनेश्वरः ॥९॥
सहस्रैर्दशभि. सार्द्धमृषिभिः सन्निविष्टवान् ।
चतुर्दशदिनादूर्ध्वं प्राप्य स्थानं चतुर्दशम् ॥१०॥
पूर्वाह्ने शेषकर्मान्तं कृत्वा लोकं प्रकम्पयन् ।
अव्याबाध सुखं क्षेमं सम्प्रापत्परम पदम् ॥११॥
तत. सदेविका इन्द्रा आगम्य चतुरष्टकाः ।
शरीरमहिमां तस्य महर्घ्यां चक्रुरन्तिमाम् ॥१२॥

पंचम सर्ग

कर्ममलरहित जिनेन्द्र आदिनाथ भगवान् भी प्रजाके लिए हितकारी धर्मका उपदेश करते हुए तथा बहुतसे भव्योंको तारते हुए पृथिवीमें विहार करने लगे ॥१॥ उनके समवशरणमें ८४ गण थे तथा चौरासी ही गणधर थे और उतने ही हजार मोक्ष चाहनेवाले मुनि थे। आर्यिका भी तीन लाख पचास हजार थीं। और श्रावक तीन लाख प्रमाण थे। श्राविकाओंकी संख्या पाँच-लाख थी। भगवान्का बीस लाख पूर्व वर्ष कुमार कालमें, तिरेसठ लाख पूर्व वर्ष राज्य-कालमें तथा एक लाख पूर्व वर्ष संयम कालमें बीता ॥२-५॥ कहा भी है—सत्तर लाख छप्पन हजार कोड़ाकोडि वर्ष प्रमाण पूर्व होता है ॥६॥ उत्तरापाढ़ नक्षत्रमें तथा अभिजित् योगमें सात मांगल्य युक्त भगवान्के निर्वाण पदकी पूजा की गई ॥७॥ कहा भी है—(१) स्वर्गावतरण (२) जन्म कल्याणक (३) विवाह (४) राज्याभिषेक (५) तपकल्याणक (६) केवलज्ञान कल्याणक और (७) निर्वाण कल्याणक ये सात भगवान् ऋषभदेवके माङ्गल्य हैं ॥८॥ देवेन्द्रोंके द्वारा नाना प्रकारसे पूजित वे भगवान् चार प्रकारके संघ सहित कैलास पर्वतपर आरूढ हुए ॥९॥ वहाँ दश हजार साधुओंके साथ उन्होंने समाधि लगाई। तथा चौदह दिनोंके बाद चौदहवें गुणस्थानको प्राप्त हुए ॥१०॥ उन्होंने प्रातःकाल ही शेष कर्मोंका अन्तकर लोकको कंपाते हुए, अव्याबाध सुखवाले कल्याणकारी मोक्षपदको पाया ॥११॥ तब अपनी देवियों सहित बत्तीस इन्द्रोंने परिवार सहित आकर बड़े ठाट-बाटसे भगवान्का निर्वाण-कल्याणक किया ॥१२॥

उक्तञ्च—

दशभवनेन्द्रा द्वादश कल्पेन्द्रा व्यन्तराऽमरेन्द्रास्त्वष्टौ ।
ज्योतिष्केन्द्रौ द्वाविति द्वात्रिंशत्सम्मिता इन्द्राः ॥१३॥

राजराजोऽपि तज्ज्ञात्वा स्वभैरुक्त. पुरोधसा ।
ससैन्यस्तूर्णमागत्य जिनदेहमपूजयत् ॥१४॥

ततोऽग्नीन्द्रकिरीटस्थचूडामणिजवह्निना ।
दग्ध्वा निर्वाप्य तद्देहं गन्धाम्बुकुसुमाक्षतैः ॥१५॥

गणेशामार्षभाणाञ्च चितां संस्कृत्य दक्षिणे ।
शेषाणां वामके पार्श्वे त्रीनप्यग्नीन् समर्चयत् ॥१६॥

अथेन्द्रा नृपतीन्द्राय कृत्वा हस्तप्रसारणम् ।
आश्वास्याभाष्य मधुरं गणेशस्तं समर्पयन् ॥१७॥
ततो वृषभसेनस्त विलपन्तं वियोगत· ।
अनुशास्ति स्म राजेन्द्रमितिहासमिमं ब्रुवन् ॥१८॥
अस्माकमर्हतश्चापि सम्बन्धं शृणु राजराट् ।
चित्रससारकान्तारे भवादारभ्यमासवान् ॥१९॥
यदासीद् वज्रजङ्घोऽयं भगवानष्टमे भवे ।
तदा मतिवरो मन्त्री तस्याभूत्त्व हिते रत· ॥२०॥
सैन्येशोऽकम्पनो यश्च सोऽय बाहुवली नृपः ।
स्वसा याऽनुन्दरी तस्य सेयं ब्राह्मी तव स्वसा ॥२१॥
योऽभूदानन्दपुरोधा स इह सुन्दरसुन्दरी ।
पुत्रा ये वीरबाह्वाद्या· श्रीमत्यास्ते वय नृपेट् ॥२२॥
वयं कृत्वा तपः सम्यगाराधितचतुष्टयाः ।
आद्यग्रैवेयके सर्वे चाहमिन्द्रा बभूविम ॥२३॥
भगवान् वज्रनाभाख्यस्तृतीये तु भवे यदा ।
तदा यूयमभूताऽस्य पीठाद्या भ्रातरः प्रियाः ॥२४॥

कहा भी है—भवनवासी देवोंके दस इन्द्र, कल्पवासी देवोंके बारह इन्द्र, व्यन्तर देवोंके आठ इन्द्र तथा ज्योतिषियोंके दो इन्द्र, इस प्रकार मिलकर बत्तीस इन्द्र होते हैं ॥१३॥

चक्रवर्तीको अपने पुरोहित द्वारा स्वप्नके फलस्वरूप भगवान्‌के निर्वाणकी सूचना मिली जिससे सैन्यसहित शीघ्र आकर उन्होंने निर्वाण-कल्याणककी पूजा की ॥१४॥ तब अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटमें लगे हुए चूणामणि रत्नकी अग्निसे, सुगन्धित जल, पुष्प और अक्षतोंसे सिञ्चित उनकी देहका दाह संस्कार किया ॥१५॥ ऋषभसेन आदि गणधरोंकी अग्निको दक्षिण भागमें तथा अन्य मुनियोंकी अग्निको वाम भागमें स्थापित कर गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आह्वनीय अग्निकी उन लोगोंने पूजा की ॥ १६ ॥ इसके बाद इन्द्रोंने चक्रवर्ती भरतको हाथ फैलाकर आश्वासन दिया तथा मधुरालापकर गणधरोंको उन्हें सौंप दिया ॥१७॥ तब वृषभसेन गणधरने वियोगसे विलाप करते हुए उस चक्रवर्तीको समझाया और सब लोगोंका पूर्व वृत्तान्त कहा ॥१८॥

हे चक्रवर्ती, हम सबका और भगवान् आदिनाथका सम्बन्ध सुनो। जो इस विचित्र संसार रूपी जंगलमें अनेक भवोंमे घूमते हुए प्राप्त हुआ ॥१९॥ जब आठ भव पहले भगवान् वज्रजंघ थे तब तुम उनके हितकारी मतिवर नामके मंत्री थे। जो उनका अकम्पन नामका मंत्री था वह बाहुबली राजा हुआ और उसकी जो अनुन्दरी नामकी बहिन थी वह तुम्हारी ब्राह्मी नामकी बहिन हुई है ॥२०-२१॥ जो आनन्द नामका पुरोहित था वह सुन्दरी नामकी बहिन हुई है और श्रीमतीके जो वीरबाहु आदि पुत्र थे वे सब हम लोग हुए हैं ॥२२॥ हम लोगोंने तपकर तथा चार आराधनाओंका आराधनकर आद्य ग्रैवेयकमें अहमिन्द्र पद पाया था ॥२३॥ जब तीसरे भवमें भगवान् वज्रनाभ

अवतीर्य ततोऽभूम वय तस्यैव सूनवः ।
प्रव्रज्य वज्रनाभेन सहाऽकुर्म तपो महत ॥२५॥

आराध्य श्रीप्रभे शैले वय सर्वार्थमापिम ।
अभवामावतीर्येह पुरुदेवस्य पुत्रकाः ॥२६॥

रत्नगृहपतिर्योऽभूत्सोऽयं श्रेयान् कुरूत्तमः ।
येन धर्मरथस्येह द्वितीयं चक्रमुद्धृतम् ॥२७॥

एष सम्बन्धको भद्र मास्म शोकं कृथा वृथा ।
गन्तुं त्वरस्व तन्मूलमयं तस्य महास्पद. ॥२८॥

गणेन्द्रोक्त निशम्येन्द्रा नृपेन्द्रश्च सविस्मया ।
कृत्वा प्रदक्षिणं शैलं जग्मु. स्वं स्वं निकेतनम् ॥२९॥

स श्रावकान् समाहूय धृत्वा वृत्तिमपूजयत् ।
संज्ञाव्रत तदालम्ब्य सूत्रं कण्ठेषु राजराट् ॥३०॥

तनुवातयुते लोके सर्वज्ञे सिद्धिमीयुषि ।
ईजुस्तदाऽग्निहोत्र च लोकेऽद्यापि प्रवर्तते ॥३१॥

प्रणमन् साधुसङ्घञ्च धर्मं शृण्वन् सदोत्थितः ।
श्रावकांश्च सदा वृत्त्या पूजयन् भुवि सन्ततम् ॥३२॥

कृत्स्नं भारतं वास्यं पालयन् भरतः प्रभु. ।
अर्हद्भक्तः सुधर्मज्ञो दिव्यान् भोगान् प्रभुक्तवान् ॥३३॥

अन्यदा जातनिर्वेदो भरत सहसात्यजन् ।
राजराजश्रिय धीर सबलामबलामिव ॥३४॥

दत्वार्ककीर्तये राज्यं मुक्तियोग्यानुभावन. ।
लोचनोन्मेषकालेन कैवल्यमुदपादयत् ॥३५॥

नामके चक्रवर्ती हुए थे तब तुम लोग उनके पीठ आदि प्रिय भाई हुए थे ॥२४॥ ग्रैवेयकसे अवतीर्ण होकर हम लोग उनके ही पुत्र हुए। तथा वज्रनाभके साथ ही दीक्षा लेकर हम लोगोंने घोर तप किया ॥२५॥ फिर श्रीप्रभ शैलपर तपस्याकर हम सबने सर्वार्थ-सिद्धि प्राप्त की थी और वहाँसे अवतीर्ण होकर यहाँ आदिनाथ भगवान्‌के पुत्र हुए ॥२६॥

जो गृहपतिरत्न था वह यहाँ आकर कुरुवंशमें श्रेष्ठ श्रेयांस राजा हुआ जिसने धर्मरथके दूसरे चक्रको चलाया, अर्थात् दान-धर्मका प्रवर्तन किया ॥२७॥ इस संबंधको जानकर हे भद्र ! व्यर्थमें तुम शोक मत करो। उसके मूल मोहका त्याग करो क्योंकि यह शोकका महान् स्थान है ॥२८॥

इस प्रकार गणधरके द्वारा दिये गये उपदेशको सुनकर आश्चर्य-युक्त हो इन्द्रोंने तथा चक्रवर्तीने कैलाश पर्वतकी प्रदक्षिणा की तथा अपने-अपने स्थानको गये ॥२९॥ तब चक्रवर्तीने देशव्रत धारणकर कण्ठमे सूत्र (जनेऊ) धारी श्रावकोंकी, जो कि संयम धारण किये हुए थे, पूजा की ॥३०॥ सर्वज्ञ भगवान् आदिनाथके मोक्ष चले जानेपर वे लोग अग्निहोत्र (यज्ञ) को पूजने लगे, जो पद्धति आज भी लोकमें चल रही है ॥३१॥ वह चक्रवर्ती, सदा सावधान हो साधु-संघकी पूजा तथा धर्म-श्रवण करता हुआ तथा निरन्तर दान-सन्मान द्वारा श्रावकोंकी पूजा करता हुआ रहने लगा ॥३२॥ तथा यह ऐश्वर्यशाली राजा सम्पूर्ण भारतवर्षका पालन करता हुआ, अर्हन्त-भक्तिका आचरण करता हुआ और सुधर्मको जानता हुआ, दिव्य भोगोंको भोगने लगा ॥३३॥

किसी समय भरतको सहसा वैराग्य हो गया इसलिए उस धीर-वीरने स्त्रीके समान चक्रवर्तीकी उस चञ्चल विभूतिको त्याग दिया ॥३४॥ वह अर्ककीर्ति नामके अपने पुत्रको राज्य सौंपकर

अगुः शतसहस्राणि पूर्वाणां सप्तसप्ततिः ।
कौमारे षट् च साम्राज्ये तस्यैकं च सुसंयमे ॥३६॥
अन्ते वृषभसेनाद्यैरारुह्याष्टापदं सह ।
कृत्स्नकर्मक्षयात्प्रापन्मोक्षमक्षयमक्षरम् ॥३७॥
नृपास्त्रैलोक्यसारैकमुकुटस्पृष्टमस्तकाः ।
भरताद्या स्वपुत्रेभ्यो दत्वा दत्वा नरेशताम् ॥३८॥
चतुर्दशसहस्रास्तु शताभ्यस्ता निरन्तराः ।
जग्मुः मोक्षमवापुश्चैके स्वर्गाग्रेऽहमिन्द्रताम् ॥३९॥
एवं दशगुणांश्चाष्टौ परिपाल्य पुनः पुनः ।
सम्प्रापुरक्षरं मध्य एकैकोऽभूत्सुरेश्वरः ॥४०॥
कृत्वा कृत्वा तपः सम्यगुत्पाद्योत्पाद्य केवलम् ।
ततश्चित्रान्तरं जग्मुर्मोक्षमिक्ष्वाकुकेतवः ॥४१॥
नरनारीगणाः सर्वे ये साकेतपुरोद्भवाः ।
त्रिसप्तपरिवारास्ते जग्मुर्मोक्षं ततो दिवम् ॥४२॥
सागरोपमकोट्यस्तु शताभ्यस्ताः सहस्रिकाः ।
पञ्चाशदादितीर्थस्य कालसन्ततिरिष्यते ॥४३॥
एवमादिकरस्तीर्थं प्रवर्त्य परमेश्वरः ।
मार्गेणाशु गतिं भव्यानसंख्येयानजीगमत् ॥४४॥
तमगण्यगुणं पुण्यमनन्तं ज्ञानदर्शनम् ।
शिरसा काश्यपं वन्दे इक्ष्वाकुं मोक्षकाङ्क्षया ॥४५॥
उक्तञ्च—
आत्मनः पितृसन्तानादागतं विबुधैः कुलम् ।
सम्बन्धश्च स्वकीयायाः जनन्या गोत्रमुच्यते ॥४६॥
चरितं पुरुदेवस्य मदादशभवाश्रितम् ।
गण्यं गुण्यं च भण्यं च शुचिभिः प्रयतात्मभिः ॥४७॥
योऽध्येताऽध्यापकश्चास्य श्रोता श्रावयिता च यः ।
ते मुक्तोभयपाप्मानो यास्यन्ति परमां गतिम् ॥४८॥

मुक्तिके लिए योग्य भावनाओंका ध्यान करता हुआ एक निमेष मात्रमें केवलज्ञानी हो गया ॥ ३५ ॥ उस चक्रवर्तीके सतहत्तर लाख पूर्व वर्ष कुमारावस्थामें, छह लाख पूर्व वर्ष साम्राज्यावस्थामें और एक लाख पूर्व वर्ष संयममें बीते ॥३६॥ तथा अन्तमें उसने वृषभ-सेनादि गणधरोंके साथ कैलाश पर्वतपर आरूढ़ होकर और सम्पूर्ण कर्मोंको क्षयकर कभी नाश न होनेवाले अव्यय मोक्ष पदको प्राप्त किया ॥३७॥ जिनेन्द्र भगवान्के चरण-कमलोंमें मुकुट झुकानेवाले भरतादि राजाओंने अपने-अपने पुत्रोंको राज्य दे और दीक्षा ले उनमेंसे चौदह लाख तो मोक्ष गये तथा कुछ नवग्रैवेयक आदिमें अहमिन्द्र हुए ॥३८–३९॥ इस प्रकार अठारह गुणोंका बार-बार पालन करते हुए कुछ तो मोक्ष गये और कुछ मध्यग्रैवेयकमें इन्द्र हुए ॥४०॥ इक्ष्वाकु-कुल-तिलक कुछ राजा तप कर केवल-ज्ञानकी प्राप्ति कर मोक्ष गये ॥४१॥ साकेत (अयोध्या) में उत्पन्न सभी जो २१ परिवारवाले नरनारीगण थे—वे सब मोक्ष गये और शेष स्वर्ग गये ॥४२॥

भगवान् ऋषभनाथका तीर्थ-प्रवर्तन काल एक पूर्वांग अधिक पचास लाख करोड़ सागरोपम प्रमाण कहा गया है ॥४३॥ इस प्रकार भगवान् आदिनाथ तीर्थंकरने अपने तीर्थको चलाया और इस मार्गसे असंख्येय भक्तोंको मोक्ष भेजा ॥४४॥ उस अगण्य गुणवाले पुण्यस्वरूप, अनन्त ज्ञान-दर्शनवाले इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न काश्यप भगवान्को मोक्षकी इच्छासे शिर नमाकर प्रणाम करता हूँ ॥ ४५ ॥ कुल और गोत्रका अन्तर इस प्रकार है.—अपने पितृ क्रमसे आई हुई परम्पराको कुल कहते हैं। तथा अपनी स्वमाताके सम्बन्धसे आये हुए क्रमको गोत्र कहते हैं ॥ ४६ ॥

पवित्र यतिजनों द्वारा सदा माननीय, गुणनीय तथा कथनीय आदिनाथ भगवान्के इस चरितको जो पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं, सुनते हैं

यद्यत्र स्खलितं किञ्चिन्नामावलिकबन्धने ।
अर्हद्भक्तिमवेक्ष्यैतत् क्षाम्यं चरितकोविदैः ॥४९॥

इति दशभवनामनुतिबद्धमृषभजिनेऽधिकभक्तियुक्तबुद्धिः ।
प्रवरविनयनन्दिसूरिशिष्यः स्ववदत् भव्यहिताय दामनन्दी ॥५०॥

इति महापुराणे पुरुदेवचरिते पुराणसङ्ग्रहे भगवन्निर्वाणगमनो नाम पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥५॥



उक्तञ्च—

आर्षं बहुविधाख्यानं देवर्षिचरिताश्रितम् ।
इतिहासमिति प्रोक्तं मुनिभिर्वीरशासने ॥१॥

पञ्चसर्गविभक्तार्थो नानार्थाऽख्यानसंयुत. ।
शतान्यर्द्धचतुर्थानि श्लोकानामेष सग्रहः ॥२॥

क्षेत्रं द्रव्याणि लोकश्च कालोत्पत्तिर्युगानि च ।
तथा कुलकरो वंश पुराण सप्तलक्षणम् ॥३॥

येन कृत्स्न जगद् दृष्टं ज्ञानं च गुणपर्ययै. ।
योऽक्षयो योऽजयोऽनन्तस्तस्मै सर्वविदे नम ॥४॥

आद्यो महाबलो ज्ञेयो ललिताङ्गस्ततोऽपर ।
वज्रजंघस्तथाऽऽर्यश्च श्रीधरः सुविधिस्तथा ॥५॥

अच्युतो वज्रनाभोऽहमिन्द्रश्च वृषभस्तथा ।
दशैतानि पुराणानि पुरुदेवाऽऽश्रितानि वै ॥६॥



और सुनाते हैं वे भय और पापसे मुक्त हो उत्तम गतिको जाते हैं ॥ ४७–४८ ॥ यहाँपर नामावलि आदिके लिखनेमें जो कुछ गलती हो गई हो उसे अर्हद्भक्ति समझकर ही पुराण-शास्त्रके विद्वानोको क्षमा करना चाहिये ॥४९॥

इस प्रकार ऋषभ भगवान्में अधिक भक्ति सम्पन्न बुद्धिवाले श्री विनयनन्दि आचार्यके शिष्य दामनन्दीने भव्योके हितके लिए दशभवोंको लेकर चरित्र वर्णन किया ॥५०॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके पुरुदेव चरितमें भगवान्का निर्वाणगमन नामक पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

कहा है—

आर्ष नाना प्रकारकी कथाओसे युक्त देव और मुनियोंके चरितका वर्णन करनेवाला इतिहास है ऐसा वीर शासनमें रहनेवाले मुनियोंने कहा है ॥१॥ पाँच सर्गोंमे विभक्त, नाना अर्थ और कहानियोंसे युक्त ३५० श्लोको प्रमाण यह संग्रह है ॥२॥ क्षेत्र, द्रव्य, लोक, कालोत्पत्ति, युग, कुलकर और वंशका वर्णन जिसमे हो इस प्रकार सात लक्षणवाला पुराण होता है ॥३॥

जिसने गुण-पर्यायो सहित समस्त जगत्को देखा है और जाना है उस अक्षय, अजेय और अनन्त सर्वज्ञके लिए प्रणाम है ॥४॥

सर्व प्रथम महाबल, दूसरा ललितांग, तीसरा वज्रजंघ, चौथा भोगभूमियां आर्य, फिर श्रीधरदेव, इसके बाद सुविधिकुमार, सातवाँ अच्युतेन्द्र, आठवाँ वज्रनाभ, नवम अहमिन्द्र तथा दशवाँ ऋषभ ये दशभव पुरुदेव आदिनाथके हैं ॥५–६॥

चन्द्रप्रभचरित्रम्

स्वधामकल्पनातीतज्ञानातिशयसम्पदम् ।
स्तोष्ये चन्द्रप्रभ भक्त्या वरद नाममालया ॥१॥

पुष्करार्द्धस्य पूर्वस्यां मन्दरादपरे परे ।
विदेहे गन्धिले देशे बभूव श्रीपुरं पुरम् ॥२॥

दैवपौरुषधाम्नोऽत्र श्रीषेणस्य महीभुजः ।
प्रियाऽऽसीदपरेव श्रीः श्रीमती तनयार्थिनी ॥३॥

साऽर्हतामन्यदा भक्त्या पूजां कृत्वा शुभे दिने ।
शय्योत्सङ्गे सुखं सुप्ता प्रोपधम्लानविग्रहा ॥४॥

व्यलोकत रजन्यन्ते कमलायतलोचना ।
स्वप्नान् केशरिनागेन्द्रनिशाकररविश्रियः ॥५॥

अथ तस्यां सुतो जज्ञे श्रीवर्मा गुणवत्तमः ।
रमणीय इवानल्पो विभवः पुण्यसम्पदि ॥६॥

ववृधे जनचेतांसि निजैरानन्दयन् गुणैः ।
कुमुदानीव विमलः सकलो मृगलाञ्छनः ॥७॥

श्रीकान्ता तस्य जायाऽऽसीन्मनोनयनहारिणी ।
व्यराजत तयातीव लतया कल्पवृक्षवत् ॥८॥

बभूव श्रीधरः सूनुस्तयोरुत्तमपुण्ययोः ।
मूर्त्तिमत्तामिवोपेतश्चिरकालमनोरथः ॥९॥

आययौ श्रीधरस्तत्र जिनो भूत्यै शरीरिणाम् ।
तीव्रघर्मपरीतानां सवारिरिव वारिदः ॥१०॥

श्री चन्द्रप्रभ-चरित

अपने स्वरूपमे स्थित कल्पनातीत अनन्त ज्ञानादि अतिशय सम्पत्तिवाले तथा मनोरथदायक चन्द्रप्रभ भगवान्को भक्तिपूर्वक मैं उनकी नामावली गाकर स्तुति करता हूँ ॥१॥

पुष्करार्ध द्वीपके पूर्व मेरुकी पश्चिम दिशामें पूर्व विदेहके गन्धिल देशमें श्रीपुर नामका नगर था ॥२॥ दैव तथा पुरुषार्थसे प्राप्त शोभासम्पन्न वहाँ के राजा श्रीषेणकी दूसरी लक्ष्मीके समान श्रीमती नामकी रानी थी। उसे पुत्र-प्राप्तिकी तीव्र अभिलाषा थी ॥३॥ एक समय शुभ दिनमे अर्हन्त भगवान्की भक्तिपूर्वक पूजाकर, उपवाससे म्लान शरीरवाली वह रानी सुखपूर्वक शय्यामे सोयी थी ॥४॥ रात्रिके अन्तिम भागमे कमलके समान विशाल नेत्रवाली उस रानीने स्वप्नमे सिंह, ऐरावत हाथी, चन्द्रमा, सूर्य तथा लक्ष्मी देखे ॥५॥ अनन्तर उसे श्रीवर्मा नामका एक गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुआ। मानो पुण्य सम्पत्तिसे रमणीय महान् सम्पत्ति ही प्राप्त हुई है ॥६॥ जिस प्रकार निर्मल पूर्ण चन्द्र कुमुद-पुष्पोंको विकसित करता है उसी तरह निजगुणोंसे मनुष्योंके चित्तको प्रसन्न करता हुआ वह वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥७॥ मन और नेत्रोंको प्रसन्न करनेवाली उसके श्रीकान्ता नामकी रानी थी। उससे वह ऐसा सुशोभित होता था जैसे लतासे कल्पवृक्ष सुशोभित होता है ॥८॥ पूर्व पुण्योदयसे उन दोनोंको श्रीधर नामका पुत्र हुआ। मानो चिरकालके मनोरथ मूर्तिमान रूप धारणकर ही आये हों ॥९॥ वहाँ पर प्राणिवर्गके कल्याणके लिए श्रीधर नामके मुनिवर आये। मानो तेज धूपसे पीड़ित लोगोंके लिए जलयुक्त

श्रुत्वा प्रियंकरोद्याने तमासीनं महीपतिः ।
ययौ सेनावृतस्तूर्णमाकृष्ट इव तद्गुणैः ॥११॥

विधिवत्स तमभ्यर्च्य श्रुत्वा धर्मं विमोक्षधीः ।
ददौ श्रीवर्मणे राज्यं प्रीतो रत्नमिवाऽतुलम् ॥१२॥

शतैः पञ्चभिरुर्वीशां राजा साकमसङ्गिनीम् ।
दीक्षामुपाददे लक्ष्मीं दैवपौरुषवानिव ॥१३॥

अवाप्य राज्यसम्यक्त्वे सकान्ताभिरमा बहून् ।
भोगाननुबभूवोऽयानप्सरोभिरिवामरः ॥१४॥

आसीनस्ताभिराषाढपौर्णमास्यां निशामुखे ।
सौधोत्सङ्गे स्वपत्नीभिः कैलास इव वासवः ॥१५॥

ज्योत्स्नांशुकां चन्द्रादर्शां ताराभूषां निशावधूम् ।
शुभामालोकयन् रेमे भूषयन्तीं वधूमिव ॥१६॥

तत्पार्श्वे शीर्यमाणाङ्गी पपातोल्का विहायसः ।
भावानां ज्ञापयन्तीव स्थेयसीमव्यवस्थितिम् ॥१७॥

तामालोक्य भुवो नाथः कान्ताजनपरिग्रहः ।
नश्वरी भोगसम्पत्तिरुल्केवेति व्यरज्यत ॥१८॥

निधाय श्रीधरे राज्यश्रिय राजा गरीयसीम् ।
दिदीक्षे श्रीधरोपान्ते महीशां सप्तभिः शतैः ॥१९॥

चिरकालं तपो जैनं कृत्वान्ते श्रीप्रभे गिरौ ।
अशनं मासमुत्सृज्य श्रीप्रभे श्रीधरोऽभवत् ॥२०॥

मेघ ही आ गया हो ॥१०॥ राजा उनका प्रियंकर उद्यानमें आगमन सुन उनके गुणोंसे खींचे हुएके समान ही शीघ्र सेना सहित उनकी वन्दनाके लिए गया ॥११॥ उसने विधिपूर्वक उनकी पूजा की। उनसे धर्म श्रवणकर मोक्षकी अभिलाषासे उस राजाने प्रसन्न होकर श्रीवर्माको मूल्यवान रत्नके समान राज्य सौंप दिया ॥१२॥

पाँच सौ राजाओंके साथ उस राजाने इस प्रकार निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली। मानो दैव और पुरुषार्थ युक्त पुरुष लक्ष्मीको प्राप्त करता है ॥१३॥ राज्य और सम्यक्त्व दोनोंको पाकर श्रीवर्माने, देवियोंके साथ देवताओंके समान, अपनी रानिओंके साथ बहुतसे भोगोंको भोगा ॥१४॥

एक समय आषाढ़की पूर्णमासीके दिन सायंकाल वह अपनी रानियोंके साथ महलकी छतपर बैठा था जैसे इन्द्र कैलाश पर्वतपर बैठा हो ॥१५॥ इस प्रकार चन्द्रिका रूपी श्वेत वस्त्रसे सुशोभित, चन्द्रमा रूपी दर्पणसे युक्त हो, तारा गण रूपी भूषणोंको सजाती हुई शुभगुणसम्पन्न निशावधूको श‍ृङ्गार करती हुई वधूके समान देखकर वह रमण करने लगा ॥१६॥ उसी समय उसके पास ही आकाशसे क्षीण प्रकाशवाला उल्कापात हुआ। मानो वह यह बतला रहा हो कि पदार्थोंकी स्थिरता अनिश्चित है ॥१७॥ कान्ता, सेवक एवं परिग्रह आदिसे युक्त राजाने उस उल्कापातको देखकर यह विचार किया कि यह भोग-सम्पत्ति उल्काकी भाँति ही क्षणभङ्गुर है और वे विरागको प्राप्त हो गये ॥१८॥ राज्यके विशाल वैभवको अपने श्रीधर नामके पुत्रको देकर सात सौ राजाओंके साथ उस राजाने श्रीधर मुनिराजके पास दीक्षा ले ली ॥१९॥ फिर बहुत समय तक, कर्मोंको क्षय करनेवाले तपको करके अन्तमें श्रीप्रभ नामके पर्वतपर आरूढ़ हो उसने एक

द्विपयोनिधितुल्यायुस्तत्र भूत्वा सुरेश्वरः ।
उपभुज्य सुखं प्राज्यं ततो नाकादवातरत् ॥२१॥

दक्षिणे धातकीखण्डे पूर्वमन्दरभूभृत. ।
भारते पुर्य्ययोध्यायां विषयेऽलकनामनि ॥२२॥

अजितञ्जयभूमीशः श्रीदत्तायामजायत ।
तनयोऽजितसेनाख्यो विधेर्नित्यादुदर्कवत् ॥२३॥ युग्मम्॥

स्वराज्यं सूनवे दत्वाऽमितप्रभजिनान्तिके ।
दीक्षित्वा तपसा ज्ञानमवाप्य ज्योतिरक्षरम् ॥२४॥

जयदाऽजितसेनस्य जायाऽसीदतिसुन्दरी ।
जितशत्रुः सुतो यस्यां जातोऽरण्यामिवानल' ॥२५॥

अरिन्दमाय तद्दानं चारणायान्यदा ददौ ।
अलब्ध वसुधारादिं येन पूजां दिवौकसाम् ॥२६॥

चक्रचिह्नं स साम्राज्यमवाप्य गतविग्रहः ।
बुभुजे देवसम्पत्तिं देवविद्याधराहृताम् ॥२७॥

अभिषिच्य सुतं श्लाघ्य जितशत्रुं नृपेश्वरः ।
साम्राज्यं विजहौ धीमान् कुशाग्रस्थमिवाऽमृतम् ॥२८॥

प्रव्रज्य स्वगुरूपान्ते तपस्कृत्वा गतस्पृहः ।
द्वाविंशतिसमुद्रायुः प्रतीन्द्रोऽभवदच्युते ॥२९॥

जग्राहानुत्तमं तेजो भुक्त्वा सुखमयीं सुधाम् ।
ततोऽच्यवत स क्षीणस्वसंस्कारफलोदय. ॥३०॥

मासका उपवास धारण किया और देह त्याग कर श्रीप्रभ विमानमें श्रीधर नामका देव हुआ ॥ २० ॥ वहाँ उस देवकी दो सागर प्रमाणकी आयु थी तथा वह बहुत सुखोंको भोगकर स्वर्गसे च्युत हुआ ॥ २१ ॥

धातकी खण्डद्वीपके पूर्व सुमेरुकी दक्षिण दिशामें भरत क्षेत्रके अलका नामके देशमें अयोध्या नामकी नगरी है ॥ २२ ॥ वहाँके राजा अजितंजय और रानी श्रीदत्तासे वह स्वर्गसे च्युत देव अजितसेन नामका पुत्र हुआ मानो वह उनके किये हुए नित्यकर्मोंका फल ही हो ॥२३॥ फिर उस राजाने अपने पुत्रको राज्य देकर अमितप्रभ जिनेन्द्रके समीप दीक्षा ले ली और तप-बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण पद पाया ॥ २४ ॥

अजितसेनकी जयदा नामकी अत्यन्त सुन्दर पत्नी थी। उससे जितशत्रु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार अरणीसे अग्नि उत्पन्न होती है ॥ २५ ॥ उस अजितसेनने एक समय अरिन्दम नामके चारण मुनिराजको दान दिया। इससे रत्नोंकी वृष्टि कर देवताओंने उसकी पूजा की ॥ २६ ॥ फिर उस अजितसेन को चक्ररत्नकी प्राप्ति हुई। जिससे युद्ध-द्वारा दिग्विजय करते हुए उसने साम्राज्य प्राप्त कर देव और विद्याधरोंसे दी गई देव-सम्पत्तिको चिरकाल तक भोगा ॥ २७ ॥ इसके बाद उस बुद्धिमान् चक्रवर्तीने अपने योग्य पुत्र जितशत्रुको राज्यपद पर अभिषेक कर कुशातृणके अग्रभाग पर स्थित अमृतकी भाँति साम्राज्यको छोड़ दिया ॥ २८ ॥ वह अपने गुरुके समीप दीक्षा लेकर रागद्वेषसे रहित हो तप करने लगा तथा शरीर त्याग कर अच्युत स्वर्गमें बाईस सागरकी आयुवाला प्रतीन्द्र हुआ ॥ २९ ॥ वहाँ पर प्रखर प्रतापवाला वह प्रतीन्द्र आनन्दामृतका पान कर आयु समाप्त होने पर वहाँसे च्युत हुआ ॥ ३० ॥

पूर्वेण धातकीखण्डपूर्वमन्दरभूधृतः ।
विदेहे स्वस्तिकावत्यां नगरे रत्नसंचये ॥ ३१ ॥
देव्यां कनकमालायां कनकाभादजायत ।
पद्मनाभः सुतः कान्तो वसन्त इव सम्मतः ॥ ३२ ॥
कमनीयेन्दुलेखेव तस्य सोमप्रभा प्रिया ।
आसीत्सुवर्णनाभं या सुतं लेभे रवित्विषम् ॥ ३३ ॥
संस्थाप्य धुरि राज्यस्य स्वर्णनाभं गुणाकरम् ।
वाञ्छन् परं पदं राजा श्रीधरं शरणं ययौ ॥ ३४ ॥
चिरं राज्यश्रियं भुक्त्वा तां विसृज्य स्वसूनवे ।
दीक्षित्वा श्रीधरोपान्ते बभूवैकादशाङ्गवित् ॥ ३५ ॥
सिंहनिःक्रीडितं कृत्वा तपस्तीव्रमनाविलम् ।
बबन्ध तीर्थकृन्नाम स्वच्छैः षोडशकारणैः ॥ ३६ ॥
आराध्याराधनामन्ते शास्त्रवार्ताऽनुसारिणीम् ।
वैजयन्ते त्रयस्त्रिंशत्सागरायुरजायत ॥ ३७ ॥
तत्राहमिन्द्रतां प्राप्य स्वप्रभामग्नविग्रहः ।
आत्मपुण्यविपाकेन बुभुजेऽनुपमं सुखम् ॥ ३८ ॥
भारतेऽस्मिन्पदे लक्ष्म्याः ख्याते चन्द्रपुरे पुरि ।
आसीद्राजा महासेनो नम्रसामन्तमण्डलः ॥ ३९ ॥
शचीव लक्ष्मणा तस्य राज्ञी श्रीभिरुपासिता ।
निशान्ते षोडशान् स्वप्नान् सा गजादीनवैक्षत ॥ ४० ॥
तदन्ते कम्पयन्पुण्याद् भुवनानि सुरोत्तमः ।
सितद्विरदरूपेण स विवेश तदाननम् ॥ ४१ ॥
राज्ञे सा कृतसंस्कारा गत्वाऽऽख्यत्स च तत्फलम् ।
आख्यन्नो भविता सूनुर्नरेशो जगतामिति ॥ ४२ ॥

धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व सन्दराचल पर्वतके पूर्व विदेह क्षेत्रमें स्वस्तिकावती देशकी राजधानी रत्नसंचयपुर है ॥ ३१ ॥ वहाँके राजा कनकाभ और रानी कनकमालासे वह देव पद्मनाभ नामका पुत्र हुआ, जो कि वसन्तके समान मनोहर था ॥ ३२ ॥ उस पद्मनाभके चाँदनीके समान मनोहर सोमप्रभा नामकी रानी थी। उसके सूर्यकी कान्तिके समान प्रतापी सुवर्णनाभ नामका एक पुत्र हुआ ॥ ३३ ॥ पद्मनाभ सर्वगुणसम्पन्न अपने पुत्र सुवर्णनाभको राज्य सौंप कर मोक्ष-प्राप्तिकी इच्छासे दीक्षाके लिए श्रीधर मुनि-राजकी शरणमें गया ॥ ३४ ॥ इस प्रकार वहुत समय तक राज्य-लक्ष्मीका भोग कर उसने वह सव वैभव पुत्रको सौंप दिया और श्रीधर मुनिराजके चरणोंमें दीक्षा ले ग्यारह अंगका ज्ञाता हुआ ॥ ३५ ॥ उसने शुद्ध रीतिसे सिंहनिष्क्रीडित नामका महान् तप किया और निर्मल सोलह कारण भावनाओंकी आराधना कर तीर्थंकर प्रकृतिका वन्ध किया ॥ ३६ ॥ अन्तमें शास्त्रानुकूल आरा-धनाका अभ्यास करते हुए वैजयन्त नामके अनुत्तर विमानमें तेंतीस सागरकी आयुवाला अहमिन्द्र हुआ ॥ ३७ ॥ उस अहमिन्द्रका सम्पूर्ण शरीर कान्तिमय था। उसने वहाँ पूर्व पुण्योदयसे अनुपम सुख भोगे ॥ ३८ ॥

शोभाके क्षेत्र इसी भारतवर्षमें चन्द्रपुर नामका एक नगर है। वहाँ विनीत सामन्तोंसे युक्त महासेन नामका राजा राज्य करता था ॥ ३९ ॥ श्री इत्यादि देवियोंसे सेवित उसकी शचीके समान लक्ष्मणा नामकी रानी थी। उसने एक दिन रात्रिके अन्तिम भागमें हाथी आदि सोलह शुभ स्वप्न देखे ॥ ४० ॥ तदनन्तर अपने पुण्य वलसे संसारको कँपाते हुए सुरश्रेष्ठने श्वेत हाथीके रूपमें उस रानीके मुखमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥ प्रातःकाल रानी भूषण शृंगार आदिसे सुसज्जित होकर राजाके पास गई और राजासे उन स्वप्नों

तिस्रः कोटीर्हिरण्यानां सार्द्धकोटीर्धनेश्वरः ।
ववर्ष प्रत्यहं गेहे मासान् पञ्चदशानपि ॥ ४३ ॥

जीवं सा सुषुवे काले दिगिवैन्द्री निशाकरम् ।
अनुराधासमायोगं गते स्वच्छे निशाकरे ॥ ४४ ॥

ज्ञात्वा सपदि तत्सूतिमिन्द्राः स्वासनकम्पनैः ।
तत्पुरं देवसेनाभिराययुः समलंकृताः ॥ ४५ ॥

मन्दराऽग्र जिनं नीत्वा देवेन्द्राः ससुरासुराः ।
रत्नकुम्भैः पयोगर्भैरभ्यषिञ्चन्पयोऽम्बुधेः ॥ ४६ ॥

अलङ्कारैरलंकृत्य सस्तुत्य स्तुतिभाजनम् ।
चन्द्रप्रभ इति ख्यातं नाम कृत्वा ययुः पुरम् ॥ ४७ ॥

शची न्यस्य तमुत्सङ्गे मातुराकृत्य नाटकम् ।
पूजयित्वा जिनगुरून् देवैरिन्द्रा दिवं ययुः ॥ ४८ ॥

विभुः कान्त्येव बालेन्दुर्ययौ वृद्धिं यथा यथा ।
ज्योत्स्नेवेक्ष्वाकुवंशश्रीर्ययौ वृद्धिं तथा तथा ॥ ४९ ॥

दिवाऽप्यप्रतिघातिन्या कान्त्या यस्य तनोस्त्विषा ।
आरोहद् व्रीडितो व्योम शशलक्ष्मा शनैः शनैः ॥ ५० ॥

समस्तजनचेतांसि तस्य सद्गुणसंहतिः ।
विवेश सकलाभासिच्छायेव शशिनोऽमला ॥ ५१ ॥

अथ तस्मिन्नरेन्द्रश्रीरपास्य प्रकृतिं निजाम् ।
तद्गुणैः रञ्जिता रेमे कान्तिस्तारापताविव ॥ ५२ ॥

का फल पूछा। राजाने कहा कि हम दोनोंके त्रिभुवनका स्वामी श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा।।४२।। इस स्थितिमें इन्द्रकी आज्ञासे कुवेरने साढ़े तीन करोड़ रत्नोंको प्रतिदिन उनके घरमें पन्द्रह महीने,तक वर्षाया।।४३।। नव माह पूर्ण हो जाने पर रानीको पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ जिस प्रकार कि पूर्व दिशासे चन्द्रमाका उदय होता है। उस समय निर्मल चन्द्रमाका अनुराधाके साथ योग था।। ४४।। इन्द्रोंने अपने आसन कँपनेसे शीघ्र ही भगवान्के जन्मको जान लिया और सजधज कर देवोंकी सेनासहित उस नगरमें आये।। ४५।। इसके वाद देवों और असुरों सहित इन्द्रगण भगवान्को सुमेरु पर्वत पर ले गये और वहाँ पर क्षीरसागरके जलसे भरे हुए रत्नमयी कलशोंसे भगवान्का अभिषेक किया।। ४६।। फिर उन्होंने भगवान्को दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत किया और नाना प्रकारकी स्तुति कर उनका नाम चन्द्रप्रभ रखा तथा भगवान्की जन्मपुरीको लौट आये।।४७।। तत्पश्चात् उन्होंने इन्द्राणीके द्वारा भगवान्को माता-की गोदमें रखवाकर आनन्द नाटक किया तथा भगवान्की माता-पिताकी पूजाकर देवों सहित इन्द्र स्वर्ग चले गये।। ४८।। वाल चन्द्रमाके समान वे भगवान् शोभासे जैसे-जैसे वढ़ते गये वैसे-वैसे ही चाँदनीके समान उनकी इक्ष्वाकु वंश-रूपी लक्ष्मी वृद्धिको प्राप्त करती गई।। ४९।। भगवान्के शरीरकी चमक दिनके प्रकाशमें भी मन्द न पड़ने वाली थी इसीलिए मानो उस कान्तिसे लज्जित हो चन्द्रमा आकाशमें धीरे-धीरे चढ़ रहा था।। ५०।। उनका सद्गुणसमूह निर्मल चित्तवाले लोगोंके चित्तमें इस तरह प्रविष्ट हो गया था जैसे चन्द्रमाकी सम्पूर्ण कलाओंसे भासमान निर्मल छाया ही हो।। ५१।। राज्यलक्ष्मीने उन भगवान्को पा अपने चंचल स्वभावको छोड़ दिया था, और उनके गुणोंमें अनुरक्त हो चन्द्रमामें कान्तिके समान, रमण करने लगी थी।। ५२।।

उत्तराणां कुरूणां तां वहन्तीं विपुलां श्रियम् ।
भुवं शशास पुण्यात्मा स दिवं मघवानिव ॥ ५३ ॥

नृपमौलिमणिच्छायाजलधौतक्रमाम्बुजः ।
अमरैरद्भुतान् भोगानतीतान् बुभुजे चिरम् ॥ ५४ ॥

विषयान् विजिहासन्तं किम्पाकफलसन्निभान् ।
जिनं लौकान्तिका ज्ञात्वा बोधयित्वा दिवं गताः ॥ ५५ ॥

आगत्येन्द्राः सदेवास्तमभिषिच्य पयोजलैः ।
वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैर्भूषयामासुरुत्तमैः ॥ ५६ ॥

अभिषिच्य सुतं राज्ये संस्थाप्य रवितेजसम् ।
वचोभिः शान्तगर्भैस्तैरवरोधं व्यसर्जयत् ॥ ५७ ॥

शिविकां सुविशालाख्यामारुरोह पदं श्रियः ।
सहस्राम्रवनं निन्युस्तामूढ्वा त्रिदशेश्वराः ॥ ५८ ॥

अवतीर्य ततोऽपास्य तत्र वासो विभूषणम् ।
केशानपानयन्मूर्ध्नः संग्रहैः पञ्चभिर्जिनः ॥ ५९ ॥

अपराह्णेऽनुराधासु षष्ठभक्तोऽमरार्चितः ।
दीक्षां राजसहस्रेणाददे जन्मविभेदिनीम् ॥ ६० ॥

रत्ने पटलके केशान् समुपादाय वासवः ।
क्षीरोदे प्रणिधायैनं स्तुत्वा देवैरयाद्दिवम् ॥ ६१ ॥

पुरे नलिनखण्डाख्ये सोमदेवोऽन्यदा ददौ ।
सुभिक्षावृत्तये तस्मै तृतीयेऽहनि पायसम् ॥ ६२ ॥

सोऽवाप वसुधारादि पूजां मनुजदुर्लभाम् ।
पात्रदानविधिप्रीतमानसैरमरैः कृताम् ॥ ६३ ॥

त्रिमासान् स तपः कृत्वा निरतज्ञानभावनः ।
रम्ये चन्द्रपुरोद्याने ध्यानयोगे समास्थितः ॥ ६४ ॥

उन पुण्यात्मा भगवान्ने उत्तरकुरुकी भोगभूमि-जैसी विपुल लक्ष्मीको धारण करनेवाली भूमिका शासन किया जैसे इन्द्र स्वर्गका शासन करता है ॥ ५३ ॥ उन भगवान्के चरणकमल राजाओंके मुकुट मणिकी छाया रूपी जलसे धोये गये थे। इस प्रकार उन भगवान्ने चिरकाल तक पूर्वार्जित भोगोको देवोंके साथ भोगा ॥५४॥

एक समय जिनेन्द्रकी, विषफलके समान विषयोंको छोड़नेकी इच्छाको जानकर लौकान्तिक देव आये और उन्हें संबोधित कर स्वर्ग लौट गये ॥ ५५ ॥ तब देवों सहित इन्द्रोंने आकर उनको क्षीरसागरके जलसे स्नान कराया तथा उत्तम वस्त्र अलंकार और गंध आदिसे विभूषित किया ॥५६॥ फिर भगवान्ने रवितेज नामक पुत्रका अभिषेक कर राज्यपद पर बैठाया तथा अन्तःपुरकी रानियोंको शान्त वचनोंसे समझाकर लौटाया ॥५७॥ तब वे भगवान् सुविशाला नामकी पालकीमें बैठे और देवगण उसे उठाकर मनोहर सहस्राम्र नामक वनमे ले गये ॥ ५८ ॥ वहाँ उस पालकीसे उतर कर भगवान्ने वस्त्र और आभूषणोंका त्याग कर दिया तथा मुष्टिसे पाँच बारमें अपने सिरसे बाल उखाड़कर अलग कर दिये॥५९॥ और दोपहरके समय अनुराधा नक्षत्रमें देवोंसे पूजित उन भगवान्ने हजार राजाओके साथ षष्ठोपवास पूर्वक जन्मान्तरको नष्ट करनेवाली जिनेश्वरी दीक्षा ले ली ॥ ६० ॥ तदनन्तर इन्द्रने रत्नोंके पिटारेमे केशोंको रखकर क्षीरसागरमें उनको विसर्जित कर दिया तथा भगवान्की स्तुति कर देवोंके साथ वह स्वर्ग चला गया ॥ ६१ ॥ फिर तीसरे दिन आहारके लिए निकले हुए इन भगवान्को नलिनखण्ड नामके नगरमें सोमदेव राजाने क्षीरान्नकी पारणा दी ॥६२॥ जिसके प्रभावसे उस राजाके यहाँ धनवृष्टि हुई अर्थात् उसने पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये और देवताओंने पात्रदानकी विधिसे प्रसन्न होकर उसकी मनुष्यदुर्लभ पूजा की ॥ ६३ ॥ फिर ज्ञान भावनामें लवलीन

फाल्गुन्यसितपक्षस्य स मैत्रे सप्तमे दिने ।
अपराह्णे सितध्यानं षष्ठभक्तः समाश्रयत् ॥ ६५ ॥
ध्यानेन घातिकर्माणि क्षपयित्वाऽर्हितश्रिया ।
केवलज्ञानसाम्राज्यमवाप पुरुषोत्तमः ॥ ६६ ॥
ततो जिनमहापुण्यादाशु कम्पितविष्टराः ।
तज्ज्ञात्वाऽवधिना नाकैरिन्द्रा लघु समाययुः ॥ ६७ ॥
ईशं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्यानतमौलयः ।
कृत्वाऽष्टौ प्रातिहार्याणि पूजा चक्रुरनुत्तमाम् ॥ ६८ ॥
सृष्ट्वा चतुर्विधं सङ्घं ज्ञानांशुर्जिनचन्द्रमाः ।
निनाय निर्वृतिं लोकानज्ञानोष्णहतात्मनः ॥ ६९ ॥
त्रयो नवतिरीशस्य तस्य दत्तादयस्तथा ।
प्राप्तसप्तर्धयोऽभूवन्देवनूता गणेश्वराः ॥ ७० ॥
आसंश्च द्विसहस्रास्ते ख्यातपूर्वधरा वराः ।
मुनयोऽष्टसहस्राणि दिव्यावधिविलोचनाः ॥ ७१ ॥
पुनर्दशसहस्राश्च दिव्यकेवलिनोऽभवन् ।
सहस्राश्च तु विज्ञेया वैक्रियाणां चतुर्दश ॥ ७२ ॥
सन्मनःपर्ययवतामष्टौ ते च सहस्रिकाः ।
सहस्रैः सप्तभिर्युक्ताः षट्शतास्तस्य वादिनः ॥ ७३ ॥
लक्षे द्वे शिक्षकाणां तु चतुःशत्या युते पुनः ।
द्विलक्षा मुनयः सर्वे पञ्चाशच्च सहस्रिकाः ॥ ७४ ॥
तिस्रो लक्षा अशीतिश्च सहस्राश्च शुभार्यिकाः ।
तासामग्रेसरी नाम्ना सुलसा शीलधारिणी ॥ ७५ ॥
पञ्चसप्ततिसंख्या चतुःसहस्रैर्विमिश्रिता ।
श्रावकाणां प्रमाणं तु विशिष्टसुखभागिनाम् ॥ ७६ ॥
श्राविकाणां सहस्राणि सैका नवतिर्मानतः ।
चत्वार्य्येव च लक्षाणि शीलाचारसमन्विताः ॥ ७७ ॥

हो तीन मास तक तप कर चन्द्रपुर नामके मनोहर उद्यानमें ध्यान योगसे स्थित हो गये ॥ ६४ ॥ तदनन्तर फाल्गुन महीनेके कृष्ण-पक्षकी सप्तमीके दिन अनुराधा नक्षत्रमे दोपहरके समय षष्ठो-पवासपूर्वक शुक्लध्यान प्राप्त किया ॥ ६५ ॥ उस ध्यानयोगके द्वारा चार घातिया कर्मोंको नष्ट करके उन पुरुषश्रेष्ठ भगवान्ने अर्हन्त लक्ष्मीसे विभूषित हो केवलज्ञान-साम्राज्यको प्राप्त किया ॥ ६६ ॥ तब जिनेन्द्रके महापुण्यप्रतापसे शीघ्र ही इन्द्रोंके आसन कम्पित हो गये और अवधिज्ञानके द्वारा भगवान्की कैवल्य-प्राप्तिको जान-कर देवोंसहित वे लोग शीघ्र ही उनके पास आये ॥ ६७ ॥ और उन सबने अपने मुकुटोंको झुकाकर जिनेन्द्रकी प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया तथा आठ प्रातिहार्यपूर्वक अपूर्व पूजा की ॥ ६८ ॥ ज्ञान-किरणवाले उन जिनेन्द्रचन्द्रने चार प्रकारके संघका निर्माण कर अज्ञानता रूपी गर्मीसे पीड़ित जनोंको मोक्ष पहुँचाया ॥ ६९ ॥ उन जिनेन्द्रके दत्त आदि ९३ सप्त ऋद्धिधारी तथा देवताओंसे पूज्य गणधर थे ॥ ७० ॥ उनके समवसरणमे दो हजार चौदह पूर्व-धर मुनि थे तथा दिव्य अवधिज्ञानवाले आठ हजार मुनि थे ॥७१॥ दश हजार केवलज्ञानी थे और विक्रिया ऋद्धिवाले चौदह हजार मुनि थे ॥ ७२ ॥ मनःपर्ययज्ञानधारी मुनि आठ हजार थे तथा सात हजार छह सौ वादी मुनि थे ॥ ७३ ॥ दो लाख चार सौ शिक्षक (उपाध्याय) मुनि थे, इस प्रकार सब मुनि दो लाख पचास हजार थे ॥ ७४ ॥ उनके संघमे तीन लाख अस्सी हजार आर्यिकाएँ थीं और उनमे प्रधान सुलसा नामकी आर्यिका थी ॥ ७५ ॥ तीन लाख विशिष्ट पुण्य लाभ करनेवाले श्रावकोंका प्रमाण था ॥ ७६ ॥ श्राविकाओंकी संख्या, जो कि उत्तम शील और आचारसे सम्पन्न थी,—चार लाख ९१ हजार थी ॥ ७७ ॥ वे जिनेन्द्र प्राणियोंके कल्याणके लिए तथा चित्तको प्रसन्न करते हुए बहुत समय तक

विहृत्य देहिनां भूत्यै भुवं कालं चिरं जिनः ।
सम्मेदस्याऽग्रमारोहद्गिरेश्चित्तानुरञ्जिनः ॥ ७८ ॥

मास विहृतिमुत्सृज्य धूतशेषरजोमलः ।
ययौ मुनिसहस्रेण ज्येष्ठासु पदमक्षरम् ॥ ७९ ॥

सम्यक्त्वज्ञानसद्दृष्टिवीर्यसूक्ष्माऽवगाहना ।
अगुरुलघुताबाधैर्गुणैरष्टाभिरन्वितः ॥ ८० ॥

अथागत्य क्षिप्रं त्रिदशपतयः सामरगणाः
प्रभागन्धोद्दामोदककुसुमगन्धप्रभृतिभिः ।
तनोः पूजां कृत्वा त्रिभुवनगुरोरद्भुततमां
ययुः स्वानावासान् जिनगुणकथारञ्जितधियः ॥ ८१ ॥

इत्येवं मतिचापलोद्गतगिरा नूतो मया मालया
ज्ञानज्योतिरपास्तमोहनिचयस्थेयोऽन्धकारोदयः ।
शान्तात्मा जगतां पतिर्निरुपमोऽनन्तोऽक्षरः शङ्करो
दत्तान्नो रजसां जयं लघु जिनश्चन्द्रप्रभोऽनुत्तमः ॥ ८२ ॥

श्रीवर्मा श्रीधरः स्वर्गेऽजितसेनोऽच्युतः सुरः ।
पद्मनाभोऽहमिन्द्रो यस्तं वन्देऽहं शशिप्रभम् ॥ ८३ ॥

सागरोपमकोटीनां नवतिस्तीर्थसन्ततिः ।
यस्य कुन्देन्दुदीप्तं तं वन्दे चन्द्रप्रभं सदा ॥ ८४ ॥

इति पुराणसारसंग्रहे चन्द्रप्रभचरितं समाप्तम्

पृथिवी पर विहार कर सम्मेदशिखर पर्वतके शिखर पर आरूढ़ हुए ॥ ७८ ॥ एक मास तक विहार करना बन्दकर उन्होंने बाकीके चार अघातिया कर्मोंका नाश किया तथा ज्येष्ठा नक्षत्रमें हजार मुनियोंके साथ निर्वाण पदको प्राप्त हुए ॥ ७९ ॥ वहाँ वे जिन क्षायिक सम्यक्त्व, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, अव्याबाधत्व इन आठ सिद्धोंके गुणोंसे सुशोभित थे ॥ ८० ॥ देवताओं सहित इन्द्रगण वहाँ शीघ्र ही निर्वाणकल्याणक मनाने आये और दीप, धूप, जल, पुष्प और चन्दन, आदिसे उन त्रिभुवनपति जिनभगवान्के शरीरकी अद्भुत पूजा की तथा जिनेन्द्रकी गुणकथासे अपने चित्तको आह्लादित करते हुए वे अपने स्थानोंको लौट गये ॥ ८१ ॥

इस प्रकार चपलमतिसे प्रेरित वाणी द्वारा ज्ञानज्योति से निश्चल मोहान्धकारको नाश करनेवाले शान्तात्मा, जगत्पति, अनुपम, अनन्त, अक्षर और शंकर आदि नामावलिसे स्तुत वे महान् चन्द्रप्रभ भगवान् हमारे कर्ममलको शीघ्र क्षय करें ॥ ८२ ॥ जो कि अपने पूर्वभवोंमें श्रीवर्मा, स्वर्गमें श्रीधर, अजितसेन, फिर अच्युतेन्द्र, इसके बाद पद्मनाभ, फिर अहमिन्द्र हुए उन चन्द्रप्रभको नमस्कार है ॥ ८३ ॥ उन जिनेन्द्रकी तीर्थपरम्परा ९० सागर कोटि प्रमाण थी। स्वच्छ चन्द्रमाकी कान्तिवाले उन चन्द्रप्रभको मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥ ८४ ॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रह नामक पुराणमें चन्द्रप्रभ चरित्त समाप्त हुआ।

श्री शान्तिनाथचरितम्

प्रथमः सर्गः

शान्तिं जगद्धतिशान्तिं प्रणम्य मूर्ध्ना त्रिलोकशान्त्यर्थम् ।
वक्ष्यामि शान्तिचरितं शान्तिकरं सर्वजीवानाम् ॥ १ ॥

नामावलिकनिबद्ध द्वादशभवसंश्रितं सुधर्मेण ।
श्रुतकेवलिनाऽभिहितं जम्बूनाम्नेऽन्त्यकेवलिने ॥ २ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं श्रवणीयं श्रृणुत वद्धमार्याभिः ।
सम्राजां पञ्चमकं तीर्थकराणां च षोडशकम् ॥ ३ ॥

जम्बूद्वीपे भारतवास्ये विजयार्द्धदक्षिणश्रेण्याम् ।
राजाऽसीज्ज्वलनजटी रथनूपुरचक्रवालपुरे ॥ ४ ॥

देव्यस्य वायुवेगा सुतोऽर्ककीर्तिः स्वयम्प्रभा च सुता ।
अश्वग्रीवाद्यैः सा प्रयाचिता खेचरैः ख्याता ॥ ५ ॥

राजा वसन्तमासे गत्वा सान्तःपुरोऽन्यदोद्यानम् ।
[1]जगदभिनन्दनपार्श्वे पृष्ट्वा जग्राह सम्यक्त्वम् ॥ ६ ॥

कन्याऽन्यदा जिनानां प्रोषधयुक्ताऽर्चनं सुसंस्कृत्य ।
शेषां पित्रे दत्त्वा प्रपूजिता प्राविशत् पिता तु ॥ ७ ॥

आपूर्णयौवनां तां दृष्ट्वा कस्मै सुता प्रदेयेति ।
सञ्चिन्त्य मन्त्रशालां प्रविश्य मन्त्रिभ्य आख्यत्तत् ॥ ८ ॥

---

१ 'जगन्नाभिनन्दन' इति उत्तरपुराणे ।

श्री शान्तिनाथ चरित

प्रथम सर्ग

संसारमे अति शान्त और सर्व प्राणियोंको शान्तिदायक शान्तिनाथ भगवान्‌को सिर झुका प्रणाम कर मैं तीन लोकोंकी शान्तिके लिए भगवान् शान्तिनाथके चरितको कहता हूं ॥ १ ॥ यह चरित सुधर्म नामके श्रुतकेवलीने अन्तिम केवली जम्बू स्वामीको उनके बारह भवोंकी नामावलि पूर्वक कहा था ॥ २ ॥ चक्रवर्तियोंमे पाँचवें तथा तीर्थंकरोंमे सोलहवें उन शान्तिनाथ भगवान्‌के पुण्यवर्धक, सुनने योग्य तथा आर्या छन्दोंमें निबद्ध इस चरितको आप सब भी सुनें ॥ ३ ॥

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भारतवर्षके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे रथनूपुरचक्रवाल नामके नगरमे ज्वलनजटी नामका राजा था ॥ ४ ॥ उसके वायुवेगा नामकी रानी थी तथा पुत्रका नाम अर्ककीर्ति और पुत्रीका नाम स्वयंप्रभा था। अश्वग्रीव आदि कुछ विद्याधरोंने उस कन्याकी मंगनी की थी ॥ ५ ॥ किसी समय वसन्त महीनेमे राजाने अन्तःपुर सहित वनमें जगन्नन्दन और अभिनन्दन मुनिके पास जाकर और तत्त्व चरचा कर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया ॥ ६ ॥ किसी अन्य समयमे प्रोषधव्रत धारण कर उस कन्या स्वयम्प्रभाने जिन भगवान्‌की पूजा कर, और अपने पिताको शेषा प्रदान कर तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर घरमें प्रवेश किया ॥ ७ ॥ पिताने भी उसे पूर्णयौवना देख यह कन्या किसे देनी चाहिये ऐसा विचार कर मंत्रशालामें प्रवेश किया और

श्री शान्तिनाथचरितम्

प्रथमः सर्गः

शांतिं जगदतिशान्तिं प्रणम्य मूर्ध्ना त्रिलोकशान्त्यर्थम् ।
वक्ष्यामि शान्तिचरितं शान्तिकरं सर्वजीवानाम् ॥ १ ॥

नामावलिकनिबद्ध द्वादशभवसश्रितं सुधर्मेण ।
श्रुतकेवलिनाऽभिहितं जम्बूनाम्नेऽन्त्यकेवलिने ॥ २ ॥

इतिहासमिमं पुण्य श्रवणीयं शृणुत वद्धमार्याभिः ।
सम्राजां पञ्चमकं तीर्थंकराणां च षोडशकम् ॥ ३ ॥

जम्बूद्वीपे भारतवास्ये विजयार्द्धदक्षिणश्रेण्याम् ।
राजाऽसीज्ज्वलनजटी रथनूपुरचक्रवालपुरे ॥ ४ ॥

देव्यस्य वायुवेगा सुतोऽर्ककीर्तिः स्वयम्प्रभा च सुता ।
अश्वग्रीवाद्यैः सा प्रयाचिता खेचरैः ख्याता ॥ ५ ॥

राजा वसन्तमासे गत्वा सान्तःपुरोऽन्यदोद्यानम् ।
[1]जगदभिनन्दनपार्श्वे पृष्ट्वा जग्राह सम्यक्त्वम् ॥ ६ ॥

कन्याऽन्यदा जिनानां प्रोषधयुक्ताऽर्चन सुसंस्कृत्य ।
शेषां पित्रे दत्त्वा प्रपूजिता प्राविशत् पिता तु ॥ ७ ॥

आपूर्णयौवनां तां दृष्ट्वा कस्मै सुता प्रदेयेति ।
सञ्चिन्त्य मन्त्रशालां प्रविश्य मन्त्रिभ्य आख्यत्तत् ॥ ८ ॥

---

१ 'जगन्नाभिनन्दन' इति उत्तरपुराणे ।

श्री शान्तिनाथ चरित

प्रथम सर्ग

संसारमें अति शान्त और सर्व प्राणियोंको शान्तिदायक शान्तिनाथ भगवान्‌को सिर झुका प्रणाम कर मैं तीन लोकोंकी शान्तिके लिए भगवान् शान्तिनाथके चरितको कहता हूं ॥ १ ॥ यह चरित सुधर्म नामके श्रुतकेवलीने अन्तिम केवली जम्बू स्वामीको उनके बारह भवोंकी नामावलि पूर्वक कहा था ॥ २ ॥ चक्रवर्तियोंमे पाँचवें तथा तीर्थंकरोंमें सोलहवें उन शान्तिनाथ भगवान्‌के पुण्यवर्धक, सुनने योग्य तथा आर्या छन्दोंमे निबद्ध इस चरितको आप सब भी सुनें ॥ ३ ॥

इसी जम्बूद्वीप सम्बन्धी भारतवर्षके विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे रथनूपुरचक्रवाल नामके नगरमे ज्वलनजटी नामका राजा था ॥ ४ ॥ उसके वायुवेगा नामकी रानी थी तथा पुत्रका नाम अर्ककीर्ति और पुत्रीका नाम स्वयंप्रभा था। अश्वग्रीव आदि कुछ विद्याधरोंने उस कन्याकी मंगनी की थी ॥ ५ ॥ किसी समय वसन्त महीनेमे राजाने अन्तःपुर सहित वनमें जगन्नन्दन और अभिनन्दन मुनिके पास जाकर और तत्त्व चरचा कर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया ॥ ६ ॥ किसी अन्य समयमे प्रोषधव्रत धारण कर उस कन्या स्वयम्प्रभाने जिन भगवान्‌की पूजा कर, और अपने पिताको शेषा प्रदान कर तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर घरमें प्रवेश किया ॥ ७ ॥ पिताने भी उसे पूर्णयौवना देख यह कन्या किसे देनी चाहिये ऐसा विचार कर मंत्रशालामे प्रवेश किया और

श्रुत्वा सुतानिमित्तं मन्त्री त्वेकोऽब्रवीदुदक्छ्रेण्याम् ।
अश्वग्रीवोऽस्त्यलकापुर्यां भार्या च कनकेति ॥ ९ ॥

नीलरथनीलकण्ठौ वज्रसुकण्ठौ च मातृजास्तस्य ।
मन्त्री च हरिश्मश्रुः शतविन्दुश्चाऽपि नैमित्तः ॥ १० ॥

उभयश्रेणिस्वामी सर्वे विद्याधराश्च तद्वश्याः ।
बहुशो याचितवानपि बाला तस्मै प्रदेयार्य ॥ ११ ॥

अश्वग्रीवाय कन्या देयेति सुश्रुतेनोक्ते ।
सोऽतीतवयस्को बालेयमिति बहुश्रुतोऽवोचत् ॥ १२ ॥

शृणु गगनवल्लभपुरे राजा सिंहध्वजोऽतिवीर्यः ।
पद्मरथो मेघपुरे हेमाङ्गश्चित्रकूटे च ॥ १३ ॥

किन्नरगीते पवनञ्जयोऽस्ति मेघस्वरोऽप्यमृतवत्याम् ।
नरगीते हरिकम्पश्चिपुरे ललिताङ्गदश्चापि ॥ १४ ॥

रत्नपुरे रत्नरथोऽस्त्यरिञ्जयो रत्नसञ्चये राजा ।
श्रीनिलये चित्ररथोऽप्यश्वपुरे कनकचित्रश्च ॥ १५ ॥

एते खेचरसिंहाः साधितविद्याः समाश्च वयसाऽस्याः ।
एभ्यो वरं वरिष्टं परीक्ष्य तस्मै प्रयच्छामः ॥ १६ ॥

श्रुतसागरो बभाषे सुरेन्द्रकान्तारमुत्तरश्रेण्याम् ।
पुरमस्ति मेघवाहननृपोऽस्य भार्या च मेघवती ॥ १७ ॥

ज्योतिर्माला च सुता नाम्ना विद्युत्प्रभश्च सुतः ।
स किल पूर्वभवे जयसेनानन्दनसूनुः प्रभाकर्याम् ॥ १८ ॥

भूत्वा यशोधराख्यो दमवरपार्श्वे चतुःसहस्रैस्तु ।
वयसि प्रव्रज्याऽऽद्ये महेन्द्रकल्पेद् ततश्च्युत्वा ॥ १९ ॥

मन्त्रियोंके समक्ष इसकी चरचा की ॥ ८ ॥ पुत्रीके निमित्तकी यह बात सुनकर एक मंत्रीने कहा—उत्तर श्रेणीकी अलकापुरीमें अश्वग्रीव नामका विद्याधर और उसकी भार्या कनका [कनकचित्रा] रहते हैं ॥ ९ ॥ उसके नीलरथ, नीलकण्ठ, वज्रकण्ठ और सुकण्ठ नामके चार भाई हैं तथा हरिश्मश्रु मंत्री है और शतबिन्दु, नैमित्तिक है ॥ १० ॥ वह दोनों श्रेणियोंका राजा है और सभी विद्याधर उसके वशमें हैं, तथा उसने इस कन्याके लिए कई वार याचना भी की है। इसलिए हे स्वामी! यह कन्या उसे ही देनी चाहिये ॥ ११ ॥

"अश्वग्रीवको कन्या देनी चाहिये" यह सुश्रुतका सुझाव सुनकर बहुश्रुत नामके मंत्रीने कहा कि वह बहुत बड़ी आयुवाला है और यह कन्या अभी वाला ही है। इसलिए सुनिये, गगनवल्लभ पुरमें अति पराक्रमी सिंहध्वज तथा मेघपुरमें पद्मरथ और चित्रकूट में हेमाङ्ग, किन्नरगीतपुरमें पवनञ्जय, अमृतवतीमें मेघस्वर, नरगीतपुरमें हरिकम्प, त्रिपुरमें ललिताङ्गद, रत्नपुरमें रत्नरथ, रत्न-संचयपुरमें अरिञ्जय, श्रीनिलयमें चित्ररथ तथा अश्वपुरमें कनकचित्र ये सब राजा हैं ॥ १२–१५ ॥ ये सब विद्याधरोंमें सिंह हैं तथा इन्होंने विद्याओंको साधा है और इस कन्याके समान वयवाले हैं। इसलिए इनमेंसे जो श्रेष्ठ वर हो उसे देख हमें कन्या देनी चाहिये ॥ १६ ॥

तब श्रुतसागर नामके मंत्रीने कहा कि स्वामिन्, उत्तर श्रेणीमें सुरेन्द्रकान्तार नामका नगर है। वहाँ मेघवाहन राजा और उसकी रानी मेघवती रहते हैं। उन दोनोंके ज्योतिर्माला नामकी पुत्री और विद्युत्प्रभ नामका पुत्र है। वह विद्युत्प्रभ पूर्वभवमें प्रभाकरी नामकी नगरीमें रानी जयसेना और राजा नन्दनका पुत्र यशोधर हुआ था, और उसने दमवर मुनिके पास चार हजार राजाओंके

इह चरमदेहधारी सिद्धोऽयमिति श्रुतं मया पृष्टे ।
पित्रे वरधर्मोक्तं ददामि तस्मै कुमारीं नः ॥ २० ॥

सुमतिश्च राजमन्त्री विज्ञापयति स्म नरपतिं कार्यम् ।
सर्वेष्वविरुद्ध इति स्वयंवरो रोचते मेऽस्तु ॥ २१ ॥

श्रुत्वाऽथ मन्त्रिवाक्यं सोऽष्टाङ्गमहानिमित्ततत्त्वज्ञम् ।
सम्भिन्नश्रोतारं राजा सम्पूज्य पप्रच्छ ॥ २२ ॥

को मे दुहितुर्भर्त्ता भवितेत्युक्ते जगाद दैवज्ञः ।
भुवि दक्षिणार्द्धभरते प्रजापतिः पौदनपुरस्येति ॥ २३ ॥

नाम्ना जयाऽस्य भार्या मृगावती चेति तत्सुतौ ख्यातौ ।
विजयस्त्रिपृष्ठ इति तौ हलचक्रधरौ च भवितारौ ॥ २४ ॥

अश्वग्रीवं हत्वा प्रतिशत्रुं पर्वते रथावर्त्ते ।
उत्पन्नसर्वरत्नौ सितासितौ भोक्ष्यतः पृथिवीम् ॥ २५ ॥

त्वमपि प्राप्स्यसि राजन् विद्याधरचक्रवर्त्तितां ताभ्याम् ।
तस्माद् दुहितरमाशु प्रयच्छ नीत्वा त्रिपृष्ठाय ॥ २६ ॥

श्रुत्वा सम्भिन्नगिरं प्रतिगृह्य तथाऽस्त्विति प्रपूज्यैनम् ।
पौदनपुराय दूतं शुचिमिन्दुं प्रेषयामास ॥ २७ ॥

प्रत्यागते स्वदूते रथनूपुररक्षकान् सुसंस्थाप्य ।
नीत्वा महाविभूत्या प्रददौ कन्यां त्रिपृष्ठाय ॥ २८ ॥

तच्छ्रुत्वाश्वग्रीव. स्वदूतवचनात्सन्मन्त्रिबन्धुयुतः ।
चतुरङ्गया ध्वजिन्या महीतले योद्धमागच्छत् ॥ २९ ॥

साथ युवा अवस्थामें ही दीक्षा ले ली थी और शरीर छोड़ महेन्द्र स्वर्गमें देव हुआ था ॥ १७–१९ ॥ फिर वहाँसे च्युत होकर वह यहाँ चरमदेहधारी हुआ है। यह मैंने वरधर्म नामके मुनिसे सुना था। इसलिए हम लोग यह राजकुमारी उसीको दें ॥ २० ॥

इसपर सुमति नामके राजमंत्रीने राजासे निवेदन किया कि मैं किसीके विरुद्ध नहीं हूं इसलिए मुझे 'स्वयंवरपद्धति' पसंद है ॥ २१ ॥ मंत्रीके इस वचनको सुन राजाने अष्टांग महानिमित्तके ज्ञाता संभिन्नश्रोतासे सत्कारपूर्वक पूछा ॥ २२ ॥ कि "मेरी पुत्रीका पति कौन होगा" ऐसी वात सुन उस निमित्तज्ञने कहा कि उसी द्वीपके भारत देशकी दक्षिण दिशामे पोदनपुरका राजा प्रजापति और उसकी रानी जया व मृगावती रहते हैं। उन दोनोंके क्रमशः विजय तथा त्रिपृष्ठ नामके दो पुत्र हैं जो क्रमशः वलदेव तथा नारायण होनेवाले हैं। वे इस पर्यायमे रथनूपुर नगरके अपने प्रतिद्वन्द्वी विद्याधर-राजा अश्वग्रीवको रथावर्त पर्वतपर मारेंगे और फिर वे दोनों सर्व रत्नोंको पाकर पृथिवीका भोग करेंगे ॥ २३–२५ ॥ तथा हे राजन्! उन दोनोंके द्वारा तुम भी विद्याधरोंके सम्राट् पदको पाओगे। इसलिए शीघ्र ही कन्याको ले जाकर त्रिपृष्ठको दे दीजिये ॥ २६ ॥

सभिन्नश्रोताकी वात सुनकर राजाने यह वात मान ली और दृढ़ निश्चय किया कि उसीको कन्या देंगे। फिर राजाने उस निमित्तज्ञका खूब आदर-सत्कार किया और इन्दु नामके योग्य दूतको पोदनपुर भेजा ॥ २७ ॥ अपने दूतके लौट आनेपर रथनूपुरमें रक्षकोंको रखकर तथा कन्याको ले जाकर राजाने वहुत विभूतिके साथ उसे त्रिपृष्ठको विवाह दिया ॥ २८ ॥ यह वात अपने दूतके मुँहसे मंत्री तथा भाइयों सहित अश्वग्रीवने सुनी और चतुरंगिणी सेना सहित युद्ध करनेके लिए युद्धभूमिमें आ गया ॥ २९ ॥

तं प्रजापतिसुतावभिषिच्य खगेन्द्रचक्रवर्त्तित्वम् ।
दत्त्वा तस्मै तस्मात्प्रसह्य विद्ये स्म साधयतः ॥ ३० ॥

सिद्धे च महाविद्ये तयोर्गरुडसिंहवाहिन्यौ ।
पश्चात्स्वसैन्यसहितौ जग्मुः सर्वे रथावर्त्तम् ॥ ३१ ॥

मायासहस्रयुक्तं विद्याधरभूमिगोचरेन्द्राणाम् ।
युद्धं बभूव घोरं नानाऽऽयुधविहतविध्वस्तम् ॥ ३२ ॥

विजयोऽरिसुतभ्रातॄन् ज्वलनजटीसुतोऽपि सर्वतो नृपतीन् ।
अवधीदश्वग्रीवं तं चक्रिणं त्रिपृष्ठश्च ॥ ३३ ॥

उत्पन्नसप्तरत्नः प्रापज्जित्वाऽर्धचक्रवर्त्तित्वम् ।
मामोऽपि चक्रवर्त्ती स्वपुरमयाच्चक्रिणा युक्तः ॥ ३४ ॥

जाताऽर्ककीर्त्तिभार्या सुरेन्द्रकान्तारनृपतिजा कन्या ।
तत्पुत्रोऽमिततेजाः सुता च तस्याः सुतारेति ॥ ३५ ॥

जगदभिनन्दनपार्श्वे प्राव्राजीदर्ककीर्त्तिमभिषिच्य ।
कृत्वा च तपः सम्यग्ज्वलनजटी निर्वृतिं प्रापत् ॥ ३६ ॥

पुत्रौ स्वयम्प्रभायां जातौ श्रीविजयविजयनामानौ ।
ज्योतिःप्रभेति नाम्ना ताभ्यां च कनीयसी जज्ञे ॥ ३७ ॥

पिहितास्रवस्य पार्श्वे निष्क्रम्योग्रं प्रजापतिर्नृपतिः ।
कृत्वा सुतपश्चरणं निर्वाणमनुत्तरं प्रापत् ॥ ३८ ॥

दुहितुः स्वयंवरार्थं त्रिपृष्ठ आह्वयत् खगेन्द्रभूमीन्द्रान् ।
श्रुत्वाऽर्ककीर्तिरायात् सुतामादाय तत्रैव ॥ ३९ ॥

ज्योतिष्प्रभा हि वव्रेऽमिततेजसमात्ममैथुनं तत्र ।
श्रीविजयं च सुतारा मालामामोचयत्तुष्टया ॥ ४० ॥

इधर प्रजापति राजाके उन दोनों पुत्रों—त्रिपृष्ठ और विजयने उस ज्वलनजटीको राज्यतिलक कर विद्याधरोंका चक्रवर्ती बनाया तथा उससे दी गई दो विद्याओंको उन्होंने सिद्ध किया ॥ ३० ॥ उन दोनोंको गरुड़वाहिनी तथा सिंहवाहिनी दो महाविद्याएँ सिद्ध हो गईं तथा सब मिल अपनी-अपनी सेना सहित रथावर्त पवतपर गये ॥ ३१ ॥ वहाँपर विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओंका हजारों प्रकारके छलोंसे भरा हुआ और नाना प्रकारके आयुधोंसे विध्वंसकारी घोर युद्ध हुआ और उसमें भीषण रक्तपात हुआ ॥ ३२ ॥ वलभद्र विजयने शत्रुके पुत्र और भाइयोंको तथा ज्वलनजटीके पुत्रने अन्य शत्रुपक्षीय राजाओंको और त्रिपृष्ठने अश्वग्रीव प्रतिनारायणको मार डाला ॥ ३३ ॥

अश्वग्रीवको जीत लेनेके बाद उस त्रिपृष्ठको सप्त रत्न प्राप्त हुए और अर्द्धचक्रवर्ती पद भी मिला । वह ज्वलनजटी भी अर्धचक्रवर्ती त्रिपृष्ठके साथ अपने नगरको लौट आया ॥ ३४ ॥

ज्वलनजटीके पुत्र अर्ककीर्तिकी पत्नी सुरेन्द्रकान्तार देशके राजाकी पुत्री थी । उन दोनोंके अमिततेज पुत्र तथा सुतारा नामकी पुत्री हुई ॥ ३५ ॥ ज्वलनजटीने अर्ककीर्तिका राज्यतिलक कर जगदभिनन्दन जिनेन्द्रके पास दीक्षा ले ली । तथा अच्छी तरह तप कर उसने मोक्षपद प्राप्त किया ॥ ३६ ॥

त्रिपृष्ठके स्वयंप्रभासे श्रीविजय और विजय नामके दो पुत्र हुए तथा ज्योतिःप्रभा नामकी दोनोंसे छोटी पुत्री हुई ॥ ३७ ॥ त्रिपृष्ठके पिता राजा प्रजापतिने पिहिताश्रव मुनिके समीप दीक्षा धारण कर घोर तपस्या की और परमपद-निर्वाण प्राप्त किया ॥३८॥ अनन्तर त्रिपृष्ठने अपनी कन्याके स्वयंवरके लिए विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओंको बुलाया । यह सुनकर अर्ककीर्ति भी अपनी पुत्री सुताराको लेकर वहाँ आया । वहाँ ज्योतिष्प्रभाने

दृष्ट्वा स्वयंवरं तं क्षत्रगणाः साधु साध्विति ब्रुवन्तः ।
बलभद्रवासुभद्रौ पृष्ट्वा स्वं स्वं ययुर्नगरम् ॥ ४१ ॥

वर्षशतसहस्राणि चतुरशीतिं दिव्यमानुषान् भोगान् ।
भुक्त्वा ततस्त्रिपृष्ठः श्वभ्रं यातस्तु भोगेच्छः ॥ ४२ ॥

श्रीविजयमाधिराज्ये विजयं संस्थाप्य यौवराज्ये च ।
निष्क्रान्तो बलदेवः सुवर्णकुम्भान्तिके दुःखी ॥ ४३ ॥

श्रुत्वा तदर्ककीर्तिर्दत्त्वाऽमिततेजसे राज्यम् ।
प्राव्राजीन्निर्विण्णो विमलाऽमलबुद्धिमुनिपार्श्वे ॥ ४४ ॥

श्रीविजयस्यामिततेजसश्च सक्तमजर्यमेवासीत् ।
अन्योन्यागमनगमनसम्प्रेपणलेखपरिवृद्धम् ॥ ४५ ॥

एवं गतवति काले श्रीविजयं कश्चिदेत्य दैवज्ञः ।
विजयस्वेत्युक्त्वोच्चैः शृणु देवेत्यब्रवीद्वाक्यम् ॥ ४६ ॥

यः पोदनाधिपस्तस्य मस्तके सप्तमे दिने राजन् ।
अशनिः पतिष्यति यच्छ्रेयस्तत्कुरुष्वेति ॥ ४७ ॥

युवराजोऽवदच्छ्रुत्वा यदि नरपतिमस्तके पतेदशनिः ।
तव शिरसि किं पतिष्यति तद्दिवसे ब्रूहि नैमित्त ॥ ४८ ॥

इत्युक्तो नैमित्तो बभाण तद्दिवसे मच्छिरसि पूजा ।
कुम्भाष्टसहस्रयुता निपतिष्यति रत्नवृष्टिश्च ॥ ४९ ॥

श्रुत्वा श्रीविजयस्तं दत्त्वाऽऽसनमब्रवीद् द्विजं मधुरम् ।
किन्नामासि कुतस्त्यो विद्याऽधीता त्वया क्वेति ॥ ५० ॥

अमिततेजको अपने पतिके रूपमें वरण किया तथा सुताराने श्रीविजयके गलेमें अपनी माला प्रेमपूर्वक डाल दी ॥३९-४०॥ तब क्षत्रिय लोगोंने उस स्वयंवरको देखकर "साधु साधु" शब्दोंसे प्रशंसा की तथा बलभद्र और नारायणसे पूछकर अपने-अपने नगरों को लौट गये ॥ ४१ ॥ त्रिपृष्ठने चौरासी लाख वर्षों तक दिव्य और मनुष्य सम्बन्धी भोगोंको भोगा फिर भोगोंसे अतृप्त हो आयु पूरी होने पर नरक गया ॥ ४२ ॥

बलदेवने श्रीविजयको राज्यपद पर और विजयको यौवराज्य पद पर स्थापित कर दुःखित हो सुवर्णकुम्भ मुनिके पास दीक्षा ले ली ॥ ४३ ॥ यह सुन अर्ककीर्ति विद्याधर भी अमिततेज नामके पुत्रको राज्य देकर विरक्त हो गया और उसने निर्मल बुद्धिवाले अमलबुद्धि मुनिके पास दीक्षा ले ली ॥ ४४ ॥ श्रीविजय और अमिततेजकी एक दूसरेके पास आने-जाने, सन्देश भेजने और पत्रव्यवहारसे पुष्ट हुई घनिष्ट मित्रता हो गई ॥४५॥

इस प्रकार समय बीतता गया। एक समय एक निमित्तज्ञ श्रीविजयके पास आया और उच्च स्वरसे 'जय हो' कहकर बोला कि हे राजन्! सुनिये। पोदनपुरके राजाके ऊपर आजसे सातवें दिन वज्रपात होगा इसलिए जो उपाय हो कीजिये ॥ ४६-४७ ॥ यह सुनकर युवराज विजयने कहा कि यदि उस दिन नरपतिके ऊपर वज्र गिरेगा तो हे निमितज्ञ! तुम्हारे शिर पर क्या गिरेगा, बतलाओ ॥ ४८ ॥ निमितज्ञने उत्तर दिया कि उस दिन मेरे शिर पर १००८ कुम्भोंसे अभिषेक व पूजा होगी और रत्नवृष्टि भी होगी ॥ ४९ ॥ यह बात सुनकर श्रीविजयने उस ब्राह्मणको आसन पर बैठाया और मधुर शब्दोंमें पूछने लगा कि आपका नाम क्या है? आप कहाँके रहनेवाले हैं और कहाँ विद्या पढ़ी है ॥ ५० ॥

पृष्टो नरपेणैवं विप्रः प्रोवाच नामकुलगोत्रम् ।
कुण्डलपुरसिंहरथस्य मत्पिताऽसीच्च नैमित्तः ॥ ५१ ॥

शौण्डिल्यायनगोत्रो सुरगुरुशिष्यो विशारदो नाम्ना ।
अहमपि नाम्ना राजन्नमोघजिह्वश्च तत्पुत्रः ॥ ५२ ॥

बलदेवप्रव्रजनं यदा सञ्जासीन्नृपोरामैर्बहुभिः ।
प्राव्राजिषं तदानीं सह पित्रा जातरागोऽहम् ॥ ५३ ॥

ज्योतिर्ज्ञाने प्रीतः परीषहैर्दुःसहैः पुनर्भग्नः ।
व्यपगतसाधुगणोऽहं संप्रापं पद्मिनीखेटम् ॥ ५४ ॥

सोमार्यो मे मामो हिरण्यलोमा पितृष्वसा तत्र ।
चन्द्राननेति दुहिता पूर्वोद्दिष्टा च मे दत्ता ॥ ५५ ॥

आजीविकाकारणार्थं लाभं दृष्ट्वाऽहमागतोऽस्मीह ।
इत्युक्तः श्रीविजयः सन्मन्त्रिभिर्मन्त्रमारेभे ॥ ५६ ॥

सुमतिरभाषत मन्त्री मञ्जूषामायसीं व्यपेतविलाम् ।
कृत्वा समुद्रमध्ये तस्यां निदधाम राजानम् ॥ ५७ ॥

श्रुत्वा सुबुद्धिसञ्ज्ञस्तदब्रवीदग्निमेघवर्षासु ।
अन्तेऽतिदुःषमायां निपतत्स्विह भारते वास्ये ॥ ५८ ॥

माश्लिष्टान्ते जीवाः प्रविश्य यस्यां महागुहायाम् ।
अन्तर्विजयार्द्धेऽतोऽथो वयं नयामोऽत्र राजानम् ॥ ५९ ॥

उक्तं तयोर्निशम्य स्म भाषते बुद्धिसागरो मन्त्री ।
शृणुतैकमुपाख्यानं वृत्तमिदं कुम्भकारकटे ॥ ६० ॥

राजाके इन प्रश्नों पर ब्राह्मणने अपने नाम, कुल और गोत्रको बतलाया और कहा कि मेरे पिता कुण्डलपुरके राजा सिंहरथके निमित्तज्ञ थे। इनका गोत्र शौण्डिल्यायन था। वे सुरगुरुके शिष्य थे और विशारद उनका नाम था। हे राजन्! मैं भी अमोघजिह्व नामका उनका पुत्र हूँ॥ ५१-५२॥ जब बहुतसे श्रेष्ठ राजाओंके साथ बलदेवने दीक्षा ली थी तब मैं भी रागवश पिताके साथ दीक्षित हो गया था॥ ५३॥ पर ज्योतिषके ज्ञानमें विशेष अनुराग होनेसे तथा परिषह न सह सकनेके कारण मैं साधु संघसे अलग होकर पद्मिनीखेट नगरमें पहुँचा॥ ५४॥ वहाँ मेरे मामा सोमार्य और मेरी फुआ हिरण्यलोमा थी। उन्होंने चन्द्रानना नामकी अपनी पुत्रीसे मेरा विवाह कर दिया जिसका पहलेसे ही मेरे साथ विवाह करनेका उन्होंने संकल्प कर लिया था। आजीविकाके निमित्त लाभ देखकर मैं यहाँ आया हूं"—यह सुन श्रीविजयने अपने मन्त्रियोंसे सलाह लेना प्रारम्भ किया, कि उस राजाकी रक्षाके लिए क्या करना चाहिये॥ ५५-५६॥

सुमति नामके मन्त्रीने कहा कि निश्छिद्र लोहेकी पेटीको समुद्रमें रखकर उसमें राजाको बैठा देना चाहिए॥ ५७॥ सुबुद्धि मन्त्रीने कहा कि अतिदुःषमा कालके अन्तमें इस भारतवर्षमें अग्नि और मेघकी वर्षा होने पर विजयार्ध पर्वतकी जिस महागुफामें रहकर कुछ जीव अपने प्राण बचावेंगे उस गुफामें ही हमें राजाको ले चलना चाहिये॥ ५८-५९॥ उन दोनोंकी यह बात सुन बुद्धिसागर नामके मन्त्रीने कहा कि मैं एक उपाख्यान कहता हूँ सुनिये—

कुम्भकारपुर नामके ग्राममें चण्डकौशिक नामका ब्राह्मण और उसकी सोमश्री नामकी स्त्री रहती थी, जो निःसन्तान थी। उन्होंने चिरकाल तक भूतोंकी पूजा की जिससे उन्हें एक पुत्र

सोमश्रीरनपत्या तद्विप्रश्चण्डकौशिकश्चासीत् ।
नमसित्वा भूतांस्तौ चिरकालात्पुत्रमलभेताम् ॥ ६१ ॥
सोऽपि च वानरवदनः परिवृद्धो मौण्डकौशिको नाम्ना ।
तन्नगरे कृतसमयः पुरुषाशी राक्षसः कुम्भः ॥ ६२ ॥
ब्राह्मणवारे प्राप्ते भूतैः शरणागतो द्विजो भणितः ।
त्वं राक्षसे निवेदय वयमस्मादुद्धरिष्यामः ॥ ६३ ॥
दत्तो द्विजेन पुत्रो भूतैरुद्धृत्य गिरिविले क्षिप्तः ।
तत्र च बुभुक्षितः सन्नगिलदजगरस्तकं बटुकम् ॥ ६४ ॥
एवं यत्प्रासव्यं तत्क्वचिदपि प्राप्यते ध्रुवं जीवैः ।
तस्मादिहैव शान्ति कुर्वाणा उपविशामैकः ॥ ६५ ॥
मतिसागरश्चतुर्थः प्राभाषत मन्त्रिकुञ्जरो वाक्यम् ।
सञ्चिन्त्योक्तं तेषां विचार्य स्वबुद्ध्येत्थम् ॥ ६६ ॥
पोदनपुराधिपतिमस्तकेऽशनिर्निपतितेति तेनोक्तम् ।
नोक्तं नामोद्दिश्य च यस्माच्छ्रीविजयशिरसीति ॥ ६७ ॥
तस्मादेवमिह पुरे राजानं पूजितं करिष्यामः ।
चैत्यं व्यपेतराज्यः श्रीविजयोऽप्यस्तु सप्ताहम् ॥ ६८ ॥
इत्युक्तेऽस्त्विति सर्वे प्रतिमाऽऽगारं प्रविश्य ददृशुस्ते ।
सोमेन्द्रवरुणयमरविवैश्रवणानाञ्च तत्राऽर्चाः ॥ ६९ ॥
वैश्रवणस्य प्रतिमां प्रणिधाय च सर्वलक्षणोपेताम् ।
महद्ध्याऽधिराज्ये तां सर्वे संस्थापयाञ्चक्रुः ॥ ७० ॥
वैश्रवणमहाराजं सभागृहे पट्टचामरोपेतम् ।
स्वैः स्वैर्यथानियोगैर्निषिषेविरे श्रेणयः सर्वाः ॥ ७१ ॥
राजाऽपि चतुःशरणं प्रपद्य कुर्वन् जिनेन्द्रवरपूजाम् ।
उद्घोपितमाघातश्चासाञ्चक्रे जिनायतने ॥ ७२ ॥

हुआ। वह बन्दर-जैसे मुखवाला था तथा बुड्ढों-जैसा था। उसका नाम मौण्डकौशिक था। उसी नगरमें मनुष्य खानेवाला कुम्भ नामका राक्षस रहता था। वह बारी-बारीसे पुरुषोंको मारकर खाता था ॥ ६०–६२ ॥ जब कि ब्राह्मणके लड़केकी पारी आई तो ब्राह्मणने भूतोंकी शरणमें जाकर निवेदन किया, तब भूतोंने कहा कि तुम राक्षससे निवेदन करो, हमलोग उससे तुम्हारे पुत्रको बचा लेवेंगे। तब ब्राह्मणने अपने पुत्रको राक्षसको दे दिया पर भूतोंने उससे पुत्रको बचाकर एक पर्वतकी गुफामें रख दिया। वहाँ पर एक भूखे अजगरने उस लड़केको खा लिया ॥ ६३–६४ ॥ इसलिए जो होना है वह कहीं पर रहो अवश्य होगा, अतएव शान्ति रखकर हम लोगोंको यहीं चुप बैठना चाहिये ॥ ६५ ॥ तब मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ मतिसागर नामके चौथे मन्त्रीने उन सब लोगोंके कहे हुएको विचार कर अपनी बुद्धिसे यों कहा कि—ज्योतिषीने तो केवल यह कहा है कि पोदनपुरके राजाके शिर पर वज्र गिरेगा। उसने नाम लेकर तो यह नहीं कहा कि श्रीविजयके शिर पर वज्र गिरेगा ॥ ६६–६७ ॥ इसलिए इस नगरमें किसी अन्यका राज्याभिषेक कर दिया जाय और श्रीविजय राज्यका परित्याग कर सात दिन तक चैत्यमें निवास करें ॥ ६८ ॥ इस पर सबने सहमति दे दी। फिर सभी प्रतिमागृहमें गये और वहाँ पर उन लोगोंने सोम, इन्द्र, वरुण, यम, रवि और वैश्रवणकी पूजा होती हुई देखी ॥ ६९ ॥ अनन्तर सब लक्षणोंसे सम्पन्न कुवेरकी प्रतिमाको देखकर उन लोगोंने राजाके स्थान पर उसकी स्थापना की ॥७०॥

फिर मुकुट और चामरयुक्त वैश्रवण महाराजकी सभी श्रेणीके लोग अपने-अपने नियोगके अनुसार सेवा करने लगे। राजा भी चार शरणोंको प्राप्त होकर जिनमन्दिरमें जा जिन भगवान्‌की पूजा करता हुआ रहने लगा, तथा नगरमें भी पूजा आदि शान्ति कर्मों

दानोपवासयुक्तो गृहे गृहे पुरजनोऽपि तद्भक्त्या ।
जिनपूजामारेभे श्रीविजयप्रातिहार्य्यार्थम् ॥ ७३ ॥

मेघाः प्रादुरभूवंस्ततः षड्दिनान्यतिगमय्य ।
अम्बरमावृण्वन्त्यो धारा विद्युत्स्तनितवत्यः ॥ ७४ ॥

वृष्ट्योऽथ महावर्षिदिवाशनिर्घोरभीमरवयुक्ता ।
वैश्रवणमस्तके सा शतधा निपपात भिन्दाना ॥ ७५ ॥

दृष्ट्वाशनिं निपतितां तदोपरि स्थापना नरेन्द्रस्य ।
श्रीविजयो जीव्यादित्युत्कृष्टं नरगणैस्तुष्टैः ॥ ७६ ॥

कृत्वाऽस्य मृतकपूजां राजा नैमित्तिकं समाहूय ।
कुम्भाष्टसहस्रेण स्नपयित्वा सपरिपत्कः ॥ ७७ ॥

आभरणवस्त्रचूर्णकविमिश्रिता रत्नकुसुमवसुधाराम् ।
तन्मस्तकेऽतिमात्रां प्रपात्य वरकनकवृष्टिञ्च ॥ ७८ ॥

सार्धं ग्रामशतेन प्रददौ तस्मै च पद्मिनीखेटम् ।
युवराजमन्त्र्यमात्यपुरपूजितश्चागमद्विप्रः ॥ ७९ ॥

श्रीविजयोऽप्यभिषेकं व्यपेतपीडः पुनश्च सम्प्राप्य ।
अददात्सुमहद्वित्तं मन्त्रिप्रियपृच्छकेभ्यश्च ॥ ८० ॥

इति शान्तिचरिते पुराणसंग्रहे आर्यावृद्धे दामनन्द्याचार्यकृतौ
श्रीविजयकाण्डं नाम प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥

की घोषणा कर दी गई ॥ ७१–७२ ॥ उसकी भक्तिसे नगरवासी जन भी श्रीविजयकी शुभ कामनाके लिए दान तथा उपवास पूर्वक पूजा करने लगे । छह दिन वीतनेके वाद उपद्रवकारी मेघ आकाश में घिरने लगे, और बिजलीकी कड़कड़ाहट पूर्वक मूसलाधार वर्षा होने लगी । उस महावृष्टिके बाद भयंकर शब्द करता हुआ एक वज्र उस कुबेरकी प्रतिमा पर गिरा जिससे वह सौ टुकड़े हो गई ॥ ७३–७५ ॥ उस मूर्तिके ऊपर वज्रको गिरा हुआ देखकर सन्तुष्ट मनुष्योंने श्रीविजयकी जय बोली । फिर उस मृतक प्रतिमाकी सत्कारपूर्वक अन्त्येष्टि कर राजाने नैमित्तिकको बुलाया और उसका एक हजार आठ कलशोसे अभिषेक किया ॥७६–७७॥ तथा नाना प्रकारके वस्त्र, आभूषणोंको प्रदान कर उसके शिर पर सुवर्णरत्न और पुष्पोंकी वृष्टि की ॥७८॥ तथा उसे सौ गाँवके साथ पद्मिनी खेट भेंटमें दिया । वह विप्र भीयुवराज, मन्त्री और अमात्य तथा पुरवासी लोगोंसे पूजित हो वहाँसे चला गया । अनन्तर सब लोगोंने श्रीविजयका फिरसे राज्याभिषेक किया और राजाने भी अपने मन्त्रियों और प्रेमियोंको खूब धन दान दिया ॥७९–८०॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके शान्तिनाथचरितमें श्रीविजयकाण्ड नामक प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ।

द्वितीयः सर्गः

विज्ञापितोऽथ राजा सुतारया सोऽन्यदा तया सार्धम् ।
प्रियया परिचितपूर्वं ज्योतिर्वनमागतो द्रष्टुम् ॥ १ ॥

तस्मिन्विहृत्य देवी क्रीडाश्रान्ता शिलातलनिविष्टा ।
मृगमभिरूपं दृष्ट्वा प्रियमवदत्पश्य पश्येति ॥ २ ॥

ज्ञात्वानुभावमस्या मृगं ग्रहीतुं शनैरनुदधाव ।
गत्वा काञ्चिद्दिशं सोऽपि मृगोऽदृश्यतामगमत् ॥ ३ ॥

व्यर्थश्रमः सलज्जो राजाऽप्यशृणोदितः करुणशब्दम् ।
हा नाथ कुतोऽसि गतः कुक्कुटसर्पेण दष्टेति ॥ ४ ॥

श्रुत्वा मा भैषीरिति वेगेनागत्य नरपतिः कान्ताम् ।
दृष्ट्वोरगापराद्धां विषघातमपनेतुमारेभे ॥ ५ ॥

मन्त्रौषधैरवार्यं विषमिषुवत्प्राप्ता सा मण्डलेशम् ।
राजाऽपि विषशान्तां ज्ञात्वा प्रियया सह मुमूर्षुः ॥ ६ ॥

कृत्वोरुदारनिचयं प्रिये गमिष्यसि मया विना क्वेति ।
उक्त्वाऽरुरोह चितिकां कान्तामुपगुह्य दत्ताग्निः ॥ ७ ॥

पोदनपुरेऽप्यभूवन्राजभयनिवेदका महोत्पाताः ।
दृष्ट्वा जातभयं क्षुभितं सान्तःपुरं नगरम् ॥ ८ ॥

द्वितीय सर्ग

एक समय माताका आदेश पाकर श्रीविजय अपनी प्रिया सुताराके साथ क्रीडा करनेके लिए पूर्व परिचित ज्योतिर्वनमें गया ॥ १ ॥ वहाँ पर विहार करती हुई वह सुतारा थककर एक-शिला पर बैठ गई और वहाँ एक सुन्दर मृगको देखकर अपने प्रियसे कहने लगी कि देखो, उस मृगको देखो। राजा भी अपनी रानीकी इच्छा जानकर उस मृगको पकड़नेके लिए चुपके-चुपके उसके पीछे दौड़ा। वह मृग भी एक ओर जाकर अदृश्य हो गया। राजा भी विफल हो लज्जा सहित लौट ही रहा था कि उसने एक करुण शब्द सुना कि हे नाथ! तुम कहाँ चले गये हो, मुझे कुक्कुट सर्प ने डस लिया है ॥ २–४ ॥

यह सुन राजा बहुत शीघ्र वहाँ आया और स्त्रीसे कहने लगा कि डरो मत। उसने सर्पसे डसी हुई उसे जानकर विष दूर करनेवाले अनेक उपचार किये, किन्तु उसका विष मन्त्र और औषधिसे अवार्य था। वह लकड़ीके कुन्देके समान राजाकी गोदमें आ पड़ी। राजा भी उसे मरी जान उसके साथ मरनेको तैयार हो गया तथा रोकर कहने लगा, कि हे प्रिये! मुझे छोड़ कहाँ जा रही हो, यह कह उसने वहाँ एक चिता बनायी और आग लगाकर उसके साथ चिता पर जा बैठा ॥ ५–७ ॥ पोदनपुरमें भी राजाके अनिष्टसूचक बहुतसे उत्पात हुए। यह देख तमाम रनवास और नगर क्षुभित हो गया। इससे वह ब्राह्मण भी तेज घोड़ोंवाले रथ पर चढ़कर शीघ्र ही राजमहलमें आया और विजयको, राजाकी माँको तथा

वरतुरगसम्प्रयुक्तं रथमारुह्याऽगमद् द्विजः शीघ्रम् ।
मा भैष्टेति वदंस्तान्विजयं जननीं पुरजनञ्च ॥ ९ ॥

कृतविनयः कृतविनयानमोघजिह्वोऽवदच्छृणुत राजा ।
प्राप्तस्सन्देहमुरुं किंपुनरारोग्यमीशस्य ॥ १० ॥

अचिरादेव च राज्ञः प्रवृत्तिरायास्यतीति निर्दिष्टे ।
तत्समयेऽम्बरशिखरे ददृशुर्विद्याधरयुवानम् ॥ ११ ॥

अवतीर्याऽसौ गगनात्कृतोपचारः स्म वदति नृपजननीम् ।
श्रीविजयभद्रपार्श्वादायामि सम्प्रहितोऽहमिति ॥ १२ ॥

सम्भिन्नो मे जनको नाम्ना माता च सर्वकल्याणी ।
दीपशिखो नाम्नाऽहं खचरो ज्योतिःपुरनिवासी ॥ १३ ॥

उद्यानगमनहेतोराहूतावमिततेजसा चावाम् ।
अगमाव पितापुत्रौ शिखरितलं ख्यातमुद्यानम् ॥ १४ ॥

तस्मान्निवर्तमानौ खे यानविमानकेऽशृणुव शब्दम् ।
हाऽमिततेजः श्रीविजयेति स्त्रीक्रन्दितं करुणम् ॥ १५ ॥

श्रुत्वा नामग्रहणं कस्त्वं कां हरसि कुत्र वेत्युच्चैः ।
उद्गीर्णखड्गचापौ तर्जन्तौ तत्पुरो यातौ ॥ १६ ॥

प्रोतस्थे तच्छब्दादिन्द्राशनिसूनुरहमिति प्रगदन् ।
मामासुर्यास्तनयं न वित्थ किं भो अशनिघोषम् ॥ १७ ॥

एषा मया सुतारा ह्रियते श्रीविजयराजपत्नीति ।
आवाभ्यामारेभे खे योद्धुं चमरचञ्चेशः ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा तु तौ प्रयुद्धौस्तुष्टाऽगदीद्वो विमानकान्तःस्था ।
मा युत्सातां तातौ यातां ज्योतिर्वनं शीघ्रम् ॥ १९ ॥

पुरवासियोंको भय मत करो इस प्रकार सान्त्वना देने लगा ॥ ८-९ ॥ अमोघजिह्व निमित्तज्ञानीने विनयपूर्वक यह पूछे जाने पर कि राजाका क्या हाल है—उत्तरमें नम्रतापूर्वक कहा कि राजा को एक बड़ा भय उत्पन्न हो गया है। फिर उसके आरोग्यके विषय मे तो कहना ही क्या है पर शीघ्र ही उनकी राजी-खुशीका समाचार आवेगा। ऐसा कहते समय ही उन सब लोगोंने आकाशसे उतरते हुए एक नवयुवकको देखा। आकाशसे उतरकर उसने अभिवादनपूर्वक राजाकी मातासे कहा कि श्रीविजयके पाससे उनका भेजा हुआ आ रहा हूं। मेरे पिताका नाम संभिन्न और माताका नाम सर्वकल्याणी है। ज्योतिःपुर निवासी, मैं उनका पुत्र दीपशिख हूं ॥ १०-१३ ॥ रथनूपुरके राजा अमिततेजके साथ उनके आमन्त्रण पर हम दोनों पिता-पुत्र उद्यान विहार करनेके लिए शिखरितल नामके प्रसिद्ध उद्यानमें गये थे। वहाँसे जब हम लौट रहे थे तो आकाशमें एक विमानमे हा अमिततेज, हा श्री-विजय इत्यादि करुणा भरे शब्द कहते हुए एक स्त्रीके रोनेकी ध्वनि सुनी। ॥ १४-१५ ॥ इन नामोंको सुनकर हमलोग वहाँ गये और उस विद्याधर से पूछा कि तुम कौन हो और किसको हरण किये जा रहे हो? तथा इसे कहाँ लिये जा रहे हो? इस तरह हमलोग उसके ऊपर खड्ग तान कर तर्जना करते हुए उसके सामने खड़े हो गये। इन शब्दोंको सुन मैं इन्द्राशनिका पुत्र हूँ, ऐसा कहता हुआ वह खड़ा हो गया और बोला कि क्या तुम आसुरीका पुत्र मुझ अशनिघोषको नहीं जानते? मैं श्रीविजयकी राजपत्नी सुतारा को हरण कर लिये जा रहा हूं। जिसमे ताकत हो आवे छुड़ा ले। इस प्रकार कहता हुआ वह चमरचञ्चपुरका राजा हम लोगोंके साथ आकाशमें युद्ध करनेके लिए तैयार हो गया ॥ १६-१८ ॥ हे माताजी! हम लोगोंको युद्ध करता हुआ देखकर विमानके भीतर

वैतालविद्यया मे नाथः व्यपहृते विमोह्यासौ ।
तं मोचयतां मरणात्कृताञ्जलिस्त्वामहं याचे ॥ २० ॥

इत्युक्तं श्रुत्वाऽऽवामागम्याद्रक्षाव चितकमध्यस्थम् ।
राजानं विलपन्तं मोहाद्वैतालमुपगुह्य ॥ २१ ॥

मत्पितृमन्त्रविनष्टा विद्या राजातिविस्मितः किमपि ।
अभिनन्द्याऽशीर्वादे राज्ञेऽकथयाव तत्सर्वम् ॥ २२ ॥

श्रुत्वाऽशनिघोषकृतं राज्ञा सम्प्रेषितोऽहमायातः ।
त्वरया नृपसन्देशं हृतां सुताराञ्च वक्तुं वः ॥ २३ ॥

श्रुत्वा तन्नृपजननी दूतं नैमित्तिकञ्च सम्पूज्य ।
युवराजदूतसहिता प्रगता ज्योतिर्वनं शीघ्रम् ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा जननीं राजा प्रणनाम कृताञ्जलिः समुत्थाय ।
आश्लिष्य साश्रुनयना साशीर्वादं सुखमपृच्छत् ॥ २५ ॥

तस्मात्सर्वे गत्वा रथनूपुरममिततेजसे प्रोचुः ।
श्रुत्वा भगिनीहरणं सोऽशनिघोषाय चुक्रुद्ध ॥ २६ ॥

सम्मन्त्र्य दूतमेकं सम्प्रेषयति स्म चमरचञ्चपुरे ।
सोऽपि त्वरया गत्वा न्यवर्ततावमानितस्तेन ॥ २७ ॥

श्रुत्वा स्वदूतवाक्यं ज्ञात्वा माहात्म्यमशनिघोषस्य ।
श्रीविजयाय खगेन्द्रो विद्ये द्वे साधयेति ददौ ॥ २८ ॥

प्रहरणावरणीं दिवसैः सप्तभिर्बन्धमोचनीं च तथा ।
संसाध्य सिद्धविद्यो योद्धुमयादशनिघोषेण ॥ २९ ॥

बैठी हुई आपकी पुत्रवधूने कहा कि अभी युद्ध मत कीजिए बल्कि ज्योतिर्वन मे जाकर वेतालिनी विद्यासे ठगे गये मेरे पतिको मरने से बचाइए। मैं हाथ जोड़कर आपसे यही प्रार्थना करती हूँ ॥ १९-२० ॥

यह सुनकर हम लोग ज्योतिर्वन में शीघ्र आये और वहाँ जलती हुई चिता के बीच में बैठे हुए तथा मोहवश वैताली विद्या के वनावटी रूप से लिपटे हुए, विलाप करते हुए राजा को देखा ॥२१॥ मेरे पिता के मंत्र वल से वह विद्या नष्ट हो गई, तब राजा ने चकित हो आशीर्वाद पूर्वक हम लोगों का अभिनन्दन किया। हम लोगोंने भी राजा को सब वृत्तान्त सुनाया ॥२२॥ अशनिघोपके कृत्यको सुनकर राजाने मुझे आप लोगों के पास खवर देनेको भेजा, जिससे मैं राजाका सन्देश तथा सुताराके हरण किये जानेका समाचार कहनेके लिए आप लोगों के पास आया हूँ ॥२३॥ यह सब सुन राजमाता, उस दूत और ज्योतिषीको वहुत सम्मानित कर युवराज और दूत सहित स्वयं ज्योतिर्वनमें गईं। माताको देख राजाने हाथ जोड़ खड़े होकर प्रणाम किया। उस माताने भी सजलनेत्र हो पुत्र का आलिंगन कर आशीर्वाद दिया और सुख वार्ता पूछी ॥ २४ ॥ २५ ॥ तव सभी रथनूपुर गये और अमिततेजसे सारा वृत्तान्त कहा। उसने अपनी वहिन का हरण सुन अशनिघोष पर अत्यन्त क्रोध किया, और मंत्रियोंसे सलाह कर चमरचञ्च नगर, अशनिघोषके पास एक दूत भेजा। अशनिघोशने उसके दूतको अपमानित कर लौटा दिया ॥ २६-२७ ॥ अमिततेजने अपने दूतके वचनोंको सुन तथा अशनिघोषके माहात्म्यको जानकर श्री विजयको दो विद्याएँ साधनेके लिये दीं। उसने सात दिनमें प्रहरणावरणी और वन्धमोचनी इन दोनों विद्याओंको साध लिया तथा अशनिघोषसे युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा ॥ २८-२९ ॥

भान्वर्कचन्द्ररविशशिमितादिरथसेनकीर्त्तिगतितेजः ।
वेगोत्तरनामाद्याः पञ्चशतं सूनवोऽप्यगमन् ॥ ३० ॥

सम्प्रेष्याऽमिततेजा ह्रीमन्तं शैलमाययौ पश्चात् ।
साधयितुमना विद्या प्रतिमामूले जयन्तस्य ॥ ३१ ॥

नाम्ना सहस्ररश्मिर्ज्येष्ठसुतस्त ररक्ष सन्नह्य ।
साधयमानं यत्नाच्छेदकरीं सर्वविद्यानाम् ॥ ३२ ॥

श्रीविजयः स्वश्रिया सहितः प्रापदुत्तरश्रेणीम् ।
श्रुत्वाऽशनिघोषस्तं पुत्रान्सम्प्रेषयामास ॥ ३३ ॥

विद्युत्सहस्रशतमेघसिंहघोषान्तनामकादीनाम् ।
त्रीणि शतानि सुतानां निर्जग्मुर्योद्धुमेकदैव ॥ ३४ ॥

तेऽमिततेजोऽशनिघोषसुता मायाविनोऽम्बरे बहुधा ।
अन्योऽन्य प्रहरन्तो विद्याभिर्युयुधिरे पक्षम् ॥ ३५ ॥

भग्नास्ततोऽशनिसुता अभिभूता अमिततेजस. पुत्रैः ।
दृष्ट्वाऽशनिघोषस्तान् सबलो योद्धुं निरैत् क्रुद्धः ॥ ३६ ॥

श्रीविजयसेनप्रहतो मायावी क्वापि बभूव सच्छिन्नम् ।
प्रहत. पुनः पुनरसौ द्विगुणो द्विगुणः परावृत्तः ॥ ३७ ॥

भूत्वाऽशनिघोपसहस्राणि बहूनि युयुधिरे दिशो व्याप्य ।
श्रीविजयेनाऽमिततेजसश्च पुत्रैः पुन. पक्षम् ॥ ३८ ॥

सम्प्रापदमिततेजस्तत्काले सिद्धविद्यकस्तत्र ।
दृष्ट्वैवाशनिघोषोऽभिपलायाम्बभूव तदा ॥ ३९ ॥

दृष्ट्वा पलायमानं मुमोच विद्यामसुं गृहाणेति ।
स तयाऽभिद्राव्यमानः खे शरणं न क्वचिल्लेभे ॥ ४० ॥

तथा भानु, अर्क, चन्द्र, रवि, शशि और मित है आदिमे जिनके तथा रथ, सेन, कीर्ति, गति, तेज और वेग है अन्तमे जिनके ऐसे नामवाले पाँचसौ पुत्र भी उनके साथ गये ॥ ३० ॥ इन सबको भेजकर अमिततेज स्वयं महाज्वाला नामकी विद्या-को सिद्ध करनेके लिये ह्रीमन्त पर्वत पर सञ्जयन्त मुनिकी प्रतिमा के पास गया। वह विद्या सर्व विद्याओंको नष्ट कर देनेवाली थी। उसे यत्न पूर्वक सिद्ध करते समय ज्येष्ठ पुत्र सहस्ररश्मि सावधान हो उसकी रक्षा करने लगा ॥ ३१–३२ ॥ इधर श्रीविजय अपनी विभूतिके साथ उत्तरश्रेणिको प्राप्त हुआ। यह सुन अशनिघोषने सेनासहित विद्युत्घोष, सहस्रघोष, शतघोष, मेघघोष, सिंहघोष आदि तीनसौ पुत्रोंको युद्ध करनेके लिए भेजा और वे सब एक साथ ही युद्धके लिए निकल पड़े। वे अमिततेज और अशनिघोष-के मायावी पुत्र आकाशमे एक दूसरे पर विद्याओंका प्रयोग करते हुए एक पक्ष तक युद्ध करते रहे। इस बीच अमिततेजके पुत्रों द्वारा अशनिघोषके सभी पुत्र पराजित होकर छिन्न-भिन्न कर दिये गये। यह देख अतिक्रुद्ध अशनिघोष सेना सहित उनसे लड़नेके लिये निकल पड़ा ॥ ३३–३६ ॥ तब उससे लड़नेके लिये श्रीविजय आगे आया और उसके दो टुकड़े करने ही चाहे थे पर वह मायावी विद्याके बलसे स्वयं दो टुकड़े हो गया, फिर भी श्रीविजयने दो टुकड़े करने चाहे इस पर वह अपना द्विगुणित रूप करता ही गया। इस तरह अशनिघोषने चारों ओर दिशाओंमे अपने हजारों रूप बनाकर श्रीविजय तथा अमिततेजके पुत्रोंके साथ पन्द्रह दिन तक युद्ध किया। उसी समय विद्याओंको सिद्ध कर अमिततेज आ गया तो उसको देखते ही अशनिघोष भाग उठा। उसको भागता देख उसे पकड़नेके लिये अमिततेजने अपनी विद्या भेजी। जिसका दबाव पड़नेके कारण वह कहीं भी शरण न पा सका ॥ ३७–४० ॥

नाभेयसीमनामनि केवलमुदपादि विजयभद्रस्य ।
तत्पूजनाय देवाश्चतुर्निकायाः समाजग्मुः ॥ ४१ ॥

समवशरणं तदानीं प्रविश्य गत्वा च भगवतः शरणम् ।
केवलिचरणसमीपे स्वस्थोऽभूदशनिघोषोऽत्र ॥ ४२ ॥

इतरेऽपि मुक्तवैराः श्रीविजयाद्या बभूवुरालोक्य ।
केवलिनं बलदेवं प्रदक्षिणीकृत्य अनुतस्थुः ॥ ४३ ॥

शीलवतीमानीय सुतारान्तत्रैव चासुरी देवी ।
अर्पयति स्म नः पुत्रो नरप क्षम्यतां च सा प्रणता ॥ ४४ ॥

अथ ते सोदर्य्या इव भूत्वा सर्वेऽपि शुश्रुवुर्धर्मम् ।
केवलिमुखोद्गतं तं संसारसमुद्रनिस्तारम् ॥ ४५ ॥

पप्रच्छाऽमिततेजः कथान्तरे जातसंशयस्तत्र ।
केनेश कारणेनाहरत्सुतारामशनिघोषः ॥ ४६ ॥

इति पृष्टः सोऽवोचद्भगवांस्तत्पूर्वजन्मसम्बन्धम् ॥
मगधेष्वचलग्रामे धरणीजटो नाम विप्रोऽभूत् ॥ ४७ ॥

तस्याऽग्निला च भार्या पुत्राविन्द्राग्निभूतिनामानौ ।
तत्प्रेषणिकापुत्रो मेधावी कपिलको नाम्ना ॥ ४८ ॥

कपिलोऽधीयानं ताभ्यां द्विजसूनुभ्यामधीत्य कर्णागतम् ।
भूत्वा वेदविदस्माद् दृष्टोऽसौ रत्नपुरमगमत् ॥ ४९ ॥

सत्यकनाम्नो भार्या जम्बु र्दुहिताऽस्य सत्यभामेति ।
तामददात्परितुष्टो विप्रः कपिलाय वेदविदे ॥ ५० ॥

उसी समय नाभेयसीम नामके पर्वत पर श्री विजयभद्र तीर्थङ्करको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था जिससे चारों प्रकारके देव उनकी पूजा करनेके लिये वहाँ आये थे ॥ ४१ ॥ उस अशनिघोषने भगवान्के समवशरणमें जाकर शरण पाई, और वहाँ निर्भय हो बैठ रहा। उसका पीछा करनेवाले दूसरे लोग श्रीविजय आदि भी केवलीकी प्रदक्षिणा कर बैर विरोध त्याग चुपचाप समवशरणमें बैठ गये। उसी समय आसुरी देवी भी शीलवती सुताराको लेकर वहाँ आई और अर्पण कर श्रीविजय तथा अमिततेजसे प्रणत होकर कहने लगी कि आप दोनोंको मेरे पुत्रका अपराध क्षमा कर देना चाहिये। इसके बाद वे सब गले मिले और सगे भाईयोंके समान बैठ, संसार समुद्रसे तारनेवाले केवलीके मुखसे निकले सद्धर्मका उपदेश सुनने लगे ॥ ४२-४५ ॥

इस कथाके प्रसंगमें संशय उत्पन्न होने पर अमिततेज विद्याधरने पूछा कि भगवन्! किस कारणसे अशनिघोषने सुताराका हरण किया था। इस पर भगवान्ने उसके पूर्वजन्मके सम्बन्ध बतलाये। उन्होने कहा कि :—

मगधदेशके अचल ग्राममें धरणीजट नामका ब्राह्मण रहता था। उसके अग्निला नामकी भार्यासे इन्द्रभूति और अग्निभूति नामके दो पुत्र हुए। उसके पास कपिल नामका एक दासीपुत्र था जो कि बहुत बड़ा बुद्धिमान् था। जब वह धरणीजट अपने दोनो पुत्रोको वेद पढ़ाता था तब उसे सुनकर वह कपिल भी याद कर लेता था इस तरह वह अच्छा वेदज्ञ हो गया। एक दिन धरणीजटने उसे वेदपाठ करते देख लिया तो उसे घरसे निकाल दिया। वहाँसे निकल वह रत्नसञ्चयपुर चला गया। वहाँ एक सत्यक नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्री जम्बूसे एक सत्यभामा नामकी पुत्री थी। कपिलकी विद्वत्तासे खुश हो उसने अपनी पुत्री-

नाभेयसीमनामनि केवलमुदपादि विजयभद्रस्य ।
तत्पूजनाय देवाश्चतुर्निकायाः समाजग्मुः ॥ ४१ ॥

समवशरणं तदानीं प्रविश्य गत्वा च भगवतः शरणम् ।
केवलिचरणसमीपे स्वस्थोऽभूदशनिघोषोऽत्र ॥ ४२ ॥

इतरेऽपि मुक्तवैराः श्रीविजयाद्या बभूवुरालोक्य ।
केवलिनं बलदेवं प्रदक्षिणीकृत्य अनुतस्थुः ॥ ४३ ॥

शीलवतीमानीय सुतारान्तत्रैव चासुरी देवी ।
अर्पयति स्म नः पुत्रो नरप क्षम्यतां च सा प्रणता ॥ ४४ ॥

अथ ते सोदर्या इव भूत्वा सर्वेऽपि शुश्रुवुर्धर्मम् ।
केवलिमुखोद्गतं तं संसारसमुद्रनिस्तारम् ॥ ४५ ॥

पप्रच्छाऽमिततेजः कथान्तरे जातसंशयस्तत्र ।
केनेश कारणेनाहरत्सुतारामशनिघोषः ॥ ४६ ॥

इति पृष्टः सोऽवोचद्भगवांस्तत्पूर्वजन्मसम्बन्धम् ॥
मगधेष्वचलग्रामे धरणीजटो नाम विप्रोऽभूत् ॥ ४७ ॥

तस्याऽग्निला च भार्या पुत्राविन्द्राग्निभूतिनामानौ ।
तत्प्रेषणिकापुत्रो मेधावी कपिलको नाम्ना ॥ ४८ ॥

कपिलोऽधीयानं ताभ्यां द्विजसूनुभ्यामधीत्य कर्णागतम् ।
भूत्वा वेदविदस्माद् दृष्टोऽसौ रत्नपुरमगमत् ॥ ४९ ॥

सत्यकनाम्नो भार्या जम्बू दुंहिताऽस्य सत्यभामेति ।
तामददात्परितुष्टो विप्रः कपिलाय वेदविदे ॥ ५० ॥

उसी समय नाभेयसीम नामके पर्वत पर श्री विजयभद्र तीर्थङ्करको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था जिससे चारों प्रकारके देव उनकी पूजा करनेके लिये वहाँ आये थे ॥ ४१ ॥ उस अशनिघोषने भगवान्‌के समवशरणमें जाकर शरण पाई, और वहाँ निर्भय हो बैठ रहा। उसका पीछा करनेवाले दूसरे लोग श्रीविजय आदि भी केवलीकी प्रदक्षिणा कर वैर विरोध त्याग चुपचाप समवशरणमें बैठ गये। उसी समय आसुरी देवी भी शीलवती सुताराको लेकर वहाँ आई और अर्पण कर श्रीविजय तथा अमिततेजसे प्रणत होकर कहने लगी कि आप दोनोंको मेरे पुत्रका अपराध क्षमा कर देना चाहिये। इसके बाद वे सब गले मिले और सगे भाईयोंके समान बैठ, संसार समुद्रसे तारनेवाले केवलीके मुखसे निकले सद्धर्मका उपदेश सुनने लगे ॥ ४२–४५ ॥

इस कथाके प्रसंगमें संशय उत्पन्न होने पर अमिततेज विद्याधरने पूछा कि भगवन्! किस कारणसे अशनिघोषने सुताराका हरण किया था। इस पर भगवान्‌ने उनके पूर्वजन्मके सम्बन्ध बतलाये। उन्होंने कहा कि :—

मगधदेशके अचल ग्राममे धरणीजट नामका ब्राह्मण रहता था। उसके अग्निला नामकी भार्यासे इन्द्रभूति और अग्निभूति नामके दो पुत्र हुए। उसके पास कपिल, नामका एक दासीपुत्र था जो कि बहुत बड़ा बुद्धिमान् था। जब वह धरणीजट अपने दोनों पुत्रोंको वेद पढ़ाता था तब उसे सुनकर वह कपिल भी याद कर लेता था इस तरह वह अच्छा वेदज्ञ हो गया। एक दिन धरणीजटने उसे वेदपाठ करते देख लिया तो उसे घरसे निकाल दिया। वहाँसे निकल वह रत्नसञ्चयपुर चला गया। वहाँ एक सत्यक नामका ब्राह्मण रहता था उसकी स्त्री जम्बूसे एक सत्यभामा नामकी पुत्री थी। कपिलकी विद्वत्तासे खुश हो उसने अपनी पुत्री-

श्रुत्वा तमुपाध्यायं बहुशिष्यं वेदपारगं कपिलम् ।
आगच्छद्धरणीजटो लोभान्मे पुत्र इति तत्र ॥ ५१ ॥

सम्पूज्य सत्यभामा श्वशुरं पप्रच्छ भर्तुर्वृत्तान्तम् ।
विप्रोऽप्युक्त्वा तस्यै लब्ध्वा द्रविणं गतो ग्रामम् ॥ ५२ ॥

अकुलीनं ज्ञात्वा त शरणमगान्नरपतिं विरक्ता सा ।
कपिलमवोचद्राजा राज्यान्मे राज्यान्तरं याहि ॥ ५३ ॥

श्रीषेणो राजाऽस्मिन्ननिन्दितासिंहनन्दिते भार्ये ।
तस्येन्द्रनामा सुतः कनीयानुपेन्द्रोऽन्यः ॥ ५४ ॥

राजाऽन्यदा सदारोऽदात्सत्यभामया सहितः ।
अमितादित्यगतिभ्यां सप्तगुणं प्रासुकं भोज्यम् ॥ ५५ ॥

राज्ञः महाबलस्य श्रीमत्यां गर्भजा सुता नाम ।
श्रीकान्ता कौशाम्ब्यामानीता सेन्द्रसेनस्य ॥ ५६ ॥

अनुगामिनी च तस्या अनन्तमतिका बभूव गणिकैका ।
तद्धेतोर्नृपसुतयोः कलहोऽभूदेकदोद्याने ॥ ५७ ॥

दृष्ट्वा पुत्रविरोधं वारयितुमशक्नुवन्सभार्यः ।
आघ्राय स विषप्रसूनं राजा मृतः सत्यभामा च ॥ ५८ ॥

युद्धे ततः प्रवृत्ते सहसाऽकाशस्थितोऽब्रवीत् कश्चित् ।
मा स्म गणिकानिमित्तं युत्साथां वामियं भगिनी ॥ ५९ ॥

का विवाह उससे कर दिया। वेदपारंगत वह वहाँ अनेक शिष्योंका अध्यापक बनकर रहने लगा। यह सुन धरणीजट उसके पास आया और लोभबुद्धिसे लोगोंसे यह मेरा पुत्र है कहकर वह भी उसके साथ रहने लगा॥ ४६–५१॥

सत्यभामाने एक दिन अपने श्वसुरका वहुत सन्मान कर अपने पतिका वृत्तान्त पूछा। धरणीजट भी उससे सब भेद कहकर धन ले घर चला गया॥ ५२॥ सत्यभामा कपिलको अकुलीन जान उससे विरक्त हो गई और राजाकी शरणमें गई। इस पर राजाने कपिलको अपने राज्यसे निकल जानेको कहा॥५३॥ उस समय उस नगरका राजा श्रीपेण था उसकी अनिन्दिता और सिंहनन्दिता नामकी दो रानियाँ थीं तथा इन्द्रसेन और उपेन्द्र नामके दो पुत्र थे। किसी एक दिन अपनी रानियों और सत्यभामा सहित राजाने अमितगति एवं आदित्यगति नामके मुनि राजोंको दाताके सातों गुण सहित प्रासुक आहारदान दिया॥ ५४–५५॥

इस राजाके समयमें कौशाम्बीमें भी महावल नामका एक राजा रहता था। उसकी रानी श्रीमतीसे श्रीकान्ता नामकी एक पुत्री हुई। उसे उसने इस राजाके पुत्र इन्द्रसेनसे विवाह दी। उस पुत्रीकी सेविका अनन्तमती नामकी एक वेश्या थी जो उसके साथ आई थी। किसी समय उसके निमित्तसे उद्यानमें दोनों भाइयोंमें युद्ध छिड़ गया। राजा दोनों पुत्रोंके विरोधको देखकर उस युद्धको वन्द करने गया पर वन्द न कर सका। इससे अतिदुखित हो दोनों स्त्रियोंके साथ विषपुष्पको सूँघकर वहीं मर गया। सत्यभामा भी विषपुष्प सूँघकर मर गई॥ ५६–५८॥

जब कि युद्ध चल रहा था उसी बीच आकाशसे एक विद्याधर-ने कहा कि इस वेश्याके निमित्त तुम मत युद्ध करो यह तुम्हारी

आदित्याभं नगर प्राच्ये भागेऽस्ति धातकीखण्डे ।
राजा सुकुण्डलीति च विजयार्द्धे पुष्कलावत्याम् ॥ ६० ॥

तस्य मित्रसेनाया नाम्ना मणिकुण्डली च पुत्रोऽहम् ।
अर्हन्तममितयशसं वन्दित्वा पुण्डरीकिण्याम् ॥ ६१ ॥

पूर्वभव मेऽपृच्छम्भगवान् प्रोवाच पुष्करद्वीपे ।
अपरविदेहे चक्रध्वजो नृपोऽभूद्वीतशोकायाम् ॥ ६२ ॥

कनकश्रीरिति देवी कनकलताऽन्या च पद्मलतिका च ।
आस्तां हि सुते तस्या विद्युन्मत्याश्च पद्माऽन्या ॥ ६३ ॥

पार्श्वेऽमितसेनाया आर्यायाः सम्प्रगुह्य कर्मगुणम् ।
उपवासमुपोष्येयु. सौधर्मं ताश्चतस्रोऽपि ॥ ६४ ॥

या कनकश्रीः साऽहमेते यद्दुहितरौ युवामिमकौ ।
या सनिदाना पद्मा सेय गणिकेति बुध्येथाम् ॥ ६५ ॥

इति तद्वाक्यं श्रुत्वा त्यक्त्वा राज्यं सुधर्ममुनिपार्श्वे ।
कृत्वा सुतपः सम्यक् जीविताऽन्ते निर्वृतिमासौ ॥ ६६ ॥

श्रीषेणसिंहनन्दे दानत्वात् प्रागुरारकुरुष्वास्ताम् ।
मिथुनं तद्देवकुरुष्वनिन्दिता सत्यभामा च ॥ ६७ ॥

पल्योपमानि भुक्त्वा त्रीण्युत्तमदानलब्धमुपभोगम् ।
सौधर्मकल्पमीयुश्च्युत्वा तस्मादिहाऽभूवन् ॥ ६८ ॥

य. श्रीषेणो राजा सोऽमिततेजा अभूः खगेन्द्रस्त्वम् ।
या निन्दिता हि देवी सा श्रीविजयोऽभवत्पुण्यात् ॥ ६९ ॥

या तत्र सिंहनन्दा सेयं ज्योतिःप्रभाऽग्रमहिषी ते ।
या सा हि सत्यभामा सेयं भगिनी सुतारेति ॥ ७० ॥

वहिन है ॥ ५९ ॥ उन दोनोंने पूछा कि यह कैसे ? तब वह विद्याधर कहने लगा कि धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व भागमे पुष्कलावती देशके विजयार्द्ध पर्वत पर आदित्याभ नामका नगर है। वहाँका राजा सुकुण्डली और उसकी रानी मित्रसेनासे मैं मणिकुण्डली नामका पुत्र हुआ हूँ। किसी एक दिन मैं पुंडरीकिणी नगरी गया था और वहाँ अमितयश जिनेन्द्रकी वन्दना कर मैंने अपने पूर्व भव पूछे थे। इसके उत्तरमें भगवान्ने कहा था कि पुष्करार्ध द्वीपके पश्चिम विदेहमें वीतशोका नामकी नगरी है वहाँ चक्रध्वज नामका राजा राज्य करता था। उसकी पहली रानी कनकश्रीसे कनकलता और पद्मलता नामकी दो कन्यायें तथा दूसरी रानी विद्युन्मतीसे पद्मावती नामकी कन्या थी ॥६०–६३॥

किसी समय अमितसेना नामकी आर्यिकासे कर्मगुण व्रत उपवासादि धारण कर आयुके अन्तमे कनकश्री और तीनों कन्याएँ सौधर्म स्वर्ग गईं ॥ ६४ ॥ वहाँसे च्युत हो कनकश्रीका जीव तो मैं मणिकुण्डल हुआ। कनकलता और पद्मलताके जीव तुम दोनों भाई तथा पूर्वजन्ममें खोटे निदानके कारण पद्मावतीका जीव यह गणिका हुआ है ॥ ६५ ॥ इन वचनो को सुनकर वे दोनों राज्यका त्याग कर विरक्त हो गये और सुधर्म मुनिके पास दीक्षा ले, तप कर जीवनके अन्तमे मोक्ष गये ॥६६॥

श्रीषेण और सिंहनन्दिता ये पूर्व उत्तरकुरुमे युगल हुए तथा अनिन्दिता और सत्यभामा ये देवकुरुमें युगलिया हुए और उत्तम दानके प्रभावसे प्राप्त उपभोगोंका तीन पल्य तक भोग किया। फिर वहाँसे च्युत हो सौधर्म स्वर्ग गये और वहाँसे यहाँ उत्पन्न हुए। श्रीषेणका जीव तो तुम अमिततेज विद्याधर हुए, अनिन्दिता देवीका जीव पुण्यसे श्रीविजय हुआ। सिन्हनन्दाका जीव तुम्हारी पट्टरानी ज्योतिःप्रभा हुई और सत्यभामाका जीव यह तेरी वहिन सुतारा हुई है ॥ ६७–७० ॥

सोऽस्या वियोगदुःखानि भुक्त्वा कपिलः परीत्य ससारे।
ऐरावत्यास्तीरे संभूतरमणके वने पश्चात् ॥ ७१॥

जातस्तापसाश्रमे कौशिकचपलात्मजो मृगशृङ्गः।
कुर्वन्बालतपोऽसौ दृष्ट्वाऽकाङ्क्षत्खगेन्द्रर्द्धिम् ॥ ७२ ॥

मृत्वेहाशनिघोषः संसाध्य भ्रामरीं महाविद्याम्।
आगच्छन् दृष्ट्वैनामाहरत्स्नेहेन पूर्वेण ॥ ७३ ॥

केवलिगदितं श्रुत्वा सर्वे वैरानुबन्धसम्बन्धम्।
प्रतिपेदिरेऽत्र नैर्ग्रन्थ्यमशनिघोषादयः केचित् ॥ ७४ ॥

देव्यः स्वयम्प्रभाद्याश्च दीक्षिताः काश्चिदेव निर्विण्णाः।
गृहधर्मरताः केचिद्बभूवुरुपलब्धसम्यक्त्वाः ॥ ७५ ॥

प्रगृहीतसुसम्यक्त्वौ श्रावकधर्मं प्रपद्य वन्दित्वा।
केवलिनं खगनरपौ ययतुः स्वं स्वं पुरं तुष्टौ ॥ ७६ ॥

शुच्यूर्जफाल्गुनेषु प्रतिवर्षे तौ प्रचक्रतुः महिमाम्।
अष्टाहमासभक्त्या स्नपनं सर्वेषु पर्वसु च ॥ ७७ ॥

मासोपवासतपसे दमवरसिंहाय औषधं दत्त्वा।
प्रापद्वसुन्धराराध्यां खेचरसिंहः सुरैः पूजाम् ॥ ७८ ॥

प्रोषधयुक्तो राजा राजभ्यश्चैत्यमण्डपे धर्मम्।
प्रोचेऽन्यदा समित्रस्तत्समये चारणौ प्राप्तौ ॥ ७९ ॥

तौ वन्दित्वोपनिषण्णौ चैत्ये तावमरदेवगुरुसंज्ञौ।
पूर्वभवं श्रीविजयोऽपृच्छत्कौतूहलात्स्वपितुः ॥ ८० ॥

उस कपिलके जीवने सत्यभामाके वियोगसे अनेक दुख सहते हुए संसारमें चक्कर लगाये फिर सम्भूतरमण नामके वनमें ऐरावती नदीके किनारे किसी तापसियोंके आश्रममे कौशिक तपसी और उसकी भार्या चपलवेगासे मृगश्रृङ्ग नामका पुत्र हुआ। वाल तप करते हुए वह विद्याधरोंकी विभूतिकी चाह करता हुआ मरा और यहाँ यह अशनिघोष विद्याधर हुआ। यहाँ इसने भ्रामरी विद्या सिद्ध की और रास्तेमें सुताराको देख पूर्वस्नेह के कारण इसे हरण कर लिया॥ ७१–७३॥

केवली द्वारा कही गईं इन सव पूर्व जन्मके वैरसम्वन्धी बातों को सुनकर उनमेंसे अशनिघोष आदि कुछ लोगोंने मुनि दीक्षा ले ली। स्त्रियोंमे से स्वयंप्रभादि कुछ देवियाँ विरक्त हो दीक्षित हो गईं तथा कुछ लोगोंने सम्यक्त्वपूर्वक अणुव्रतोंको धारण कर लिया। विद्याधरोंके राजा अमिततेजने और नराधिप श्रीविजयने दृढ सम्यक्त्वी हो श्रावकधर्म धारण किया और अतिप्रसन्न हो केवलीकी वन्दना कर अपने अपने नगरोंको लौट आये॥७४–७६॥ और प्रतिवर्ष अषाढ़, कार्तिक और फाल्गुनके अष्टाह्निकाके दिनोंमे तथा अन्य सव पर्वोंमे वे दोनों भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रकी पूजा अभिषेक करने लगे॥ ७७॥ एक समय अमिततेजने एक माहका उपवास धारण करनेवाले दमवर नामके मुनिको आहार दान दिया इससे उसे देवताओं द्वारा जगत्में प्रशंसनीय सन्मान प्रतिष्ठा मिली॥ ७८॥

किसी समय प्रोपधव्रत धारण किये हुए राजा अमिततेज अपने मित्र श्रीविजयके साथ चैत्यालयमे अन्य राजाओंके साथ धर्मचर्चा कर रहा था। उसी समय अमरगुरु और देवगुरु नामके दो चारण ऋद्धिधारी मुनि वहाँ आए। उन दोनोंने चैत्यालयमे विराजमान उन दोनों मुनिराजोंकी वन्दना की। इसके वाद

प्रथमानुयोगकुशलोऽमरगुरुसाधुर्जगाद राजगृहे ।
आस्तां च विश्वभूतिर्विशाखभूतिश्च राजानौ ॥ ८१ ॥

जैनी च विश्वभूतेः विशाखभूतेश्च लक्ष्मणा भार्या ।
क्रमशश्च विश्वनंदी विशाखनन्दीति तत्पुत्रौ ॥ ८२ ॥

दत्त्वा राज्यं भ्रात्रे पुत्र संस्थाप्य यौवराज्ये च ।
ज्यायास चतु.सहस्रै. श्रीधरपार्श्वे प्रवव्राज ॥ ८३ ॥

गत्वाऽऽम्रवनोद्याने क्रीडन्तं विश्वनन्दिनमुपायात् ।
अपनीय ततो राजा स्वसुतं प्रावेशयत्तत्र ॥ ८४ ॥

ज्ञात्वाऽथ विश्वनन्दी तत्कृतमुद्यानमागमद् द्रष्टुम् ।
प्रारेभे योद्धुं सः विद्राव्य विशाखभूतिसुतम् ॥ ८५ ॥

भङ्क्त्वा शैलस्तम्भं प्रपात्य तरसा कपित्थवृक्ष च ।
मात्रा प्रबोधितोऽसौ सम्भूताचार्यशिष्योऽभूत् ॥ ८६ ॥

वर्षशतसहस्रेण प्रापन्मथुरां तपश्चरन्नुग्रम् ।
तस्यां विशाखनन्दी जहास दृष्ट्वा गवा प्रहृतम् ॥ ८७ ॥

तत्कारणान्निदान कृत्वा देवोऽभवन्महाशुक्रे ।
अवतीर्येह महाबलविक्रमसत्त्वस्त्रिपृष्ठोऽभूत् ॥ ८८ ॥

यो विश्वभूतिरासीत्सोऽयं बलदेव इह विजयाख्यः ।
योऽसौ विशाखनन्दी सोऽश्वग्रीवोऽभवच्छत्रुः ॥ ८९ ॥

श्रुत्वा पितृद्धिमुर्वीं निदानमकरोस्त्रिगारवे सक्तः ।
चन्दनवनं खगेन्द्रः सश्रीविजयोऽगमद् द्रष्टुम् ॥ ९० ॥

विपुलमतिं विमलमतिं च चारणौ सम्प्रवन्द्य पप्रच्छ ।
आयुस्ताभ्यामुक्तं दिवसाः षड्विंशतिश्चेह ॥ ९१ ॥

श्रीविजयने कौतूहलवश अपने पिताके पूर्व भव पूछे ॥ ७६-८० ॥ प्रथमानुयोगमें प्रवीण साधु अमरगुरुने कहा कि राजगृहमें विश्वभूति और विशाखभूति नामके दो राजा रहते थे ॥ ८१ ॥ राजा विश्वभूतिकी जैनी और विशाखभूतिकी लक्ष्मणा नामकी स्त्री थीं। उन दोनोंको क्रमशः विश्वनन्दि और विशाखनन्दि नामके दो पुत्र हुए। विश्वभूतिने अपने छोटे भाई विशाखभूतिको राज्य दे तथा यौवराज्यपद पर ज्येष्ठ पुत्रको रख, चार हजार राजाओंके साथ श्रीधर मुनिके पास दीक्षा ले ली ॥ ८२-८३ ॥

एक दिन आम्रवन नामके उद्यानमें विश्वनन्दी क्रीडा कर रहा था। पर छल पूर्वक राजा विशाखभूतिने उसे वहाँसे निकाल अपने पुत्रको वहाँ प्रवेश कराया। जब विश्वनन्दीको यह सब छल-कपट मालूम पड़ा तो वह देखनेके लिए उद्यानमें आया और विशाखभूतिके पुत्र विशाखनन्दिको वहाँसे भगाकर युद्ध करने लगा और पत्थरके खम्भेको तोड़ डाला तथा कैंतके वृक्षको वेगसे गिरा दिया। इसपर उसकी माँने सम्बोधित किया और वह सम्भूताचार्यका शिष्य हो गया ॥ ८४-८६ ॥ तथा उग्र तपश्चर्या करता हुआ एक हजार वर्षके बाद वह मथुरामें आया। वहाँ उसे गायके धक्कासे गिरा हुआ देखकर विशाखनन्दी उसकी हँसी करने लगा ॥ ८७ ॥ इससे वह निदान बंध कर मरा और महाशुक्र स्वर्गमें देव हुआ। और वहाँसे अवतीर्ण हो वह महाबली, पराक्रमी त्रिपृष्ठ हुआ ॥८८॥ है जो तुम्हारा पिता विश्वभूति था वह विजय नामका बलदेव हुआ है और जो विशाखनन्दी था वह अश्वग्रीव नामका शत्रु हुआ है ॥ ८९ ॥ श्री विजयके पिताकी बड़ी भारी ऋद्धिको सुनकर तीन गारवोंमें आसक्त खगेन्द्र अमिततेजने निदान किया और श्रीविजयके साथ चन्दन वनको देखनेके लिए गया ॥ ९० ॥ वहाँ विपुलमति और विमलमति नामके दो चार ऋद्धिधारी मुनि-

श्रीदत्ताकीर्तितेजोभ्यां दत्त्वा राज्य सशल्यनिःशल्यौ ।
प्रायोपगमनमरणादानतकल्पे सुरौ जातौ ॥ ९२ ॥

इतिहासे महापुराणे शान्तिचरितेऽर्थाख्यानसंग्रहे आर्यावद्धे
दामनन्द्याचार्यस्य कृतौ सुताराप्रत्यायनकाण्डं नाम
द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥ २ ॥ छ ॥

———

राजोंको देखकर प्रणाम किया और अपनी आयुके सम्बन्धमे पूछा। तब उन महामुनिने कहा कि तुम्हारी आयु अब केवल २६ दिन शेष रह गई है ॥६१॥ इस पर दोनोंने अर्कतेज और श्रीदत्तको राज्य देकर निःशल्य हो विधिपूर्वक प्रायोपगमन संन्यास धारण किया तथा आनत स्वर्गमें देव हुए॥ ६२॥

इस प्रकार दामनन्दी आचार्य द्वारा रचित आर्याबद्ध शान्तिपुराणमें
सुतारा प्रत्यागन नाम द्वितीय सर्ग समाप्त



तृतीयः सर्गः

स्वस्तिकनन्द्यावर्त्ते मणिचूलाऽदित्यचूलनामानौ ।
विंशत्यब्धिसमानं भुक्त्वा भोगांस्ततश्च्युत्वा ॥ १ ॥

जम्बूद्वीपविदेहे सीतायास्तटे वत्सकावत्याम् ।
राजा प्रभङ्करीशस्तदा स्तिमितसागरो नाम्ना ॥ २ ॥

देवी वसुन्धरेति च तस्याऽनुमतिश्च तत्सुतौ जातौ ।
अपराजितः खगेन्द्रः श्रीविजयोऽनन्तवीर्योऽत्र ॥ ३ ॥

संस्थाप्य सुतौ राजा स्वयम्प्रभजिनान्तिके प्रवव्राज ।
दृष्ट्वा नागेन्द्रर्द्धिं निदानकरणादभूद् धरणः ॥ ४ ॥

अकृतोपचाररोषान्नारदपिशुनात्खगेन्द्रदूतोऽत्र ।
वर्वरीचिलातिके किल देये इत्येत्य तौ ऊचे ॥ ५ ॥

श्रुत्वा तच्चिन्तयतोरुपस्थिताः पूर्वजातिजा विद्याः ।
भूत्वा तौ वर्वरिकाचिलातिके मायया ययतुः ॥ ६ ॥ (१)

दृष्ट्वा दमितारिस्ते तुष्टः कनकश्रियै ददावज्ञः ।
वहुशो नाटकसन्धिष्वनन्तवीर्यं बभाषाते ॥ ७ ॥

तृतीय सर्ग

वहाँ श्रीविजयका जीव स्वस्तिक विमानमे मणिचूल नामका देव हुआ तथा नन्द्यावर्त विमानमे अमिततेजका जीव आदित्यचूल नामका देव हुआ। वहाँ उन्होंने वीस सागरकी आयु प्रमाण सुख भोगे। अनन्तर वहाँसे च्युत होकर जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके किनारे वत्सकावती देशमे प्रभंकरी नगरीके राजा स्तिमितसागरकी पहली रानी वसुन्धरासे अमिततेजका जीव अपराजित और दूसरी रानी अनुमतीसे श्रीविजयका जीव अनन्तवीर्य नामके पुत्र हुए ॥१–३॥ पुत्रोंके वड़े होनेपर राजा स्तिमितसागर पुत्रोंको राज्य दे स्वयम्प्रभ जिनके पास दीक्षित हो गया और तप कालमें नागेन्द्रकी विभूतिको देख निदान पूर्वक मरण कर धरणेन्द्र हुआ ॥ ४ ॥

एक समय वे दोनों भाई नारद ऋषिके आनेपर उनका सत्कार न कर सके। इसलिए नारदने रुष्ट होकर दमितारि विद्याधरसे उनकी चुगली की। इसपर विद्याधरने एक दूत उन दोनों भाइयोंके पास भेजा। दूतने आकर उनसे कहा कि आप वर्वरी और चिलातिका नामकी दोनो नर्तकियाँ हमारे राजाको भेंट कर दीजिये ॥ ५ ॥

दूतकी यह वात सुन वे दोनों विचार करने लगे। उसी समय उनके पास पूर्व जन्मकी विद्याएँ आ उपस्थित हुईं। उन विद्याओंके प्रभावसे वे दोनों भाई वर्वरी और चिलातिकाका रूप धारण कर सुमन्दिरके राजा दमतारिके पास गये ॥ ६ ॥ दोनों नर्तकियोंको देख और प्रसन्न हो उस मूर्ख दमितारि राजाने उन्हे अपनी पुत्री

अनुरक्तां ज्ञात्वा तां प्रगृह्य यानेन गतौ श्रुत्वा ।
क्रुद्धः सबलो योद्धु…………………… ॥ ८ ॥

…… …… … …… … … ……………

…… …… …… …… ……॥ ९ ॥

… … …… ……………………… …… ……

उत्पन्नं तत्समये सुरकम्पं केवलज्ञानम् ॥ १० ॥

अवतीर्य विमानात्तो प्रवन्द्य धर्मं च शुश्रुवुस्तत्र ।
कीर्तिधरं कनकश्रीः पूर्वभवं दुःखिताऽपृच्छत् ॥ ११ ॥

केवल्युवाच तस्यै धातकीखण्डस्य पूर्वभागेऽभूत् ।
ऐरावतशङ्खपुरे श्रीदत्ता नाम दुर्गतिका ॥ १२ ॥

कुण्टी कुणिनिश्च पङ्गुः काणान्या कुष्ठिनी परा कुब्जा ।
निर्जननीनां षण्णामासीस्त्व पोषिका ज्येष्ठा ॥ १३ ॥

सर्वशैलनामगिरौ श्रुत्वा सर्वयशसो मुनेः पार्श्वे ।
समुपोष्य धर्मचक्र दृष्ट्वेच्छः खेचरेन्द्रर्द्धिम् ॥ १४ ॥

जाता शक्रस्य त्वं मृत्वा विद्युत्प्रभेव वल्लभिका ।
अहमपि सुमन्दिरपुरे जयदेव्यां कनकपुञ्जस्य ॥ १५ ॥

पुत्रः कीर्त्तिधराऽख्यो नाम्ना मद्गेहिनी पवनवेगा ।
पुत्रो दमितारिस्त्वज्जनको मन्दिरा वनिता ॥ १६ ॥

कनकश्रीके पास भेज दिया। वहाँ वे दोनों नाटक सन्धियोंमें बहुत चार अनन्तवीर्यकी प्रशंसा करने लगे॥ ७॥ अनन्तर कनकश्री उसपर अनुरक्त हो गई है ऐसा जानकर वे दोनो उसे विमानसे ले भागे। यह सुन दमितारि अत्यन्त क्रुद्ध हुआ तथा सेना सहित युद्ध करनेके लिए गया। अन्तमे दमितारिने चक्र लेकर अनन्तवीर्य पर चलाया परन्तु वह चक्र उसकी तीन प्रदक्षिणा देकर दाहिने हाथके पास आ ठहरा। भावी नारायण अनन्तवीर्यने उसी चक्रसे दमितारिको मार गिराया। इस प्रकार युद्धका अन्त कर वे दोनों भाई आकाश मार्गसे जा रहे थे कि उनका विमान आकाश मार्गमे रुक गया। वहाँ पर दमितारिके पिता कीर्तिधरको देवोके आसनको कपानेवाला केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है यह जान॥ ८-१०॥ वे लोग विमानसे उतर कर समवशरणमें गये और उनको प्रणाम कर धर्मोपदेश सुना। वहाँ पिताकी मृत्युसे दुखित कनकश्रीने अपने पूर्वभव पूछे॥ ११॥ केवलीने उत्तरमे कहा कि तुम पिछले तीसरे भवमे धातकीखण्ड द्वीपकी पूर्व दिशामे ऐरावत क्षेत्रके शंखपुर नगरमें एक वैश्यकी श्रीदत्ता नामकी बडी पुत्री थीं। तुम्हारी और भी छोटी बहिने थीं जो कुण्टी, कुणिनि, पङ्गु, काणी, कुष्ठिनी तथा कुब्जा थीं जिनकी बड़ी दुर्गति थी। इन सब माँ विहीन बहिनोंकी ज्येष्ठा होनेके कारण तुम्हीं पोषिका थीं॥१२-१३॥ एक समय सर्वशैल नामके पर्वत पर सर्वयश नामके मुनिसे धर्मोपदेश सुनकर तूने धर्मचक्र व्रतोपवास किया। तथा विद्याधर राजाकी ऋद्धिको देखकर उसकी कामना की। जिससे मर कर तू सौधर्म इन्द्रकी बिजलीकी कान्तिके समान कान्तिवाली देवी हुई। मैं भी सुमन्दिरपुरमे राजा कनकपुंज और रानी जयदेवसे कीर्तिधर नामका पुत्र हुआ। मेरी पत्नीका नाम पवनवेगा था तथा तेरा पिता दमितारि मेरा पुत्र है और उसकी पत्नीका नाम मन्दिरा है॥ १४-१६॥

शान्तिकरस्य सकाशे प्रदीक्ष्य वर्षं स्थितस्य मे प्रतिमाम् ।
अष्टार्द्धकर्मनाशादुत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥ १७ ॥

प्रतिलभ्य सुव्रतायां विचिकित्सां कृतवती तदा यस्मात् ।
तस्माद् बन्धुवियोगं ननु प्राप्तासि गुरुदुःखा ॥ १८ ॥

श्रुत्वा प्रदक्षिणं तं कृत्वा निर्विण्णया सहागत्य ।
ददृशुरनन्तसेनं पुरि खचरैर्युद्ध्यमानं तौ ॥ १९ ॥

विद्युद्दंष्ट्रसुघोषौ प्रतिशत्रुसुतौ निहत्य वेगेन ।
हलधरचक्रधरत्वं तौ प्राप्यारेमतुर्महितौ ॥ २० ॥

कन्याश्चतुःसहस्रैः सह कनकश्रीः स्वयम्प्रभार्हन्तम् ।
शरणं प्रपद्य कृत्वा सुतपोऽन्ते कल्पमादिमं प्राप्ता ॥ २१ ॥

भार्या विजया हलिनो दुहिता सुमतिः प्रपूज्य जिनचैत्यम् ।
प्रददौ मुनये दानं तस्मान्निपपात वसुधारा ॥ २२ ॥

तुष्टौ हलचक्रधराविहानन्देन मन्त्रिणा चोक्तौ ।
तस्याः स्वयंवरार्थं व्याहरतां तौ नृपान् सर्वान् ॥ २३ ॥

कन्या शतपरिवारा शिबिकामारुह्य सिद्धसेनेन ।
प्रविवेश नारपत्यं विमानमायाद्देविका तस्मिन् ॥ २४ ॥

बुध्यस्व धनश्रीरिति दिवि तां निजगाद नवमिकां देवी ।
पुष्करभारतवास्ये नन्दनपुर्यमितविक्रमस्य ॥ २५ ॥

मैंने शान्तिकर मुनिराजके पास दीक्षा ले एक वर्ष तक प्रतिमा योग धारण कर चतुर्घातिया कर्मोंका नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त किया है ॥ १७ ॥ तुमने पूर्व जन्ममे सुव्रता नामकी आर्यिका-को प्राप्त कर उनके प्रति ग्लानि की थी इसलिए तुम्हें अपने बन्धुओं का बड़े कष्टके साथ वियोग सहना पड़ा ॥ १८ ॥

यह सब सुन उन लोगोंने केवलीकी प्रदक्षिणा की और उदासीन उस कनकश्रीके साथ अपने नगरको लौट आये। लौटते समय उन लोगोंने देखा कि नगरमें मेरा पुत्र अनन्तसेन विद्याधरोंके साथ युद्ध कर रहा है। तब उन्होंने उनके मुखिया दमितारिके पुत्र विद्युद्दंष्ट्र और सुघोषको शीघ्रतापूर्वक मार डाला। इसके बाद वे दोनों अपराजित और अनन्तवीर्य हलधर और चक्रधरका पद पा आनन्द करने लगे। कनकश्रीने चार हजार कन्याओंके साथ स्वयंप्रभ जिनेन्द्रकी शरण जा दीक्षा ले ली और तप करके प्रथम स्वर्गमे देव हुई ॥ १९–२१ ॥

एक समय बलदेवकी पत्नी विजया और पुत्री सुमतिने जिन चैत्यकी पूजाकर दमवर मुनिराजको आहार दान दिया इससे उसके फलस्वरुप पञ्चाश्चर्यकी वृष्टि हुई ॥ २२ ॥ एक दिन बलभद्र और नारायण अत्यन्त प्रसन्न थे यह देख आनन्द मन्त्रीने उनसे निवेदन किया। तब उन्होंने कन्याके स्वयंवरके हेतु सभी राजाओंको आमन्त्रित किया ॥ २३ ॥ सौ सखियोंसे घिरी हुई उस कन्याने पालकी पर आरूढ़ हो सिद्धसेन प्रतिहारीके साथ स्वयंवर-मण्डप मे प्रवेश किया। उसी समय वहाँ एक विमान आया जिसमे एक देवी बैठी थी और उसका नाम नवमिका था। आकाशमे ठहर कर ही उसने कहा कि तुम अपनेको धनश्री समझो। हम दोनों पुष्करार्ध द्वीपके भरतक्षेत्रमें नन्दन नगरके राजा अमित-विक्रम और रानी अनन्तमतीके अनन्तश्री और धनश्री नामकी दो

आवामनन्तमत्याश्चानन्तश्रीधनश्रियावास्ताम् ।
सिद्धगिरौ नन्दनर्षिं नत्वा प्रोपधमगृह्णीव ॥ २६ ॥

त्रिपुराधिपवज्राङ्गदविद्याधृन्नामाशोकवनिकायाम् ।
अहरच्च वज्रमालिन्याकाशे त्याजिते पतिते ॥ २७ ॥

तेनाऽपि पर्णलघ्वीविद्या संक्रामिता तया शनकै. ।
वेणुवने सरःपार्श्वे भीमाटव्यामपप्लाव ॥ २८ ॥

प्रत्याख्याय च तस्मिन् मृत्वा शक्रस्य नवमिका चाहम् ।
जाता वैश्रवणस्य त्वमग्रमहिषी रतिर्नाम्ना ॥ २९ ॥

नन्दीश्वरयात्रायां धृतिवरचारणवचो जन्मनीतः ।
सेत्स्यथ तुर्ये स्मृत्वा स्थित्या तद्बोधनायायाम् ॥ ३० ॥

इत्युक्तं श्रुत्वा मुमूर्च्छ जातिस्मरं पुनर्लब्धा ।
विज्ञाप्य नृपसमूहं प्रपूजिता देवपत्नीभिः ॥ ३१ ॥

कन्या सप्तशतावृता प्राव्राजीत्सुव्रतार्यिकापार्श्वे ।
कृत्वोग्रतप. सम्यक् साऽन्ते प्राप्तानतं कल्पम् ॥ ३२ ॥

कालकृते चक्रधरे बलदेवोऽनन्तसेनमभिषिच्य ।
षोडशराजसहस्रैरदीक्षद् यशोधरसमीपे ॥ ३३ ॥

अवधिज्ञानं प्राप्य चक्रे रत्नावलिं तपश्चोग्रम् ।
आराध्य सिद्धशैले सम्प्रापत्सोऽच्युतेन्द्रत्वम् ॥ ३४ ॥

प्राक्कृतनिदानदोषादनन्तवीर्योऽप्यधोगतिमवाप ।
वर्षसहस्रैः षट्सप्ततिमिश्च निरयाद् विनिःसृत्य ॥ ३५ ॥

धरणेन्द्रबोधनादिह भारतविजयार्द्धगगननामपुरे ।
पुत्रोऽत्र मेघवाहनमालिन्योर्मेघनादाख्यः ॥ ३६ ॥

पुत्रियाँ थीं। किसी दिन हम दोनों सिद्धकूट चैत्यालयमें गईं थीं, और वहाँ नन्दन नामके ऋषिसे।प्रोषधव्रत लिये थे॥ २४–२६॥ उस समय त्रिपुर नगरके राजा वज्रांगदने अशोकवाटिकामें हम दोनोंको हरण किया, किन्तु उसकी स्त्री वज्रमालिनीके भयसे उसने हम दोनोंको आकाशमें छोड़ दिया और साथ ही उसने पर्णलघ्वी विद्या भी दी जिससे हम दोनों भीम अटवीमें तालावके किनारे वासोंके वनमें धीरे-धीरे आ उतरीं॥ २७–२८॥ वहाँ हम दोनोंने समाधिमरण धारण किया। मरकर मैं तो सौधर्म इन्द्रकी नवमिका देवी हुई हूँ और तू कुवेरकी रति नामकी मुख्य देवी हुई॥ २९॥ एक समय हम दोनों नन्दीश्वरकी यात्रा करने गयी थीं। वहाँ पर धृतिवर नामके चारण मुनिसे पूछने पर कि हम लोगोंकी मुक्ति कब होगी, उन्होंने कहा था कि इस भवके वाद चौथे भवमें अवश्य मुक्ति होगी। यह वतलानेके लिए ही मैं यहाँ आई हुई हूँ। यह कथन सुन कन्याको जातिस्मरण हो आया और वह मूर्च्छित हो गई। अनन्तर उसके द्वारा नृप-समूहको वैराग्यकी सूचना देनेपर वह देवांगनाओंके द्वारा पूजी गई। तत्पश्चात् वह सात सौ कन्याओंके साथ सुव्रता आर्यिकाके पास दीक्षित हो गई और उग्र तपकर अन्तमें आनत कल्पमें देव हुई॥ ३०–३२॥

कुछ काल वाद अर्धचक्री अनन्तविजयकी मृत्युके वाद वलदेव अपराजितने राज्यपद पर अनन्तसेनका अभिषेक कर सोलह हजार राजाओंके साथ यशोधर मुनिराजके पास दीक्षा ले ली और अवधिज्ञानको प्राप्त कर उन्होंने रत्नावली नामक उग्र तप किया और सिद्धकूट पर्वत पर अन्तमें आराधना पूर्वक मरण कर अच्युतेन्द्र पद पाया॥ ३३–३४॥ पहले किये गये निदानके कारण अनन्तवीर्य नरक गया और वहाँ ७६ हजार वर्ष तक दुख भोग कर वहाँसे निकला। उसे उसके पिताके जीव धरणेन्द्रने नरकमें

विद्याधरचक्रधरो भूत्वाऽसावन्यदागतो मेरुम् ।
जिनचैत्यायाऽऽगच्छत्तस्मिन्कालेऽच्युतेन्द्रोऽपि ॥ ३७ ॥

बुध्यस्व नरेन्द्र इति प्रबोधितो देवगुरुसमीपे ।
प्रव्रज्योग्रतपःस्थश्चक्रे रत्नावलिं सुतपः ॥ ३८ ॥

गिरिनन्दने स्थितस्य प्रतिमां चक्रे सुकण्ठ उपसर्गम् ।
सम्यग्विहाय देहमभून् प्रतीन्द्रोऽच्युतेन्द्रस्य ॥ ३९ ॥

इति पुराणसारसंग्रहे महापुराणे शान्तिचरिते अर्थाख्यानसंग्रहे अनन्तवीर्यकाण्डं नाम तृतीयः सर्गः समाप्तः ॥ ३ ॥

जाकर संबोधा था। इसलिए वहाँसे निकल कर इसी भरतक्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी गगनवल्लभपुरीमें राजा मेघवाहन और रानी मेघमालिनीसे मेघनाद नामका पुत्र हुआ॥ ३५-३६॥ विद्याधरों-का स्वामी होनेके बाद एक समय वह मेरुकी वन्दना करने गया था उसी समय अपराजितका जीव अच्युतेन्द्र भी जिनालयकी वन्दना करनेके लिए आया था। तब उसने हे नरेन्द्र 'तुम प्रबुद्ध हो जाओ' यह कहकर सम्बोधित किया। तब वह देवगुरुके समीप दीक्षा लेकर उग्र तपमें स्थित हो रत्नावली नामके तपको तपने लगा। एक समय वह नन्दन नामक पर्वत पर प्रतिमा योगसे खड़ा था कि सुकण्ठने उसके ऊपर उपसर्ग किये। इससे अन्तमें वह समाधिमरणसे देह त्यागकर अच्युत स्वर्गका प्रतीन्द्र हुआ॥ ३७-३९॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह नामके महापुराणान्तर्गत शान्तिचरितमें अनन्तवीर्यकाण्ड नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।



चतुर्थः सर्गः

द्वाविंशत्यब्धिसमं कालं भुक्त्वोत्तम सुरेन्द्रत्वम् ।
च्युत्वा जम्बूद्वीपे सीतायास्तटे मङ्गलावत्याम् ॥ १ ॥

प्राग्रत्नसञ्चयेऽभूत् क्षेमङ्करकनकचित्रयोः पुत्रः ।
वज्रायुधोऽथ नाम्ना भार्या लक्ष्मीमती तस्य ॥ २ ॥

तस्यामजनि सहस्रायुध इति नाम्ना प्रतीन्द्रोऽपि ।
तज्जाया श्रीषेणा तत्पुत्रः कनकशान्त इति ॥ ३ ॥

क्षेमङ्करं सभायामुपविष्टं पुत्रनप्तृकोपेतम् ।
ऐशानकल्पवासी वादेनोपस्थितो देवः ॥ ४ ॥

वज्रायुधेन देवः पराजितो नास्तिको नयज्ञेन ।
उपशम्य चित्रचूलः प्रपूज्य जग्राह सम्यक्त्वम् ॥ ५ ॥

प्राप्तेऽन्यदा वसन्ते सुदर्शना प्रेषणेन धारिण्याः ।
न्यज्ञापयत्कुमारं सुररमणोद्यानगमनाय ॥ ६ ॥

प्रियदर्शनवाप्यन्तः क्रीडन्तं सप्तयुवतिशतसहितम् ।
पूर्वभवबद्धवैरो विद्युद्दंष्ट्रोऽसकौ दृष्ट्वा ॥ ७ ॥

प्रक्षिप्योपरि शैलं देवं बध्नाति नागपाशैः स्म ।
वज्रायुधोऽपि रुष्टो विभेद चिच्छेद तत्पाशान् ॥ ८ ॥

क्षेमङ्करोऽपि बुद्ध्वा लौकान्तिकदेवबोधनात्पुत्रम् ।
अभिषिच्योग्रतपःस्थः प्रापच्चार्हन्त्यमतिपूज्यः ॥ ९ ॥

चतुर्थ सर्ग

अपराजितका जीव जो कि इन्द्र हुआ था, २२ सागर आयु भोग वहाँसे च्युत हुआ और जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके किनारे पर स्थित मंगलावती देशके रत्नसंचयपुर नगरमें राजा क्षेमंकर और रानी कनकचित्रासे वज्रायुध नामका पुत्र हुआ। उसकी भार्याका नाम लक्ष्मीमती था। तथा उन्हीं दोनोंके अनन्तवीर्य प्रतीन्द्र-का जीव सहस्रायुध नामका पुत्र हुआ। उसकी पत्नी श्रीषेणा थी जिससे कनकशान्त नामका एक पुत्र हुआ॥ १-३॥

एक समय क्षेमंकर अपने पुत्र और पौत्रोंके साथ सभामें बैठा था कि उसी समय ईशान स्वर्गका एक देव राज्य सभामें विवाद करनेके लिए आया। वाद-विवादमें नयशैली जाननेवाले वज्रायुधने उस नास्तिक देवको पराजित कर दिया। तब शान्त हो उस विचित्रचूल देवने उस राजाकी पूजा की और सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया॥ ४-५॥

किसी दूसरे समय वसन्तऋतुमें उसकी धारणी आदि रानियों के सन्देशवश सुदर्शनाने वज्रायुधकुमारको सुररमण उद्यानमें चलनेके लिए सूचना दी। वज्रायुध उस उद्यानमें स्थित प्रियदर्शन वापीमें अपनी सात सौ रानियोंके साथ क्रीड़ा करने लगा। इतनेमें ही पूर्व जन्मके वैरी विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरने उसे देखकर एक पत्थरकी शिलासे उस वापीको ढंक लिया और नागपाशसे उस राजाको बाँध दिया। तब वज्रायुधने रुष्ट होकर उस शिलाका भेदन कर दिया और नागपाशको काट डाला॥ ६-८॥

वज्रायुधके पिता क्षेमंकरने भी लौकान्तिक देवोंके द्वारा सम्बोधे

वज्रायुधश्च पश्चात्प्रापत्सम्पूर्णचक्रवर्तित्वम् ।
युवराजत्वं पित्र्यं प्राप सहस्रायुधश्चापि ॥ १० ॥

वज्रायुधं सभायामासीनं रत्नचित्रनामायाम् ।
भयवेपमानगात्रः कश्चिच्छरणागतः खचरः ॥ ११ ॥

तस्यानुमार्गमेका खेटकतरवारदीप्तभुजयुगला ।
विद्याधरी नरेन्द्रं जगाद मुञ्चेति दर्पकरम् ॥ १२ ॥

अनुमार्गेण च तस्याः प्रापद्विद्याधरो गदाहस्तः ।
मा रक्षैन राजन् तत्कृतमपराधमाख्यदिमम् ॥ १३ ॥

अस्मिन्पूर्वविदेहे कच्छे विजयार्द्धं उत्तरश्रेण्याम् ।
शुक्रप्रभे पुरवरे यशोधरायां सुदत्तस्य ॥ १४ ॥

पवनप्लवः सुतोऽहं नृपेन्द्र मद्गेहिनी सुकान्तेति ।
दुहिता शान्तिमतिर्मे मुनिसागरपर्वतं गत्वा ॥ १५ ॥

ततः सोदर्यमानामद्याक्षासीदिमां दुरात्मैषः ।
तत्समये प्रज्ञप्तिः सिद्धाऽस्या आगमद् भीतः ॥ १६ ॥

आनीयास्याः पूजां तत्राद्दष्ट्वाऽऽगतोऽहमत्रैव ।
अविनीतं साहसिकं मुञ्चैनं दण्डयिष्यामि ॥ १७ ॥

श्रुत्वा ज्ञात्वा स चेदमवधिज्ञानेन पूर्वसम्बन्धम् ।
विद्याधरं वभाषे शृण्वनयोः पूर्वजातिमिति ॥ १८ ॥

जम्बूद्वीपैरावतविन्ध्यपुरे विन्ध्यसेनराजस्य ।
पुत्रः सुलक्षणायाः ख्यातो नाम्ना नलिनकेतुः ॥ १९ ॥

जानेसे विरक्त होकर और पुत्रका राज्याभिषेक करके उग्र तप करते हुए अतिपूज्य अरिहन्त पद प्राप्त किया ॥ ९ ॥ इसके बाद वज्रायुधने छह खण्डोंका समस्त राज्य पाकर चक्रवर्ती पद पाया और उसके पुत्र सहस्रायुधने भी पिताकी आज्ञासे युवराज पद प्राप्त किया ॥ १० ॥

एक समय भयसे काँपता हुआ एक विद्याधर रत्नचित्रा नामकी सभामें बैठे हुए वज्रायुधकी शरणमे आया ॥ ११ ॥ उसके पीछे दोनों हाथोंमें चमकती तलवार लिये एक विद्याधरी आई। और राजासे बोली कि इस अभिमानीको छोड़िए। उस विद्याधरीके पीछे हाथमे गदा लिये एक बूढ़ा विद्याधर भी आया और यह कहते हुए कि हे राजन्! इस दुष्टकी रक्षा मत कीजिए, उसके अपराध कहने लगा ॥ १२-१३ ॥ इसी जम्बूद्वीपके पूर्वविदेह क्षेत्रमें कच्छ नामका देश है। उसमें विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमे शुक्रप्रभ नामका नगर है। वहाँके राजा सुदत्त और रानी यशोधरा से हे राजन्! मैं पवनवेग नामका पुत्र हुआ हूँ। मेरी पत्नीका नाम सुकान्ता है। यह शान्तिमति मेरी पुत्री है। यह विद्या सिद्ध करनेके लिए मुनिसागर नामके पर्वत पर गई थी। इस पापीने भाई जैसा माननेवाली उसका परिहास कर विघ्न किया पर उसी समय शान्तिमतिको प्रज्ञप्ति नामकी विद्या सिद्ध हो गई जिससे भयभीत हो वह यहाँ आया है। उसी समय मैं उसकी पूजाकी सामग्री लेकर वहाँ पहुँचा था। किन्तु वहाँ इसेन देख उसको ढूँढ़ता हुआ यहाँ आया हूँ। इस दुष्ट व्यर्थ साहस करनेवालेको छोड़ दो, मैं इसे दण्ड दूंगा ॥ १४-१७ ॥

यह सुन राजा अवधिज्ञानसे उनका पूर्वभव जानकर विद्याधर से कहने लगा कि इनके पूर्वभवको सुनो ॥ १८ ॥

इसी जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्रमे विन्ध्यपुरके राजा विन्ध्यसेन

श्रेष्ठी धनादिमित्रः श्रीदत्ता नाम गेहिनी तस्य ।
तत्पुत्रो दत्तोऽभूत्प्रीतिंकरा तस्य भार्याऽऽसीत् ॥ २० ॥

रूपवतीमुद्याने दृष्ट्वा जग्राह नलिनकेतुस्ताम् ।
दत्तोऽपि तद्वियोगात्साधुं सुव्रतमुपैद् दुःखी ॥ २१ ॥

तत्काले तस्य मुनेरुत्पन्ने केवले सुरागमनम् ।
दृष्ट्वोपशम्य दत्तो मृत्वाऽतस्तीव्रसंवेगः ॥ २२ ॥

जम्बूद्वीपसुकच्छे विजयार्धस्योत्तरश्रेण्याम् ।
काञ्चनतिलके नगरे महेन्द्रविक्रमखगेन्द्रस्य ॥ २३ ॥

जातोऽनिलवेगायां दत्त. पुत्रोऽयमजितसेन इति ।
उपशान्तकपायत्वात्कमला नाम्नाऽस्य खलु कान्ता ॥ २४ ॥

मेघविनाशनिमित्ताद् बुद्ध्वा सीमङ्करस्य पार्श्वेऽसौ ।
प्रव्रज्य नलिनकेतुर्निर्वाणं केवली प्रापत् ॥ २५ ॥

चन्द्रायणोपवासं प्रीतिंकरा सुव्रताऽर्यिकापार्श्वे ।
कृत्वा चान्ते मृत्वा शान्तिमतिस्ते सुता जाता ॥ २६ ॥

एतेन कारणेन स्नेहादहरत्सुतामय दृष्ट्वा ।
श्रुत्वा राज्ञोक्तं तं सम्बन्धं पूर्वजातिकृतम् ॥ २७ ॥

सर्वे विमुक्तवैरा जग्मुः क्षेमङ्करं जिनं शरणम् ।
शान्तिमतिर्निर्विण्णा कृत्वा मुक्तावलीमार्या ॥ २८ ॥

ईशाने देवत्वं प्राप्यैता स्वकशरीरपूजार्थम् ।
तत्काले चोद्भविता जनकाजितसेनयोर्ज्ञानम् ॥ २९ ॥

और रानी सुलक्षणाके नलिनकेतु नामका एक पुत्र था ॥ १६ ॥ उसी नगरमें एक धनमित्र नामका सेठ रहता था। उसकी पत्नी श्रीदत्तासे सुदत्त नामका पुत्र हुआ तथा उसकी पत्नीका नाम प्रीतिंकरा था। रूपवती वह एक दिन किसी वनमें विहार कर रही थी। उसे देख राजपुत्र नलिनकेतुने उसे हरण कर लिया। श्रीदत्त भी उसके वियोगसे दुखी हो सुव्रत जिनेन्द्रके पास दीक्षा ले साधु हो गया ॥ २०–२१ ॥ उसी समय उन मुनिके केवलज्ञान उत्पन्न होने पर देवतागण उनकी पूजा करने आये, यह देख शान्त-परिणामी श्रीदत्ताको तीव्र वैराग्य हो गया और आयुके अन्तमे मरकर क्रमसे इसी जम्बूद्वीपके सुकच्छ देशके विजयार्द्धकी उत्तर श्रेणीमें कांचनतिलक नगरके राजा महेन्द्रविक्रम विद्याधरके यहाँ रानी अनिलवेगासे सुदत्तका जीव अजितसेन नामका यह पुत्र हुआ। यह अत्यन्त मन्दकषायी था। इसकी पत्नीका नाम कमला था ॥ २२–२४ ॥

इधर नलिनकेतुको एक दिन मेघनाश देख आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और सीमङ्कर मुनिके पास दीक्षा ले ली। और तपकर अनुक्रमसे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया ॥ २५ ॥

प्रीतिंकरा भी सुव्रता आर्याके पास चान्द्रायण तप करने लगी और अन्तमें देह त्याग कर क्रमसे तुम्हारे शान्तिमति नामकी पुत्री हुई ॥२६॥ इसी कारणसे इसने तुम्हारी पुत्रीको स्नेह वश हरण करना चाहा था। इस प्रकार राजाके द्वारा कहे गये पूर्वभवके सम्बन्धको सुनकर उन सबने वैर-भाव छोड़ दिया और क्षेमंकर जिनराजकी शरणमें गये। इसके बाद शान्तिमति विरक्त हो आर्यापदकी दीक्षा ले मुक्तावली तप कर ईशान स्वर्गमें देव हो अपने पूर्व शरीरकी पूजा करने आवेगी। उसी समय उसके पिता और अजितसेनको केवलज्ञान उत्पन्न होगा। तब वह बड़ी ऋद्धिके साथ उनके केवलज्ञान-

केवलिपूजां कृत्वा तयोर्महद्धर्या स्वस्थानमथ गन्ता ।
अवतीर्य पुनस्तस्मान्निर्वाणं चापिगन्तेति ॥ ३० ॥

अवधिज्ञानेनेदं कथितं वज्रायुधेन राजभ्यः ।
तुष्टया विस्मितहृदया राजेन्द्रं पूजयामासुः ॥ ३१ ॥

शिवमन्दिरे खगेन्द्रो विमला भर्त्ता हि मेघमालीति ।
दुहिता काञ्चनमाला साऽनीता कनकशान्तेस्तु ॥ ३२ ॥

वस्त्वोकसारपुर्यां जयसेनाजलधिसेनयोर्दुहिता ।
नाम्ना वसन्तसेना तां च सखित्वेन जग्राह ॥ ३३॥

तस्याश्च मैथुनोऽन्यो हिमचूलः कनकशान्तये रुष्ट ।
अथ कनकशान्तिरायाद्धिमवद्गिरिमन्यदा ताभ्याम् ॥ ३४ ॥

विमलप्रभमुनिपार्श्वे श्रुत्वा धर्मं ततः प्रवव्राज ।
प्राव्राजिष्टां तेऽपि निर्विण्णे विमलमतिपार्श्वे ॥ ३५ ॥

उपसर्गं हिमचूलश्चक्रे प्रतिमां स्थितस्य वैरेण ।
दृष्ट्वाऽमर्यादेति क्षुभिता विद्याधराः सर्वे ॥ ३६॥

प्रतिमां स्थितस्य पुनरपि रत्नपुरे सुरनिपात उद्याने ।
उपसर्गसहस्य मुनेरुत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥ ३७ ॥

देवागमनं दृष्ट्वा भीतः शरणागतश्च हिमचूलः ।
अभ्यर्च्य चक्रवर्ती नप्तारं संशयमपृच्छत् ॥ ३८ ॥

की पूजाकर अपने स्थान जावेगी और वहाँसे च्युत हो वह निर्वाण पद प्राप्त करेगी ॥ २७–३० ॥

वज्रायुधने अपने अवधिज्ञान बलसे यह वात राजाओंसे कही । इससे सन्तोष पूर्वक उन सबका चित्त आश्चर्ययुक्त हो गया और उन्होंने नृपेन्द्रकी पूजा की ॥ ३१ ॥

एक समय विजयार्द्धके शिवमन्दिर नगरमें राजा मेघमाली तथा उसकी रानी विमला रहते थे। उनकी पुत्रीका नाम कनकमाला था। उसका विवाह कनकशान्ति नामके राजकुमारसे हुआ था॥३२॥ विजयार्धके दूसरे नगर वस्त्वोकसारमें समुद्रसेन राजा तथा उसकी रानी जयसेना रहते थे। उनके वसन्तसेना नामकी पुत्री थी। वह भी कनकशान्तिसे विवाही गई थी। पर उसका एक भाई हिमचूल कनकशान्तिके ऊपर पूर्वभवके वैरके कारण रुष्ट रहने लगा। एक समय अपनी दोनों रानियोंके साथ कनकशान्ति हिमवान् गिरि पर आया और वहाँ विमलप्रभ मुनिके पास धर्मोपदेश सुन दीक्षित हो गया। तथा उसकी दोनों रानियाँ भी विमलमति आर्यिकाके पास दीक्षित हो गईं ॥ ३३–३५ ॥

एक समय कनकशान्ति मुनि प्रतिमायोग धारण कर स्थित थे कि उसी समय दुष्ट हिमचूलने पूर्वबद्ध वैरके कारण उपसर्ग करना प्रारम्भ किया, पर मर्यादाका अतिक्रमण देख सभी विद्याधर राजा, वहुत क्षुब्ध हुए इससे वह वहाँसे भाग गया। किसी दूसरे समय रत्नपुर नगरके सुरनिपात उद्यानमें वे ही मुनिराज प्रतिमा योग धारण कर बैठे थे कि उस दुष्टने पुनः उपसर्ग करना प्रारम्भ किया। किन्तु उन उपसर्गोंको जीतनेके कारण उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥ ३६–३७ ॥

उस समय देवोंका आगमन देखकर वह हिमचूल डर गया और उन मुनिराजकी शरणमें आया। अथानन्तर नातीके केवल-

वज्रायुधोऽपि दत्त्वा राज्यं पुत्राय सप्तपुत्रशतैः ।
राजसहस्रैः सह सप्तभिश्च पितरं ययौ शरणम् ॥ ३९ ॥

सिद्धाचले च तस्थौ प्रतिमा संवत्सरं प्रतिज्ञाय ।
वल्लीवल्मीकाभ्यां प्रवेष्टितो नगवदविचारः ॥ ४० ॥

अश्वग्रीवसुतौ यौ रत्नग्रीवायुधौ धरणिमृत्वा ।
हिण्डित्वा ससारे महातिबलनामकौ जातौ ॥ ४१ ॥

चक्रतुरसुरकुमारा उपसर्गं तस्य पूर्ववैरेण ।
रम्भातिलोत्तमागमनदर्शनादेव तौ नष्टौ ॥ ४२ ॥

आराध्याऽस्मिन्नुपरिग्रैवेयाधोविमानके जातः ।
अहमिन्द्रः सौमनसे चैकोनत्रिंशदब्ध्यायुः ॥ ४३ ॥

शतबलिने तु सहस्रायुधोऽपि दत्त्वा सुताय राज्यं स्वम् ।
पिहितास्रवस्य पार्श्वे प्रव्रज्योग्रं तपश्चक्रे ॥ ४४ ॥

ईषत्प्राग्भारगिरौ सम्यग्व्युत्सृत्य मासिकं भक्तम् ।
सोऽप्यगमत्सौमनसं चतुर्विधाराधनायुक्तः ॥ ४५ ॥

इति शान्तिचरिते अर्थाख्यानसंग्रहे आर्यबद्धे दामनन्दिनः कृतौ
वज्रायुधकाण्डं नाम चतुर्थः सर्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

———

ज्ञानकी पूजा कर वज्रायुध चक्रवर्तीने अपना संशय पूछा ॥ ३८ ॥ और अपने पुत्र सहस्रायुधको राज्य दे, सात सौ पुत्रों व सात हजार राजाओंके साथ अपने पिताकी शरणमें गया ॥ ३९ ॥ अनन्तर वे धीर वीर मुनिराज सिद्धगिरि पर्वत पर एक वर्षके लिए प्रतिमा योग धारण कर स्थित हो गये। उस समय लताओं और वामियों से घिरे हुए वे मुनिराज ऐसे मालूम पड़ते थे जैसे अचल वृक्ष ही हों ॥ ४० ॥

इधर अश्वग्रीवके रत्नग्रीव और रत्नायुध नामके दो पुत्र थे जो अपने पापकर्मके उदयसे संसारमें परिभ्रमण कर अतिबल और महाबल नामके असुर हुए। वे दोनों असुर पूर्व वैरके कारण उन पर उपसर्ग करने लगे। उसी समय रम्भा और तिलोत्तमा नामकी दो देवियाँ आईं, किन्तु उन्हें देखकर वे दोनों भाग गये ॥ ४१–४२ ॥

फिर वे मुनिराज अच्छी तरह तपकी आराधना कर अन्तमें ऊर्ध्व ग्रैवेयकके सौमनस नामके अधो विमानमें २९ सागरकी आयुवाले अहमिन्द्र हुए ॥ ४३ ॥

सहस्रायुधने भी अपने पुत्र शतबलीको राज्य दे पिहिताश्रव मुनिके समीप दीक्षा ले ली और उग्र तप किया तथा वे वैभार पर्वत पर एक माहका उपवास कर और चार प्रकारकी आराधना का आराधनकर सौमनस विमानमें अहमिन्द्र हुए ॥ ४४–४५ ॥

इस प्रकार दामनन्दिविरचित आर्याबद्ध शान्तिचरितमें वज्रायुध काण्ड नामक चौथा सर्ग समाप्त हुआ।

———

पञ्चमः सर्गः

अवतीर्याऽस्मिन्द्वीपे पूर्वविदेहेषु पुण्डरीकिण्याम् ।
घनरथ नृपस्य भार्ये मनोहरामनोरमे चेति ॥ १ ॥

जातौ तयोः सुतौ मेघरथो दृढरथश्च तद्भार्योः ।
आद्यस्य प्रियमित्रामनोरमे सुमतिरितरस्य ॥ २ ॥

घनरथमासीनं सुखमन्तःपुरपुत्रपौत्रपरिवारम् ।
गणिका सुषेणिका किल कुक्कुटयुद्धार्थमुपतस्थौ ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा मनोरमां शतसहस्रपणितां स्म काञ्चनामाह ।
आनय वज्रसुतुण्डं येनेच्छसि तेन नः पणितम् ॥ ४ ॥

लग्नौ शिखिनौ युद्धे न जयत्येकोऽपि किं कुमारेति ।
राज्ञा पृष्टोऽवोचन्मेघरथ, पक्षिणोर्जातिम् ॥ ५ ॥

जम्बूद्वीपैरावतरत्नपुरे धन्यभद्रशाकटिकौ ।
अनुडुम्भिमिरामन्योऽन्यं हत्वा श्रीनदीतीर्थे ॥ ६ ॥

तस्माद्गजयूथपती तौ ताम्रश्वेतकर्णकौ जातौ ।
दृष्ट्वा सुवर्णनद्यास्तीरेऽन्योऽन्यं पुनर्हत्वा ॥ ७ ॥

जम्बूभारतवास्येऽयोध्यायां नन्दिमित्रपल्लीशः ।
यूथे महिषौ जातौ पुष्टौ वरशक्तिसेनाभ्याम् ॥ ८ ॥

युध्वाऽन्योऽन्यं हत्वा जातौ मेषौ पुनस्तयोरेव ।
नृपपुत्रचोदितौ पुनरेकैकं च जघ्नतुः शिरसा ॥ ९ ॥

पञ्चम सर्ग

वहाँसे च्युत हो वज्रायुध और सहस्रायुधके जीव इसी द्वीपके पूर्व विदेहकी पुण्डरीकिणी नगरीमें राजा घनरथके यहाँ रानी मनोहरा और मनोरमासे मेघरथ और दृढ़रथ नामके पुत्र हुए। उनमें से प्रथम मेघरथकी प्रियमित्रा और मनोरमा ये दो स्त्रियाँ थीं और दूसरे दृढ़रथकी सुमति नामकी भार्या थी ॥ १-२ ॥

एक समय वे घनरथ पुत्र, पौत्र तथा रानियो सहित सुख पूवक बैठे थे कि उसी समय सुषेणा नामकी गणिका मुर्गोंका युद्ध करानेके लिए आई और मनोरमाको देखकर एक लाखकी शर्त करानेवाली उसकी काञ्चना नामकी दासीसे कहने लगी कि तुम अपने वज्रतुण्ड नामक मुर्गेको लाओ और जैसा तुम चाहो हमारी शर्त रहेगी। इसके वाद दोनों मुर्गे युद्ध करने लगे पर कोई भी मुर्गा नहीं जीता। इस पर घनरथने अपने पुत्र मेघरथसे कहा कि हे कुमार, यह क्या बात है ? इस प्रकार राजाके पूछने पर कुमार मेघरथ पक्षियोंके पूर्वजन्म कहने लगा ॥ ३-५ ॥ इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रके रत्नपुर नगरमें धन्य और भद्र नामके दो गाड़ीवान् रहते थे। एक समय श्रीनदीके किनारे एक बैलके निमित्तसे वे दोनों लड़ने लगे और एक दूसरेको मारकर श्वेतकर्ण और ताम्रकर्ण नामके गजपति हुए। फिर सुवर्णनदीके किनारे एक दूसरेको देखकर आपसमे लड़ मरे और जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें, अयोध्या नगरीमें नन्दिमित्र ग्वालाके यूथमें भैंसे हुए। उस नगरके राजपुत्र वरसेन और शक्तिसेनने उन दोनोंको खूब खिलाकर मोटा किया ॥ ६-८ ॥ तत्पश्चात् दोनों आपसमे लड़

इह कुक्कुटावभूतां विद्याधरसंयुतौ यतस्तात ।
विपरिश्रमेण तस्माच्चिरकालमिमावयुत्स्याताम् ॥ १० ॥

तच्छ्रुत्वोचे नृप्रतिर्विद्याधरसंयुतावितिं कथ नु ।
जनितकौतुकौ कौ तौ किं कारणमिहागतौ ब्रूहि ॥ ११ ॥

इत्युक्तः सुत ऊचे जम्बूद्वीपस्य भारते वर्षे ।
विजयार्द्धोदक्श्रेण्यां सुवर्णपुर्यां गरुडवेगः ॥ १२ ॥

तद्देवी धृतिषेणा तत्पुत्रौ चन्द्रतिलकदिवितिलकौ ।
तौ गतवन्तौ मेरुं वन्दित्वा नन्दने साधू ॥ १३ ॥

पप्रच्छतुरात्मभवं सागरचन्द्रो यतिः स्म वदतीत्थम् ।
धातकीखण्डैरावतपृथिवीतिलके पुरे राजा ॥ १४ ॥

नाम्नाभयघोपोऽभूद्देवीकनकतिलकाऽप्रपत्न्यस्य ।
विजयजयन्तौ तस्याः पुत्रावास्तां युवां तत्र ॥ १५ ॥

तत्र च मन्दारपुरे शंखो राजा जया च तद्देवी ।
पृथिवीतिलका दुहिता पत्नी साऽप्यभयघोपस्य ॥ १६ ॥

चेटी चञ्चत्तिलका राजानं प्रेपिता महादेव्या ।
व्यज्ञापयत षड्तुकं त्वया सहोद्यानमभिरन्तुम् ॥ १७ ॥

युक्तिकुसुमानि कृत्वा कोटीमौल्यानि षड्तुयोग्यानि ।
दर्शयति स्म नववधूनं येनैपोद्यानमगच्छत् ॥ १८ ॥

मरे और उन्हीं दोनों राजपुत्रोंके यहाँ मेंढ़े हुए। फिर उन्हीं राजपुत्रोंसे उकसाये गये वे लड़े और आपसमें शिरसे एक दूसरेको मार डाला ॥ ९ ॥ पुनः इस जन्ममें ये दोनों ये मुर्गे हुए हैं। हे तात! यतः वे दोनों मुर्गे विद्याधरोंसे रक्षित हैं अतः विना परिश्रमके ही वे दोनों लड़ रहे हैं ॥ १० ॥ यह सुनकर राजाने कहा कि ये दोनों विद्याधरोंसे संयुक्त हैं यह क्या वात है तथा कौतुकको उत्पन्न करनेवाले दोनों कौन हैं और यहाँ किस कारणसे आये हैं। यह सब हमें वतलाओ ॥ ११ ॥

इस पर पुत्रने बतलाया कि इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें विजयार्धकी उत्तरश्रेणीके सुवर्णपुरमें गरुड़वेग नामका राजा राज्य करता था ॥ १२ ॥ उसकी रानी धृतिषेणासे चन्द्रतिलक और दिवितिलक नामके दो पुत्र थे। वे दोनों भाई एक समय मेरु पर्वत पर गये और वहाँ नन्दन वनमें दो चारणऋद्धिधारी मुनियोंकी वन्दना करके अपने पूर्वभव पूछे। इसपर सागरचन्द्र मुनिराजने इस प्रकार कहा कि धातकीखण्ड द्वीपके ऐरावतक्षेत्रके पृथिवीतिलक पुरमें राजा अभयघोष रहता था। उसकी पटरानीका नाम कनकतिलका था। उन दोनोंके विजय और जयन्त नामके दो पुत्र हुए ॥ १३-१५ ॥

उसी देशके मन्दारपुरमें राजा शंख राज्य करता था। उसकी रानीका नाम जया था। उन दोनोंके पृथिवीतिलका नामकी पुत्री थी। यह भी अभयघोषकी पत्नी थी ॥ १६ ॥ एक समय बड़ी रानीने अपनी दासी चञ्चत्तिलकाको राजाके पास भेजा। उसने निवेदन किया कि महारानी आपके साथ छह ऋतुकी शोभायुक्त उद्यानमें विहार करना चाहती हैं ॥ १७ ॥ तब उसी समय छोटी रानीने अपनी विद्यासे वहीं पर सब ऋतुओंके बहुमूल्य फल पुष्पोंसे भरा हुआ बाग बनाकर दिखला दिया जिससे राजा उद्यानमें नहीं गया। इससे सुवर्णतिलका उद्यानमें विहार करनेमें असमर्थ

उद्यानेऽविहरन्ती पृथिवीतिलकाऽवमाननिर्विण्णा ।
सुमतिगणिन्याः पार्श्वे धर्मं श्रुत्वा प्रवव्राज ॥ १९ ॥

दत्त्वाऽन्यदा नरेन्द्रो दमवरमुनये च दानमतिभक्त्या ।
प्रापत्सुरगणपूजां वसुधारा चास्य निपपात ॥ २० ॥

निष्क्रम्याऽभयघोषः सह पुत्राभ्यामनन्तगुरुपार्श्वे ।
जिनकारणानि षोडश सम्भावयित्वाऽच्युते जज्ञे ॥ २१ ॥

हेमाङ्गदस्य राज्ञो जातश्च्युत्वेह मेघमालिन्याम् ।
सम्प्रति घनरथ इति वां पिता नृपः पुण्डरीकिण्याम् ॥२२॥

यौ विजयजयन्तौ तौ युवामिह हि चन्द्रतिलकदिवितिलकौ ।
इत्युक्ते स्नेहेन तु द्रष्टुं युष्मानिहायातौ ॥ २३ ॥

कुक्कुटयुद्धे शक्तान्दृष्ट्वा युष्मान् खगौ खगौ जातौ ।
इति गदितं श्रुत्वा तौ दर्शयतः स्म स्वकं रूपम् ॥ २४ ॥

घनरथमेघरथाभ्यां नमः प्रकृत्य स्वकं पुरं गत्वा ।
गोवर्धनस्य पार्श्वे निष्क्रान्तौ निर्वृतौ चान्ते ॥ २५ ॥

श्रुत्वा विमुक्तवैरौ प्रत्याख्यानं प्रगृह्य मेघरथात् ।
मृत्वा शिखिनौ जातौ भूतरमणकानने भूतौ ॥ २६ ॥

नाम्ना च ताम्रचूलः सुवर्णचूलश्च विविधरूपधरौ ।
ऊढ्वाम्बरे कुमारं तावाटयेतां मनुजलोकम् ॥ २७ ॥

सुरबोधनाद् घनरथो बुध्वा राज्येऽभिषिच्य मेघरथम् ।
इतरं च यौवराज्ये निष्क्रम्य प्रापदार्हन्त्यम् ॥ २८ ॥

रही और पृथिवीतिलकाके द्वारा किये गये अपमानसे विरक्त हो सुमति नामक आर्यिका के पास धर्मोपदेश सुनकर दीक्षित हो गई ॥ १८-१९ ॥

किसी एक दिन राजाने दमवर मुनिको अति भक्तिसे दान दिया। इससे देवोंने उसकी पूजा की तथा पञ्चाश्चर्य हुए। इसके बाद अभयघोष अपने दोनों पुत्रोंके साथ अनन्तसेन मुनिराजके पास दीक्षित हो गया और सोलह कारण भावनाओंका आराधना कर अच्युत स्वर्गमे देव हुआ। वहाँसे च्युत हो वह तुम दोनोंका पूर्वजन्मका पिता हेमाङ्गद राजाकी रानी मेघमालिनीसे घनरथ नामका यह पुत्र हुआ है जो पुण्डरीकणी नगरीका राजा है। जो विजय तथा जयन्तके जीव थे वे तुम दोनों यहाँ चन्द्रतिलक और दिवितिलक नामके विद्याधर हुए हो। इस प्रकार मुनिराज द्वारा कही गई कथा सुनकर स्नेहवश वे दोनो विद्याधर आप सबको देखने यहाँ आये हैं। मुर्गोंके युद्ध देखनेमें अनुरक्त आप सबको देख इन विद्याधरोंने पक्षीका रूप धारण कर लिया है। इस प्रकार मेघरथसे सब समाचार सुनकर उन दोनोंने अपना असली रूप प्रकट किया ॥ २०-२४ ॥ और घनरथ तथा मेघरथको नमस्कार कर अपने नगरमे जाकर गोवर्धन मुनिके पास दीक्षा ले अन्तमें निर्वाणको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥

उन दोनों मुर्गोंने भी मेघरथसे अपने पूर्वभवोंको सुनकर वैर-भाव त्याग दिया और प्रत्याख्यान पूर्वक मरकर भूतरसण वनमे ताम्रचूल और सुवर्णचूल नामके अनेक रूपधारी भूत जातिके देव हुए तथा मेघरथ कुमारको विमानमें बिठलाकर मनुष्य लोकका पर्यटन कराया ॥ २६-२७ ॥ कुछ काल बाद लौकान्तिक देवोंसे सम्बोधित हो घनरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र मेघरथको राज्य पर अभिषिक्त कर तथा दूसरे पुत्रको युवराज पद दे दीक्षित हो अर्हन्त-पद पाया ॥ २८ ॥

देवरमणे निषण्णं शिलातलेऽशोकपादपस्याधः ।
पप्रच्छ प्रियमित्रा दृष्ट्वा सहसा शिलाकम्पम् ॥ २९ ॥

विद्याधरो नु देवः क एष इति चोदितो नृपोऽवोचत् ।
विद्याधरोऽलंकायामुभयश्रेणीनामयं राजा ॥ ३० ॥

नाम्ना सिंहरथोऽसौ सविमानो मदनवेगया सहितः ।
अर्हन्तममितवाहनमिष्ट्वागच्छन्प्रतिहत इति ॥ ३१ ॥

मामवलोक्य क्रुद्ध्वा शिलां समुत्क्षिप्तवान्मया सार्धम् ।
अभिभूतो हस्तेन व्यरोदीद्विरसस्वरेणोच्चैः ॥ ३२ ॥

शरणागताऽस्य भार्या सर्वे विद्याधराश्च मामधुना ।
इत्युक्ते प्रियमित्राऽपृच्छत्पूर्वं भवं तस्य ॥ ३३ ॥

पुष्करभारतवास्ये शङ्खपुरे राजगुप्तको नृपतिः ।
भार्याऽस्य शङ्खिकाऽसीच्छङ्खगिरौ सर्वगुप्तमुने ॥ ३४ ॥

द्वात्रिंशत्कल्याणं श्रुत्वा समुपोष्य धृतिवराय ददौ ।
दानं च प्राव्राजीत्समाधिगुप्तस्य पार्श्वेऽसौ ॥ ३५ ॥

आचाम्लवर्धमान समुपोष्याराध्य वेणुवने ।
दशसागरोपमायुर्देवोऽभूद् ब्रह्मलोकेऽन्त. ॥ ३६ ॥

इह चानिलवेगायां जातो विद्युद्रथस्य पुत्रोऽयम् ।
या तत्र शङ्खिकाऽऽसीत्सेय भार्या मदनवेगा ॥ ३७ ॥

इत्युक्ते मेघरथे प्रपूज्य कनकतिलकाय दत्त्वा च ।
स्वपुरं खचरैर्बहुभिर्घनरथपार्श्वे प्रवव्राज ॥ ३८ ॥

एक समय मेघरथ देवरमण उद्यानमें अशोक वृक्षके नीचे एक शिला पर बैठे थे। वह शिला अकस्मात् हिलने लगी तब प्रियमित्रा नामकी रानी यह देख पूछने लगी॥ २९॥ कि यह कौन है विद्याधर है या देव है? रानीके इस प्रकार पूछने पर राजाने कहा कि यह दोनों श्रेणियोंका राजा विद्याधर है और अलकापुरीमे रहता है और इसका नाम सिंहरथ है। यह अपनी पत्नी मदनवेगाके साथ अमितवाहन तीर्थंकरकी वन्दना कर विमानसे लौटते समय प्रतिरुद्धगति हो गया॥३०-३१॥ तदनन्तर मुझे देखकर क्रोधित हो मेरे साथ इस शिलाको उठानेका प्रयत्न करने लगा। तब मेरे हाथसे अभिभूत हो वह करुणा भरे ऊँचे स्वरसे रोने लगा। अब इसे छुडानेके लिए इसकी स्त्री और ये सब विद्याधर मेरी शरणमें आये हैं। मेघरथके ऐसा कहने पर प्रियमित्राने पूर्वभवोंको पूछा॥३२-३३॥ राजाने कहा कि पुष्करार्ध द्वीपके भरत-क्षेत्रमे शङ्खपुर नामका नगर है। वहाँ राजगुप्त नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानीका नाम शङ्खिका था। एक दिन वे दोनो शङ्खगिरि पर्वत पर सर्वगुप्त मुनिकी वन्दना करनेके लिए गये और वहाँ जिनेन्द्रगुण संपत्ति (द्वात्रिंशत्कल्याण) व्रतको सुना और उसका पालन कर एक समय धृतिषेण नामके मुनिको आहार दान दिया। फिर समाधिगुप्त मुनिके समीप जिन दीक्षा ले ली, तथा आचाम्ल-वर्धन तपका आराधन कर वेणुवनमे समाधिपूर्वक मरण कर ब्रह्म-लोक स्वर्गमें दश सागरकी आयुवाला देव हुआ। फिर वहाँसे च्युत हो रानी अनिलवेगा और राजा विद्युद्रथका यह पुत्र हुआ है। पूर्वभवमे जो इसकी शङ्खिका नामकी पत्नी थी वह यह मदन-वेगा हुई है॥ ३४-३७॥ इस प्रकार मेघरथके कहने पर उस विद्याधरने मेघरथकी पूजा की और घर जाकर अपने पुत्र कनक-तिलकको राज्य दे अनेक विद्याधरोंके साथ घनरथ तीर्थंकरके पास दीक्षित हो गया॥ ३८॥

मेघरथः कौमुधासुश्चैराघोप्य सर्वमाहूतिम् ।
कुर्वन् जिनेन्द्रपूजामष्टमभक्तोपितस्तुष्टया ॥ ३९ ॥

गृहमण्डपे न्यर्षादत्कथयन्धर्मं स सर्वराजेभ्यः ।
पारावतो नरेन्द्रं तत्समये शरणमागच्छत् ॥ ४० ॥

माभैषीरिति राजा प्रददावभयं भयाऽभिभूताय ।
आहारार्थी श्येनो मार्गेणागत्य नृपमवदत् ॥ ४१ ॥

एष ममाहारोऽहं बुभुक्षितः पक्षिणं विमुञ्चेति ।
श्रुत्वा श्येनस्य वचो बभाग चेत्थं दृढरथोऽपि ॥ ४२ ॥

एष पतत्री ब्रूते चित्र मे मनसि वर्तते नितराम् ।
पूज्य ब्रूहि ममेदं वृत्तान्तं पक्षिणोरनयोः ॥ ४३ ॥

मेघरथ उवाचेत्थ जम्बूद्वीपस्य चोत्तरे वर्षे ।
सागरसेनो भार्या ह्यमितमती पद्मिनीखेटे ॥ ४४ ॥

धनमित्रनन्दिषेणौ तत्पुत्रौ वणिजामृण कृत्वा ।
नागपुरभट्टिमित्रस्य करात्संगृह्य रत्नानि ॥ ४५ ॥

शङ्खनदीतीरान्ते रत्ननिमित्तं प्रकृत्य कलहं तौ ।
हृदपतितौ मृत्वेमौ मालोद्याने खगौ जातौ ॥ ४६ ॥

भवबद्धक्रोधवशादेतस्य कपोतपत्रिणः पृष्ठे ।
आधावन्त गृध्र दृष्ट्वाऽस्मिन्नाविशत्सुरः कश्चित् ॥ ४७ ॥

एष सुरः प्रागासीद्धेमरथो नाम संजयन्तपतिः ।
दमतारियुद्धनिहतो त्वया परिभ्रम्य संसारे ॥ ४८ ॥

अष्टापदपार्श्वे निर्वृतितीरे काश्यपाश्रमे रम्ये ।
सोमस्य श्रीदत्ता तत्पुत्रश्चन्द्रनामाऽभूत् ॥ ४९ ॥

एक समय अष्टम भक्त उपवास पूर्वक बड़ी भक्तिसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करके मेघरथ राजा चाँदनी रातमें सबको आमन्त्रित कर गृहमण्डपमें सभी राजाओंको धर्मका उपदेश देते हुए बैठे थे कि उसी समय एक कबूतर राजाकी शरणमें आया। तब राजाने भयभीत उसे तुम डरो मत कहकर अभयदान दिया। उसका पीछा करते हुए आहारका इच्छुक एक बाज पक्षी आकर राजासे बोला कि—यह मेरा आहार है, मैं भूखा हूँ, इस पक्षीको छोड़ दीजिये। बाजके इन वचनोंको सुनकर दृढ़रथ बोला कि—हे पूज्य! यह बाज पक्षी बोलता है इससे मेरे मनमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है, कृपया इन दोनो पक्षियोके पूर्व वृत्तान्त मुझसे कहिये॥ ३९-४३॥

तब मेघरथने कहा कि इसी जम्बूद्वीपके ऐरावत क्षेत्रमें पद्मिनीखेट नामका एक नगर है। उसमें सागरसेन नामका वैश्य और उसकी पत्नी अमितमती रहते थे। उनके धनमित्र और नन्दिषेण नामके दो वैश्य पुत्र थे। एक समय वे ऋण लेकर व्यापार करने निकले और नागपुरनिवासी भद्रिमित्रके पाससे रत्नोंको लेकर शङ्खनदीके किनारे उन्हीं रत्नोंके निमित्त झगड़ने लगे और एक तालाबमें गिरकर मर गये। मरकर वे दोनों मालोद्यानमें ये पक्षी हुए॥ ४४-४६॥

पूर्वभवमें बाँधे गये क्रोधके कारण इस कबूतरका पीछा करते हुए गृद्धको देखकर कोई एक देव इसके शरीरमें प्रवेश कर गया॥ ४७॥ मेघरथने उसके सम्बन्धमें बतलाया कि यह देव पहले संजयन्त नगरीमें हेमरथ नामका राजा था। तूने इसे दमितारिके साथ युद्ध करते हुए मारा था। पुनः वह संसारमें परिभ्रमण करता हुआ कैलाश पर्वतके पास निवृत्ति नदीके किनारे स्थित मनोहर काश्यपाश्रममें तपस्वी सोम और उसकी पत्नी श्रीदत्तासे चन्द्र

बालतपः कृत्वोग्रं जातो यक्षः सुरूप इति नाम्ना ।
भुवि मेघरथाय नमोऽस्तु दानशूराय राज्ञ इति ॥ ५० ॥

शक्रोक्तं श्रुत्वाऽयं सह शकुनिभ्यामिहागतोऽमर्षात् ।
स्यात्फलविशेषकं च तद्दानं दातृपात्रदेयविशेषात् ॥ ५१ ॥

तत्र भवेद्भूतदयायुक्तो दाता भुवि वधादिविरतः ।
पात्रं दायकपाता सौख्योपायो भवेद्देयम् ॥ ५२ ॥

तस्मात्पललाशी गृध्रोऽयं नैव दानयोग्यः स्यात् ।
इत्युक्त्वा मेघरथं प्रपूज्य यक्षो गतः स्वौकः ॥ ५३ ॥

शकुनावपि मेघरथात्प्रत्याख्यानं प्रगृह्य कालगतौ ।
भूत्वा भवने देवौ नुनुवतुरागत्य मेघरथम् ॥ ५४ ॥

दमवरेशिन मासक्षपकं प्रतिलभ्य पारणं समये ।
प्रोषधयुक्तो राजा पञ्चविधां प्राप सुरपूजाम् ॥ ५५ ॥

अथ कृत्वाष्टौ दिवसान् जिनपूजामष्टमेन भक्तेन ।
नृपतिं वसन्तमासे चैत्ये प्रतिमां स्थितं वीक्ष्य ॥ ५६ ॥

ऐशानेन्द्रोऽवधिना नमः प्रचक्रे कृताञ्जलिस्तस्मै ।
अरजा विरजा चोभे देव्यौ पप्रच्छतुः सुरपम् ॥ ५७ ॥

कं त्वं प्रणमसि देवेत्युक्ते प्रोचे भविष्यदर्हन्तम् ।
त्रिचरमतनुमुपसर्गसहममुं प्रणमामि मेघरथम् ॥ ५८ ॥

नामका पुत्र हुआ ॥ ४८-४६ ॥ वहाँ उसने उग्र बालतप कर मरण किया और सुरूप नामका यक्ष हुआ। एक समय इन्द्रने अपनी सभामे कहा कि दाताओमे अग्रणी-मेघरथ नामके राजाको नमस्कार है ॥ ५० ॥

इन्द्रकी यह बात सुनकर यह देव ईर्षाके कारण दोनो पक्षियोंके साथ यहाँ आया है। इस प्रसङ्गमे मैं दानादिका लक्षण कहता हू ध्यान पूर्वक सुनो—दाता पात्र और देय पदार्थकी विशेषतासे दान फलमे भी विशेषता होती है। लोकमें हिंसा आदि दोषोंसे विरत और सब प्राणियों पर दयाबुद्धि रखनेवाला दाता कहलाता है। दाताकी रक्षा करनेवाला पात्र कहलाता है। तथा दाता और पात्र दोनोंके सुखका उपायभूत पदार्थ देय कहलाता है ॥५१-५२॥

यहाँ यह गृद्ध मासका अभिलाषी है अतः यह दान योग्य नहीं है। राजाके ऐसा कहने पर वह यक्ष मेघरथकी पूजा कर अपने स्थान चला गया। वे दोनो पक्षी भी मेघरथसे प्रत्याख्यान ग्रहण कर और क्रमसे मरकर भवनवासी देव हुए और वहाँसे आकर उन दोनोंने मेघरथको नमस्कार किया ॥ ५३-५४ ॥

एक समय एक मासका उपवास किये हुए दमवर नामके मुनि पारणा करनेके लिए मेघरथके घर आये। प्रोषध उपवास वाले उस राजाने उन्हें योग्य समयमें विधिपूर्वक दान दिया इससे उसके यहाँ पञ्चाश्चर्य हुए तथा देवताओने उसकी पूजा की ॥ ५५ ॥

एक समय वसन्तके महीनेमे अष्टोपवासके साथ आष्टाह्निक पूजा करके प्रतिमायोगसे चैत्यालयमे बैठे हुए राजाको अवधि-ज्ञानसे देखकर ऐशान इन्द्रने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। यह देख अरजा और विरजा नामकी दो देवियोने इन्द्रसे पूछा कि हे स्वामिन्, आप किसे प्रणाम कर रहे हो। तब इन्द्रने कहा कि मैं आगामी तीर्थंकर त्रिचरमशरीरी एवं शरीरसे मोह रहित तथा

अतिरूपा च सुरूपा श्रुत्वा तस्माद्विचित्रमुपसर्गम् ।
कृत्वाऽकम्पं दृष्ट्वा प्रपूज्य ययतुः स्वकं लोकम् ॥ ५९ ॥

मज्जन्तीम्प्रियमित्रामुपतस्थतुरिभ्यबालिके देवीम् ।
प्राभृतहस्तेनास्या दिदृक्षुके रूपलावण्यम् ॥ ६० ॥

दृष्ट्वा ते देव्यवदन्मुहूर्तकालं युवां प्रतीक्ष्येथाम् ।
इति सा स्वलङ्कृताङ्गी स्नात्वा चादर्शयत् स्वरूपम् ॥ ६१॥

मज्जनकाले दृष्ट्वा दृष्ट्वा ते पुनरहो अनित्येयम् ।
विग्रहशोभेत्युक्तेप्रियमित्राऽभूच्च विमनस्का ॥ ६२ ॥

आगत्य सुखासीनं तत्समयेऽन्तःपुरे नृपमुपेत्य ।
अप्राक्षीत्प्रियमित्राऽहं किल परिहीणशोभेति ॥ ६३ ॥

ओमित्युवाच राजा प्रोक्तं शक्रेण नाट्यशालायाम् ।
प्रियमित्रायाः सम्प्रति नास्ति समं रूपमिति ॥ ६४ ॥

तच्छ्रुत्वेमे देव्याविभ्यवधूरूपके इहायाते ।
द्रष्टुं त्वामित्युक्ते प्रशंस्य देवीं गते देव्यौ ॥ ६५ ॥

अथ घनरथजिनपार्श्वे प्राव्राजीन्मेघसेनमभिषिच्य ।
राज्ञां सप्तसहस्रैः सार्द्धं सभ्रातृको राजा ॥ ६६ ॥

दर्शनविशुद्धिमूलं त्रैलोक्यक्षोभणोरुपुण्यगुणम् ।
तीर्थंकरनामगोत्रं षोडशवरकारणैरचिनोत् ॥ ६७ ॥

एकादशाङ्गधारी मृगराड्विक्रीडितं तपश्चोग्रम् ।
कृत्वा सनभस्तिलकं पर्वतमारुह्य स दृढरथः ॥ ६८ ॥

उपसर्ग सहनेमे समर्थ इन मेघरथ राजाको नमस्कार कर रहा हूं ॥ ५७–५८ ॥ इन्द्रके मुखसे यह बात सुनकर उसकी परीक्षा करनेके लिए अतिरूपा और सुरूपा नामकी देवियाँ आई । उन्होंने उस पर विचित्र उपसर्ग किये पर वे अडोल और अकम्प ही बने रहे । तब उनकी पूजा कर वे अपने-अपने स्थान पर चली गईं ॥ ५९ ॥

एक समय मेघरथकी रानी प्रियमित्रा स्नान कर रही थी। उसके रूपको देखनेके लिए दो देवियाँ वैश्य, कन्याका रूप बनाकर आईं तथा उसे भेंट भी लाईं । तब प्रियमित्राने उन्हें देखकर कुछ देर ठहरनेको कहा और स्नान कर अलंकार-आभूषणोंसे सुसज्जित हो उसने अपना रूप दिखाया । नहानेके समय रूपको देखकर और फिर बादके रूपको देखकर 'अहो यह शरीरकी शोभा अनित्य है' ऐसा उन देवियोंके कहने पर प्रियमित्रा उदास हो गई । फिर प्रियमित्रा रनवासमें सुखपूर्वक बैठे राजाके पास आकर पूछने लगी कि क्या मैं शोभाहीन हो गई हूं ॥ ६०–६३ ॥

राजाने 'हाँ' ऐसा कहा और बताया कि इन्द्रने अपनी सभामे घोषित किया था कि प्रियमित्राके समान इस समय किसीका रूप नहीं है । यह सुन ये दोनो देवियाँ वैश्य-कन्याका रूप धारण कर यहाँ तुम्हें देखने आई हैं । इस प्रकार राजाके कहने पर वे देवियाँ देवीकी प्रशंसा कर चली गईं ॥ ६४–६५ ॥

कुछ दिनों बाद राजा मेघरथ अपने पुत्र मेघसेनको राज्य देकर अपने छोटे भाई और सात हजार राजाओंके साथ अपने पिता घनरथ तीर्थंकरके पास दीक्षित हो गये । फिर उन्होंने सोलह कारण भावनाओंका चिन्तवन कर त्रैलोक्यमें कम्प पैदा करनेवाले विशेष पुण्य गुणरूप दर्शनविशुद्धि मूलक तीर्थंकर नाम-गोत्रका बन्ध किया । एकादश अङ्गके पाठी वे मुनिराज सिंह-

मासोपवासतपसा प्रापत्सर्वार्थसिद्धिमुरुसौख्यम् ।
यत्रायुःपरिमाणं सागरसंख्यास्त्रयस्त्रिंशत् ॥ ४९ ॥

इति शान्तिनाथचरिते अर्थाख्यानसंग्रहे आर्याबद्धे दामनन्दिनः कृतौ मेघरथकाण्डं नाम पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥



निष्क्रीडित तपको करने लगे। वे अपने भाई दृढरथके साथ नभस्तिलक पर्वत पर आरूढ़ हुए, वहाँ एक मास तक उपवास कर शरीर त्यागा तथा सर्वसुखके निधान सर्वार्थसिद्धि विमानमें गये। वहाँ उन्हें तैंतीस सागरकी आयु मिली॥ ६६-६६॥

इस प्रकार दामनन्दि विरचित आर्याबद्ध शान्तिनाथचरितमें
पञ्चम सर्ग समाप्त हुआ।

षष्ठः सर्गः

इह भारतवास्येऽभूत्कुरुजांगलविषयतिलकभूतस्य ।
हास्तिनपुरस्य राजा विख्यातो विश्वसेन इति ॥ १ ॥

ऐरेति तस्य देवी सा श्रीभिरुपासिताऽन्यदाऽपश्यत् ।
वरशयनीये शयिता स्वप्नानेतान् रजन्यन्ते ॥ २ ॥

गजगोपतिमृगराजं श्र्यभिषेकं पुष्पदामशशिसूर्यान् ।
झषयुगलकलशयुगलं ततः प्रफुल्लं सरश्चैकम् ॥ ३ ॥

सागरमृगराडासनविमानभवनोरुरत्नवह्निं च ।
स्वप्नान् क्रमशः पूर्वं मात्रे सन्दर्श्य मेघरथः ॥ ४ ॥

सर्वेन्द्रासनकम्पं कुर्वन्नवतीर्य गां दिवो देवचरः ।
ऐरावतरूपधरः प्रविवेश मुखेन्दुमैरायाः ॥ ५ ॥ ॥त्रिकम्॥

अथ जिनजननी प्रतिबुध्याऽमरकन्योपगूढशुचिदेहा ।
राज्ञेऽवोचत्स्वप्नान् राजा प्रत्यूचे फलं तेषाम् ॥ ६ ॥

उत्पत्स्यते सुतस्ते हिमवद्गिरिसागरान्तवसुधेशः ।
त्रैलोक्यगुरुगुरुत्वं सम्प्राप्स्यामो वयं चेति ॥ ७ ॥ युग्मम् ॥

अथ काले परिपूर्णे युगपत्त्रैलोक्यकम्पनं कुर्वन् ।
जज्ञे जिनोऽभिपाल्यः प्रयत्नतो देवकन्याभिः ॥ ८॥

स्वासनकम्पैरिन्द्रा विविदुरवधिनाऽवलोक्य जिनजन्म ।
घण्टामृगराड्भेरीशंखनिनादैश्च शेषसुराः ॥ ९ ॥

षष्ठ सर्ग

इसी भारतवर्षमें कुरुजांगल नामका देश है। वहाँ अति शोभायमान एक हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँका राजा विश्वसेन था ॥ १ ॥ उनकी महारानीका नाम ऐरा था। जिसकी श्री इत्यादि देवियाँ सेवा करती थीं। एक समय उत्ताम शय्यासे सोई हुई उस रानीने रात्रिके पिछले प्रहरमें इन स्वप्नोंको देखा ॥ २ ॥ ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह, लक्ष्मीका अभिषेक, पुष्पोंकी माला, चन्द्र, सूर्य, मीनयुगल, दो कलश, कमलोंका सरोवर, समुद्र, सिंहासन, देवविमान, धरणेन्द्र भवन, रत्नराशि और धूमरहित अग्नि। मेघरथके जीवने पहले ही माताको ये सोलह स्वप्न दिखाये। फिर सभी इन्द्रोंके आसनोंको कँपाते हुए देव अवस्थाको प्राप्त उस मेघरथने स्वर्गसे पृथ्वी पर अवतीर्ण हो ऐरावत हाथीका रूप धारणकर माता ऐराके मुखसे गर्भमें प्रवेश किया ऐसा उसे दिखाया ॥३–५॥ अनन्तर जिन माताके जागने पर देव-कन्याओंने उसकी देहको स्नान-अलंकार आदिसे सजाया। फिर उसने राजासे स्वप्न कहे और राजाने उनका फल कहा कि तुम्हें हिमवान् पर्वतसे लेकर लवणसमुद्र तक शासन करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा और हम दोनों उस त्रैलोक्यगुरुके माता पिता पदको पायेंगे ॥ ६–७ ॥ नव मासका समय पूर्ण होनेपर एक साथ तीनों लोकोंको कम्पायमान करते हुए भगवान्‌ने जन्म लिया। इसके पूर्व गर्भकालमें देव-कुमारियाँ जिनका प्रयत्न पूर्वक पालन करती थीं ॥८॥ इन्द्रोंने अपने आसनोंके कम्पायमान होनेसे अवधिज्ञान द्वारा भगवान्‌के जन्मको जाना तथा शेष देवोंने

ज्ञात्वादरकृतभूपाश्चतुर्निकायाः सुराः सदेवीकाः ।
प्रचलत्केतुपताकैर्यानविमानैः खमावृत्य ॥ १० ॥

सम्प्राप्य करिपुरमरं शिरस्कराश्चक्रिरे नमस्कारम् ।
कुरुकुञ्जराय भक्त्या सम्यङ् मातापितृभ्यां च ॥ ११ ॥

सुरमायासुप्ताया मातुः पार्श्वे विकृत्य शिशुमन्यम् ।
इन्द्रमहिषी गृहीत्वा ददौ जिनेन्द्रं महेन्द्राय ॥ १२ ॥

ऐरावतगिरिशिखरे जिनो विरेजेऽत्र जातमात्रोऽपि ।
शिशिरे प्रोद्गतमात्रो रविरिव कनकाद्रिशिखरस्थः ॥ १३ ॥

अथ जिननाथ स्वामिन् जय जय नन्देति देवदेवीनाम् ।
प्रादुर्बभूव शब्दः साञ्जलिमालानमस्कारः ॥ १४ ॥

ऐशानाद्याश्चेन्द्राश्चात्रोरामचामरव्यजनैस्ते ।
भक्त्या वल्गुगुरीशं शशाङ्कहंसार्कसंकाशैः ॥ १५ ॥

भृङ्गारकलशपालिकपात्रिपटलककरण्डकादीनि ।
बभ्रुस्त्रिदशयुवतयो ज्योतींपि निशीव भास्वन्ति ॥ १६ ॥

अथ तूर्याणि विनेदुः प्रक्षुभितमहासमुद्रकल्पानि ।
क्ष्वेडितगीतान् स्फाटितसिंहनिनादान् सुराश्चक्रुः ॥ १७ ॥

एवं परमविभूत्या जिनं प्रगृह्याऽम्बरे गच्छन्तः ।
आपुर्मन्दरशिखरं क्षणेन मध्य त्रिलोकस्य ॥ १८ ॥

ते पाण्डुकामलशिलातले हरिवरासने समुपवेश्य ।
जिनमभिषिञ्चुस्तत्र क्षीरोदधिवारिपूर्णघटैः ॥ १९ ॥

हैमाः कुम्भाम्भोदा इन्द्रानिलपूरणेन गर्जन्तः ।
ववर्षुर्जिनेन्द्रमूर्धनि मेघा इव मेरुगिरिशिखरे ॥ २० ॥

घण्टानाद, सिंहनाद, भेरीनाद तथा शङ्खनादसे भगवान्के जन्मको जाना ॥ ९ ॥ यह जानकर उन सबने सम्मानपूर्वक अपने आभूषण धारण किये और अपनी-अपनी देवाङ्गनाओं सहित चारों निकायोंके देवोंने लहराती हुई पताकाओंसे युक्त विमानोंसे आकाशको ढँक लिया ॥ १० ॥ फिर क्रमशः हस्तिनापुर पहुँचकर उन देवोंने हाथ जोड़ सिर झुकाकर कुरुवंशके तिलक भगवान्को तथा माता पिताको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। फिर इन्द्राणीने माताको मोह-निन्द्रामें सुलाकर उसके पास एक मायामयी शिशु लिटा दिया और भगवान्को ले जाकर अपने पति इन्द्रको सौंप दिया। ऐरावतरूपी गिरिशिखर पर बैठे हुए नवजात वे भगवान् ऐसे मालूम पड़ते थे, मानो शिशिर कालमे उदयाचलकी शिखर पर नव उदित सूर्य ही हो ॥११-१३॥ उस समय 'हे जिननाथ हे स्वामिन्! आपकी जय हो, जय हो, आप ऐश्वर्यशाली हों' इस प्रकार देव और देवियोंके अञ्जलिमाला और नमस्कारसे युक्त शब्द हो रहा था ॥ १४ ॥ ईशानादि स्वर्गोंके इन्द्र, चन्द्रमा, हंस और सूर्यके समान चमकीले उत्तम चामर और व्यजनोंसे भगवान्की भक्ति पूर्वक सेवा कर रहे थे ॥ १५ ॥ देवांगनाएँ रात्रिमे चमकनेवाले ताराओंकी भांति भृंगार, कलश, पालिकपात्रि, पिटारी और करडक आदि अष्ट मंगल द्रव्योंको धारण किये हुए थीं ॥ १६ ॥ वहाँ क्षुब्ध हुए समुद्रकी गर्जनाके समान नगाड़े आदि बाजे बज रहे थे, तथा देवगण सिंहनिनादसे युक्त गीत गा रहे थे ॥ १७ ॥

इस प्रकार महाविभूतिके साथ भगवान्को लेकर वे सब आकाशमार्गसे तीन लोकके मध्य विराजित सुमेरु पर्वतकी शिखर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवानको पाण्डुकशिलाके ऊपर सिंहासन पर बैठाया तथा क्षीरसागरके जलसे भरे कलशोंसे जिन भगवान्का अभिषेक किया ॥ १८-१९ ॥ वे सुवर्ण घटरूपी मेघ, इन्द्र रूपी

सुरदुन्दुभयो नेदुस्तूर्याणि च शारदाभ्रनिनदानि ।
जंघोपुस्तालमधुरं मनोहरं सस्वनुर्वीणाः ॥ २१ ॥

ताण्डवमप्सरसो वै नरीनृताञ्चक्रिरेऽत्र रम्भाद्याः ।
लास्यं सुरेन्द्रदेव्यो जिनगुणयुक्त मनोज्ञं च ॥ २२ ॥

चक्रियन्ते स्मान्याः संगीतकनाटकानि सुरकन्याः ।
वल्गुर्जगुः किंनर्यो नाट्यन्ते स्म भूतगणाः ॥ २३ ॥

चक्रुर्वल्युपहारान्केचिन्निन्युश्च विविधवरपूजाः ।
ददहुर्धूपानन्ये वरीवृपांचक्रिरे वासान् ॥ २४ ॥

जञ्जप्यन्ते स्म परे मन्त्रैः पूतैर्जिनेन्द्रगुणयुक्ताः ।
नानोचितैर्वृत्तै. स्तोप्यायांचक्रिरे केचित् ॥ २५ ॥

आजुघुपुर्जिनपुण्यं तुतुपुर्ददृशुश्च केचिदवितृप्ताः ।
जहसुश्चोच्चै रुचुक्रुशुश्च दृप्ताः सुरकुमाराः ॥ २६ ॥

इन्द्राज्ञया ररक्षुर्नानाऽयुधगदाधारिणश्चण्डाः ।
विघ्नविनायकदेवान्प्रणुदन्तोऽन्यानयोग्यांश्च ॥ २७ ॥

दृष्ट्वाऽन्ये जिनपूजामुपशेमुर्जगृहुरपि च सम्यक्त्वम् ।
नान्यदितोऽस्त्युत्तरमिति दृढसम्यक्त्वा बभूवुश्च ॥ २८ ॥

स्नपयित्वाऽलङ्कारैर्वयोऽनुरूपैर्विभूष्य जिनमिन्द्राः ।
कृत्वा प्रादक्षिण्यं मूर्धाञ्जलयो नुनुवुरित्थम् ॥ २९ ॥

कर्मघनगहननाशन संसारमहासमुद्रनिस्तारिन् ।
धर्मवरतीर्थकारिन्नर्हन्भगवन्नमस्तुभ्यम् ॥ ३० ॥

वायुके द्वारा गर्जते हुए भगवान्के सिर पर बरसते हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानो कि मेरु पर्वत पर ही बादल बरस रहे हों ॥ २० ॥ उसी समय शरद्‌कालीन मेघके समान शब्द करती हुई देव-दुन्दुभियाँ और दूसरे बाजे बजने लगे तथा वीणाएँ तालसहित मधुर और मनोहर शब्द करने लगीं। वहाँ रम्भा आदि अप्सराएँ बार-बार ताण्डव नृत्य करने लगीं तथा इन्द्राणियाँ मनोज्ञ जिनेन्द्र-गुणोंका कीर्तन करती हुई नाच करने लगीं ॥ २१-२२ ॥ अन्य देवांगनाएँ भी सङ्गीत तथा नाटक करने लगीं। किन्नरियाँ भी मनोहर गान कर रहीं थी तथा भूतगण प्रमोदसे नृत्य कर रहे थे ॥ २३ ॥ कोई भगवान्के पास नानाप्रकारके नैवेद्य, उपहार द्रव्य तथा अनेक प्रकारके पूजा द्रव्य भेंटमें ला रहे थे और कोई धूप जला रहे थे। कोई स्थानोंको सजा रहे थे, कोई जिनेन्द्र भगवान्के गुणोंमें लवलीन हो पवित्र मन्त्रोंसे जाप कर रहे थे, तो कोई नाना छन्दोंसे भगवान्की स्तुति कर रहे थे ॥ २४-२५ ॥ कोई जिन पुण्यका जोरोंसे गान कर रहे थे, कोई प्रसन्न हो रहे थे, कोई अतृप्त नेत्रोंसे भगवानको देख रहे थे तो कोई उन्मत्त हो होकर जोर जोरसे हँस रहे थे और चिल्ला रहे थे। उस समय इन्द्रकी आज्ञासे अनेक आयुध और गदाधारी पराक्रमी देवगण विघ्न करनेवाले और दूसरे अयोग्य देवोंको सावधान करते हुए रक्षा कर रहे थे। अन्य देव जिनपूजाको देख शान्त परिणामी हो गये और बहुतोंने सम्यक्त्व धारण कर लिया, और कुछ तो यह जानकर कि इससे बड़ी कोई महान् विभूति नहीं है, सम्यक्त्वमें दृढ़ हो गये ॥ २६-२८ ॥ इस प्रकार इन्द्रोंने स्नान कराकर तथा अवस्थानुकूल अलङ्कारोंसे भगवान्को विभूषित कर प्रदक्षिणा की और हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २९ ॥

हे नाथ ! आप कर्मरूपी घने जङ्गलको नाश करनेवाले हो,

नत्वाऽनीय महर्द्ध्या प्राप्य पुरमरं पुरन्दरस्य करात् ।
शच्यादाय जिनवरं मातृसमीपेऽस्म निक्षिपति॥ ३१ ॥

प्रियपृच्छां पृष्ट्वेन्द्रा देव्यश्चापूजयन् जिनगुरूंश्च ।
क्रीडित्वाऽऽनन्दमतो ययुर्निवासान्सपरिषत्काः ॥ ३२ ॥

आजन्मनोऽर्द्ध कोट्यः सप्त प्रतिदिवसमेव वसुधारा ।
अपतज्जिनगुरुवेश्मनि पूर्वं मासांश्च पञ्चदश ॥ ३३ ॥

त्रैलोक्येश्वरपूज्यं पुत्रं लब्ध्वोत्तमं तुतोषैरा ।
सद्दृष्टिज्ञानयुतं लब्ध्वा कर्म यथा हि भव्य. ॥ ३४ ॥

प्राप्य च जिनजननीत्वं सुरेन्द्रपत्नीभिरभिलषणीयम् ।
मेने स्त्रैणं सफलं दिष्ट्या प्राप्तं मयेदमिति ॥ ३५ ॥

यस्माद् भगवति जाते शान्तिरभूद्भारतस्य वास्यस्य ।
शान्तिरिति नाम चक्रे तस्य सुरेन्द्रैः पितृभ्यां च ॥ ३६ ॥

अवतीर्य दृढरथोऽपि स्वर्गात्तस्यैव विश्वसेनस्य ।
चक्रायुध इति नाम्नाऽजनिष्ट पुत्रो यशस्वत्याः ॥ ३७ ॥

अथ कुरुकुलवरतिलको रमणीयो जनमनोनयनानन्दः ।
ववृधे त्रिज्ञानरवी रविरिव लोके निरस्ततमा. ॥ ३८ ॥

शक्राऽऽज्ञया कुबेरो राजार्हैर्दिव्यरत्नचितभाण्डैः ।
कालर्तुवयोयोग्यैर्योगक्षेमं सदोवाह ॥ ३९ ॥

संसार रूपी महासमुद्रके तारक हो, धर्मरूपी श्रेष्ठ तीर्थके प्रवर्तक हो इसलिए हे भावि अर्हन्त ! तुम्हें नमस्कार है ॥ ३० ॥

इस प्रकार स्तुति कर वे लोग वड़ी ऋद्धिके साथ भगवान्‌को शीघ्र ही नगरमें लाये तथा इन्द्रके हाथसे इन्द्राणीने जिन-बालकको लेकर माताके समीप रख दिया ॥ ३१ ॥

फिर वहाँ जिन भगवान्‌के माता पितासे कुशल-प्रश्नोंको पूछ कर तथा उनकी उत्तम पूजा कर इन्द्र और देवियोंने आनन्द नामका नाटक किया और इसके वाद अपने परिवारों सहित अपने-अपने निवास-स्थानोको लौट गये ॥ ३२ ॥ भगवान्‌के माता-पिताके प्रांगणमें प्रतिदिन जन्मके पहिले १५ माहसे ही साढ़े तीन करोड़ रत्न बरसने लगे थे ॥ ३३ ॥ माता ऐरा तीन लोकमें पूज्य पुत्रको पा इतनी सन्तुष्ट हुई जैसे भव्य लोग सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित सम्यक्‌चारित्रको प्राप्त कर सन्तुष्ट होते हैं। वह विचारने लगी कि ॥ ३४ ॥ इन्द्राणियोंके द्वारा अभिलपणीय भगवान्‌के जिस मातृपदको पाकर स्त्री अपने जन्मको सफल मानती है वह मातृपद मैंने आज बड़े भाग्यसे प्राप्त किया है ॥ ३५ ॥ चूँकि भगवान्‌के उत्पन्न होनेसे इस भारतवर्षमें शान्ति हो गई थी इसलिए इन्द्र और माता-पिताने मिलकर उस बालकका शान्ति यह नाम रखा ॥ ३६ ॥ दृढरथका जीव भी स्वर्गसे उतर कर उन्हीं महाराज विश्वसेनकी यशस्वती देवीसे चक्रायुध नामका पुत्र हुआ ॥ ३७ ॥ कुरुकुलके तिलक, सुन्दर और मनुष्योंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले वे भगवान् कभी अस्तको प्राप्त न होनेवाले तीन ज्ञान रूपी सूर्यको धारण किये हुए ऐसे बढ़ने लगे जैसे लोकमे सूर्य बढ़ता है ॥ ३८ ॥ इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर भगवान्‌के लिए ऋतुकाल और अवस्थाके अनुरूप राजाओंके योग्य दिव्य आभूपण आदिसे उनका योग-क्षेम करने लगे ॥ ३९ ॥

बाल्यमतीत्य भुवि बभौ क्रमाज्जिनः षोडशीं समां प्राप्य ।
खे शारदीमिव शशिः प्राप्य कलां षोडशीममलाम् ॥ ४० ॥

व्यक्ताऽष्टसहस्रेऽष्टव्यञ्जनलक्षणविचित्रता तस्य ।
तनुरकवीत्कनकनिभा चत्वारिंशद्धनुःप्रांशुः ॥ ४१ ॥

वर्षसहस्राण्यगमन् कौमारे पञ्चविंशतिः शान्तेः ।
यौवनसस्यविपाकं बन्धुभिरिव गाहमानस्य ॥ ४२ ॥

राज्याभिषेकमाप्त्वा कालं तावन्तमेव मण्डलीकः ।
चक्रायुधाय च ददौ ततः स्वकं यौवराज्यं च ॥ ४३ ॥

चक्रादीनि च सप्त स्त्रीरत्नादीनि सप्त रत्नानि ।
नवनिधयो गणदेवा उपतस्थुश्च तं शान्तीशम् ॥ ४४ ॥

नृपनृपपुत्रीनाटकजनपदकल्याण्युपाह्निकानां च ।
द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशत्पृथक् पृथग्ययुः सहस्राणि ॥ ४५ ॥

हिमवद्गिरिपर्यन्तांससागरां खेचरोरुनगरचिताम् ।
सामरतिर्यङ्मनुजां बुभोज वसुधामिमामेकः ॥ ४६ ॥

विद्याधरामरनरैरभिषिक्तो राजतां प्राप्य ।
यावत्कुमारकालं तावत्कालं स रेमे च ॥ ४७ ॥

आभरणवस्त्रभोजनकाञ्चनमणिरत्नधान्यजातिश्च ।
अभिनिष्क्रमणात्पूर्वं वर्षमदादीप्सितं जगते ॥ ४८ ॥

अथ मंक्ष्वादर्शगृहे सुखमुपविश्य स्वलङ्कृतस्य प्रभोः ।
निर्वेदबुद्धिरभवत्सहसाऽभिनिवेदितोऽन्यैश्च ॥ ४९ ॥

आहाहं स्वल्पैर्मर्त्यैरत इह भोगोघैरतृप्तवान्दिव्यैः ।
सागरनीरातृप्तं तृणबिन्दुः प्रीणयेत्किमिति ॥ ५० ॥

भगवान्‌की क्रमशः वाल्यावस्था व्यतीत होती गई और वे सोलहवें वर्षमे पहुँच कर ऐसे सुशोभित होने लगे जैसे शरत् कालमे चन्द्रमा अपनी निर्मल सोलह कलाओंसे सुशोभित होता है ॥ ४० ॥ उनके शरीरमें १००८ शुभ व्यञ्जन और लक्षण चिह्न व्यक्त हो गये थे तथा ४० धनुष ऊँचा उनका शरीर सुवर्णके समान सुशोभित होता था। वन्धुओंके साथ यौवन रूपी धान्य-पाकको प्राप्त करनेवाले भगवान् शान्तिके कुमार अवस्थामें २५ हजार वर्ष व्यतीत हुए ॥ ४१-४२ ॥

तव राजा विश्वसेनने भगवान् शान्तिनाथका राज्याभिषेक किया और उसी समय अपने लघुपुत्र चक्रायुधको युवराज पद भी प्रदान किया। उन भगवान् शान्तिको चक्रादि सात अचेतन रत्न और स्त्री आदि सात सचेतन रत्न तथा नवनिधियाँ और गणदेव प्राप्त हुए ॥ ४३-४४ ॥ तथा उन्हे बत्तीस वत्तीस हजार, राजा, राज कन्याएँ, नाटक, देश तथा नगर प्राप्त हुए ॥ ४५ ॥ भगवान्‌ने हिमवान् गिरिसे लेकर समुद्र पर्यन्त देव तिर्यञ्च और मनुष्योंसे भरी हुई तथा अनेक विद्याधरोंके श्रेष्ठ नगरोंसे व्याप्त इस पृथिवीको अकेले ही भोगा। विद्याधर देव और नरेन्द्रोंने मिलकर उनका अभिषेक कर उन्हें चक्रवर्ती पद दिया और उस पदका कुमारकालके वरावर काल तक उन्होंने भोग किया। भगवान्‌ने अपने दीक्षा कल्याणकके पूर्व वर्ष पर्यन्त आभरण, वस्त्र, भोजन, सुवर्ण मणि, रत्न तथा अन्य अभिलषित धन-धान्य जगत्‌के लोगोंके लिए दानमें दिया ॥ ४६-४८ ॥

एक समय भगवान् अलङ्कार पहने हुए शृंगार-गृहमे सुख पूर्वक वैठे थे कि वहाँ उन्हें एकदमसे वैराग्य हो गया। तव दूसरों के पूछने पर वे कहने लगे कि देखो मैं दिव्य भोगोंसे तो तृप्त नहीं हुआ पर इन थोड़ेसे मनुष्यसम्बन्धी भोगोंमे रत हो रहा हूँ।

लौकान्तिकाः क्षणेऽस्मिन्नाजग्मुः क्षीरनिकरसमगौराः ।
बुध्यस्वेति वदन्तः प्रवर्तनाय धर्मतीर्थस्य ॥ ५१ ॥

तैर्बोधितः प्रबुद्धः स्वयम्प्रबुद्धः प्रसन्नतरलेश्यः ।
रजनीकरकरनिकरैर्ह्रदः कुमुद्वान् यथा शरदि ॥ ५२ ॥

युगपत्प्रचेलुरिन्द्रासनानि निष्क्रमणसूचकानि विभोः ।
तैर्विज्ञायावधिनाऽवलोक्य चाज्ञापयामासुः ॥ ५३ ॥

ते ते देवकुमाराः स्वैः स्वैरिन्द्रैर्यथोचिताऽज्ञप्ताः ।
स्वं स्वं विष्टपं मेरोरालोकान्तात्परिदधावुः ॥ ५४ ॥

घण्टाभिः कल्पसुरानबूबुधन् ज्योतिष्कांश्च सिंहरवैः ।
पटहस्फुटनैर्वन्यांश्च शंखरवैश्च तथा भुवनान् ॥ ५५ ॥

श्रुत्वा देवनिकायाश्चतुर्विधां घोषणां सुरेन्द्राणाम् ।
संघर्षहर्षभूता सादरकृतमण्डनाटोपाः ॥ ५६ ॥

नानानीकविमाना दानाननेनयानिनोऽमानाः ।
नानानीककचिह्ना मथननिकेताङ्गनासेनाः ॥ ५७ ॥

आगम्य नागसुपुरं यानविमानैः स्थिताः खमापूर्य ।
भास्वत्किरीटमणिसंकटैस्तु पूर्णैः सुदेवगणैः ॥ ५८ ॥

संवर्तकवातहता गन्धोदकवर्षशान्तशुचिदेशा ।
भूमिरभूद्देवगणैः कृतोपहारा विविधपुष्पैः ॥ ५९ ॥

अवतीर्य विमानेभ्यः सलोकपालास्मरक्षपरिपत्काः ।
अलकायमानशोभां स्वर्गमिव पुरं विविशुरिन्द्राः ॥ ६० ॥

क्या सागरके जलसे अतृप्त आदमी एक तिनकेकी- बिन्दु बराबर जलसे तुष्ट हो सकता है ? उसी समय क्षीरसागरके जलके समान गौर वर्णवाले लौकान्तिक देव धर्मतीर्थके प्रवर्तक भगवान् शान्तिनाथको सम्बोधित करनेके लिए वहाँ आये ॥ ४६–५१ ॥ निर्मल लेश्यावाले, स्वयम्बुद्ध होते हुए भी वे भगवान् उन देवोंसे सम्बोधित हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानो शरद् कालमें चन्द्रमाकी किरणोंसे खिले हुए कुमुदोंवाला तालाब ही हो ॥ ५२ ॥ उसी समय भगवानके दीक्षा कल्याणकको सूचित करनेवाले इन्द्रोके आसन कँपे और उन्होंने अपने अवधिज्ञान-द्वारा सब जानकर तथा देखकर देवोंको आज्ञा दी। अपने-अपने इन्द्रोंकी आज्ञासे देवगण मेरुसे लेकर लोकान्त तक जो जहाँ थे वहाँसे अपने-अपने स्थान पर आये ॥ ५३–५४ ॥ कल्पवासी देवोंको घण्टोंसे, ज्योतिषी देवोंको सिंहनादसे, व्यन्तरोंको पटहके शब्दोंसे और भवनवासियोंको शङ्खके शब्दोंसे भगवान्के दीक्षा-कल्याणकका ज्ञान कराया गया ॥ ५५ ॥ इन्द्रोंकी घोषणा सुनकर जो नाना प्रकारकी सेनाओं और विमानोंसे युक्त हैं, जो श्रेष्ठ हाथियोंकी सवारी कर रहे हैं, जो अपरिमित हैं, जो नाना प्रकारके सैनिक चिह्नोंसे विभूषित हैं और जो कामदेवके मन्दिरके समान अङ्गनाओंकी सेनासे युक्त हैं ऐसे चारों प्रकारके देवसमूह सादर जल्दी ही हर्षके साथ आभूषण पहन कर हस्तिनापुर आ गये और देदीप्यमान मुकुट मणिवाले उन देवसमूहोंने आकाशको अपने यान-विमानोंसे व्याप्त कर लिया। उस जगहकी भूमि संवर्तक नामक वायु द्वारा परिशोधित की गई तथा गन्धोदककी वर्षासे शान्त और पवित्र की गई और देवसमूहने नाना प्रकारके पुष्पोंसे उसे सजाया ॥ ५६–५६ ॥ इन्द्रगण अपने-अपने दिग्पाल, आत्मरक्ष और परिषत्क देवों सहित विमानोंसे उतरे और अलकापुरीके समान शोभा धारण करनेवाली

अभिषिच्य सुतं ज्येष्ठं राज्ये नारायणं नृपसहस्रैः ।
रत्नावतंसिकायां परिवेष्टितं च सुखासीनम् ॥ ६१ ॥

दृष्ट्वेन्द्रा राजेन्द्रं मूर्धाञ्जलयः प्रणम्य विज्ञाप्य ।
अभिषेकमण्डपं ते दिव्यं राजाजिरे चक्रुः ॥ ६२ ॥ युग्मम् ॥

क्षीरोदसारोदकपूर्णाष्टसहस्रभर्ममयकुम्भैः ।
अभिषिच्य विभूत्याऽतोऽपि नटनाटकतोटकाटोपैः ॥ ६३ ॥

गोक्षीरफेनधवले निवास्य वरवाससी अनुलेप्य ।
गोशीर्षचन्दनाद्यैः सन्तानकमाल्यमवलम्ब्य ॥ ६४ ॥

इन्द्रैस्तिरीटकुण्डलैर्वरहाराद्यैर्विभूषणैर्भगवान् ।
सिंहासने सभायां प्रणूयमानः सुखनिषण्णः ॥ ६५ ॥

वैश्रवणोऽपि च शिबिकां मितातिशयदर्शनीयशुभशोभाम् ।
सर्वार्थसिद्धिसंज्ञां कृत्वोपस्थापयामास ॥ ६६ ॥

तपनीयवेदिका सा प्रदीप्तकाञ्चनविचित्रितस्तम्भा ।
रजतमयविमलजगती प्रवालमणितोरणोपेता ॥ ६७ ॥

जाम्बूनदमयभित्तिर्वैडूर्यमयान्धकारिका रम्या ।
मरकतशस्यकर्मणि दीप्तपद्मरागोद्धतद्वारा ॥ ६८ ॥

चामीकरनिकराग्रे नानामणिबद्धकृतकपोताली ।
कटकायमानसंकटहाटककुट्टीतटप्रकटा ॥ ६९ ॥

स्फटिकाङ्काञ्जुनबद्धदुग्धफेननिभपञ्चकूटचिता ।
मणिमण्डितदण्डकोपरि पूरितवरवैजयन्तीका ॥ ७० ॥

करिकरभशरभचामरनरतुरगरुरुमकरहरिणरूपचिता ।
अमलकमलहेन्तालतिलकतलतालवकुलाक्ता ॥ ७१ ॥

उस नगरीमे मानो स्वर्गमें ही प्रवेश कर रहे हो, इस प्रकार प्रविष्ट हुए ॥ ६० ॥

उस समय अपने ज्येष्ठ पुत्र नारायणका राज्याभिषेक कर हजारों राजाओंसे घिरे हुए तथा रत्नसिहासन पर सुखपूर्वक वैठे हुए उन चक्रवर्ती भगवान् शान्तिको देखकर देवेन्द्रोने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सूचना देकर राजाके आंगणमें दिव्य अभिषेक-मण्डप तैयार किया ॥ ६१-६२ ॥ क्षीरसागरके जलसे भरे हुए एक हजार आठ सोनेके कलशोंसे इन्द्रोंने अनेक नृत्य गीत वादित्र आदिके साथ विभूतिसे भगवान्का अभिषेक किया । फिर गोशीर्ष चन्दन आदिसे लेप कर उन्हे गायके दूधके फेनके समान दो धवल वस्त्र पहनाये और कल्पवृक्षकी मालाएँ पहनाईं तथा मनोहर मुकुट, दो कुण्डल, श्रेष्ठ हार आदि आभूषणोंसे इन्द्रोंने भगवान्को सजाया । इसके वाद इन्द्रोसे स्तुत वे भगवान् सभा वीच सिहासन पर सुखपूर्वक वैठे ॥ ६३-६५ ॥ इधर कुवेरने एक अत्यन्त दर्शनीय सुन्दर शोभावाली सर्वार्थसिद्धि नामकी पालकी वनाकर उपस्थित की ॥ ६६ ॥ उस पालकीकी वेदी सोनेकी थी, उसके खम्भे तपाये गये सोनेके वने थे, उसका नीचेका फर्श चाँदीका वना था, उसके तोरण मूँगा और मणियोके वने थे। उसकी भित्तियाँ सोनेकी थीं और वीच-वीचमे वैडूर्य मणिसे खचित थीं। उसके दरवाजे शस्यके समान मरकत मणियोंके वीच चमकते हुए पद्मराग मणियोंसे वनाये गये थे जिसके स्वर्णसे वने हुए कंगूरोंमे नाना मणियोंसे खचित कपोताली वनी थी। तथा जिनका तट भाग प्रकट रूपसे कङ्कणोके समान स्वर्णकलशोंसे व्याप्त था ॥ ६७-६९ ॥ उस पालकीके स्फटिकसे खचित चाँदीके वने अतएव सफेद दूधके समान पाँच कूटोंपर मणियोके दण्डपर एक एक पताका लगी हुई थी । ७०॥ उसकी दीवालों पर हाथी, उष्ट्र, अष्टापद,

श्वसतीव रूपनिकरैः कथयितुं तमेव साभिनयचोगैः ।
स्मयत इव सिन्धुवारककुन्दमुकुलमल्लिकामाल्यैः ॥७२॥

स्फुरतीव चञ्चलाञ्चितमणिकाञ्चनचुञ्चुदामचञ्चकिता ।
क्वणतीव मणिसुजालैः पङ्कजजालैः प्रहसतीव ॥ ७३ ॥

घण्टाघण्टिकजालैर्मनोहरैः किमपि जल्पतीव ।
वीक्षितेव सा सर्वानुत्पलजालाक्षिमालाभिः ॥ ७४ ॥

लोहितमणिगणजालैः सत्तडित्सन्ध्येव हैमनिशाऽऽसीत् ।
लम्बितमुक्ताजालैः किं क्षीरं वर्षतीव भुवे ॥ ७५ ॥

कम्पितविलसत्कदली लताभिरानृत्यतीव गगनतले ।
हंसोत्क्षेभमृगेशैरूढोत्पततीव गगनतलम् ॥ ७६ ॥

सा स्तम्भराजसंश्रितसपादपीठासनोज्ज्वलितमध्या ।
स्वर्गावतीर्णकेव च तस्थौ राजाङ्गणे भान्ती ॥ ७७ ॥

वैश्रवणोक्तः शक्रो विज्ञापयति स्म नाथ वेलेति ।
विज्ञापितोऽथ भगवानापृच्छ्यान्तःपुरमुदारम् ॥ ७८ ॥

निधिरत्नपालदेवान् पुत्रानापृच्छ्य सर्वबन्धूंश्च ।
अन्योऽन्यमाप्रहृत्य कुलसन्ततिकृत्यमुक्त्वा च ॥ ७९ ॥

इन्द्रैर्निपेव्यमाणः सितातपत्रोरुचामराग्रकरैः ।
द्वात्रिंशत्पदमात्रं विचक्रमे भूतले पद्भ्याम् ॥ ८० ॥

चमरीमृग, मनुष्य,अश्व,रुरु, मकर,हरिण आदि जीवोंके तथा कमल हेन्ताल, तिलक, तलताल, वकुल आदि पुष्पोंके चित्र थे ॥ ७१ ॥

वह अभिनय सहित अपने रूप-समूहोंसे भगवान्‌को सम्बोधित करनेके लिए ही मानो श्वास ले रही हो,सिन्दुवार , कुन्द, मुकुल, मल्लिका आदिकी मालाओंसे मानो वह हँस रही हो, तथा हिलती हुई मणि और सोनेकी मालाओंसे वह मानो हर्षित हो रही हो ॥ ७२ ॥ मणियोंके जालसे मानो शब्द कर रही हो तथा कमल-समूहोंसे ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानो वह हँस रही हो ॥ ७३ ॥ उसमें लगे हुए मनोहर घण्टे-घण्टिओंसे वह ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानो तेजीसे मंत्रोंको वार वार जप रही हो। कमलोंके समूह रूपी आँखोंसे वह मानो सबको देख-सी रही हो। उसमें लगे लाल मणियोंके समूहसे वह ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे हेमन्तकी रात्रि बिजली सहित सन्ध्यासे सुशोभित होती है तथा लटकती हुई मुक्तामालाओंसे वह ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानो पृथिवी तलपर दूधकी वर्षा कर रही हो ॥ ७४–७५ ॥ वह पालकी शोभायमान कदलीके समान काँपती हुई मालूम पड़ती थी तथा लताओंसे ऐसी मालूम पड़ती थी मानो आकाशमें नाच ही रही हो तथा हंस, वृषभ, हाथी और सिंहके द्वारा वहन की गई वह ऐसी मालूम पड़ती थी मानो वह आकाशमें उड़ना ही चाह रही हो ॥७६॥ स्तम्भोंसे सुशोभित उस पालकीका बीचका भाग पादासन और सिंहासनसे सुशोभित था वह राजांगणमें रखी हुई ऐसी मालूम पड़ती थी मानो स्वर्गसे उतरकर यहाँ आई हो ॥ ७७ ॥

उस समय कुवेरने इन्द्रको उस पालकीकी सूचना दी। इन्द्रने भगवान्‌से निवेदन किया कि, "हे नाथ ! अब प्रस्थानका समय है" तब भगवान् अपने अन्तःपुर, पुत्रों, बन्धुओं और चौदह रत्न

आलोकघोषणाभिश्चाशीर्वादैः प्रणूयमानोऽसौ ।
विभुरारुरोह शिबिकां कन्दरमिव मान्दरं सूर्यः ॥ ८१ ॥

उत्क्षिप्तान्सप्तान्नरराजैर्गिरिराजमिवोरुतरुवनं सुरपैः।
प्रतिगृह्य नरेन्द्रेभ्यः शिबिकामूहुः सुरवरेन्द्राः ॥ ८२ ॥

अथ तूर्याणि जगर्जुः प्रावृषि मेघगर्जनसमानि ।
सम्भिकशङ्खविषाणान् नेदुर्मरुताः सुरकुमाराः ॥ ८३ ॥

उत्कृष्टसिंहनादप्रक्ष्वेलास्फोटवलितोद्रेकान् ।
तत्र च चक्रुर्देवाः प्रक्षुभितसमुद्रनिभघोषान् ॥ ८४ ॥

वीणामृदङ्गपणवाद्यातोद्यैस्ताण्डवं वराप्सरसः ।
अष्टास्वपि दिक्षु तदा शिबिकाया नाटकं नेदुः ॥ ८५ ॥

तस्या अधोऽन्तरिक्षे नरीनृताचक्रिरे वरातोद्यैः ।
चारूदरविलासाढ्या विद्याधर्यः सकिन्नर्यः ॥ ८६ ॥

अपरा वसुन्धरायां नरवध्वः सुरवधूसमा रूपे ।
नृत्यन्ति स्म मनोज्ञं समतालं सर्वतः शिबिकाम् ॥ ८७ ॥

अन्याः सुरवरकन्या भृङ्गारादीनि मङ्गलान्यूढ्वा ।
अष्टपदं चाष्टशतं दिक्ष्वष्टासु स्म गच्छन्ति ॥ ८८ ॥

नारायणोऽपि राजेट् द्वात्रिंशन्नृपसहस्रपरिवारः ।
आरुह्य गजं विजय ध्वजचामरैस्तूच्छ्रितच्छत्रः ॥ ८९ ॥

निधिपालरजपालदेवैश्चतुरङ्गिण्या च सेनया सहितः ।
शिबिकामनुगतोऽभूत् सोऽन्य इवेन्द्रस्त्रयस्त्रिंशः ॥ ९० ॥

तथा निधिरक्षक देवोंसे पूछकर तथा आपसमे मिलकर और कुल-परम्पराके अनुरूप योग्य कार्य कहकर दीक्षाके लिए भूतल-पर ३२ पग चले। इन्द्रगण उनके ऊपर सफेद छत्र लगाये तथा चामर ढोर रहे थे। उस समय लोकान्तव्यापी जयघोष तथा मंगल शब्द हो रहे थे। इसी बीच भगवान्ने पालकीमें ऐसे प्रवेश किया मानो सूर्य मन्दराचलकी गुफामें प्रवेश कर रहा हो ॥ ७८–८१ ॥ उस पालकीको सबसे पहिले राजा लोग प्रसन्न होकर सात पैंड़ तक बगीचेकी ओर ले चले। मानो इन्द्र लोग भगवान्को सुमेरुकी ओर ले जा रहे हों। फिर उनसे इन्द्रोंने लेकर पालकी ढोना प्रारम्भ किया ॥ ८२ ॥ वर्षा कालमे मेघगर्जनाके समान ही वहाँ बाजोंके शब्द सुनाई पड़ने लगे। वायुकुमार देवोंने दुन्दुभि, शंख और शृग बाजे बजाना प्रारंभ किये। अन्य देवोंने सिंहनाद-से सर्वत्र क्षोभ फैलानेवाले, क्षुब्ध समुद्रके समान ध्वनिवाले जयघोष किये ॥ ८३–८४ ॥ पालकीके सब ओर आठों दिशाओंमें देवाङ्गनाओंने वीणा, मृदंग, पणव आदि बाजोंके साथ ताण्डव नृत्य करना शुरू कर दिया। वहाँ अनेक रूप विलासवाली विद्याधरियाँ तथा किन्नरियाँ उत्तम बाजोंके साथ आकाशमें नाच करने लगीं। रूपमे देवागनाओंके समान अन्य नरवधुएँ पृथिवीतलपर एक स्वरसे, पालकीके चारों ओर मनोज्ञ नृत्य करने लगीं ॥८५–८७॥ अन्य देवाङ्गनाएँ आलेपन विभूषण कर आठों दिशाओंमें भृंगार आदि आठ तथा एक सौ आठ मंगल द्रव्योंको लेकर जा रही थीं ॥८८॥

भगवान्का पुत्र नारायण भी विजय हाथीपर चढ़कर छत्र, चामर और ध्वजाओंसे सुशोभित होता हुआ ३२ हजार राजाओंके साथ चला। उसके साथ निधिरक्षक देव थे तथा चतुरगिणी सेना थी। उन सबके साथ पालकी के पीछे-पीछे आकाशमें चलता हुआ वह ऐसा मालूम पड़ता था कि स्वर्गको जानेवाला दूसरा इन्द्र ही हो॥८९–९०॥

कश्चिन्नरेन्द्रवध्वः क्रन्दितविलपितशतानि कुर्वत्यः ।
भगवद्वियोगदु.खादुर.शिरोघातमरुदंश्च ॥ ९१ ॥

शोकेनान्याः पतिताः प्रास्तांशुकभूषणा विगतचेष्टाः ।
आलिखिता इव यत्नान्मणिकुट्टिमभूतले रेजुः ॥ ९२ ॥

हा हा पतिता बाला' पानीयं भामिनि प्रदेहीति ।
चन्दनमुक्तामणिभिः प्रतिगृह्णन्ति स्म ता अन्याः ॥ ९३ ॥

कुब्जे व्युज्झिता ह्याशु शाटिकां चेटिके त्वं ददस्व मे ।
मा त्व हस्तौ नाटय पतितं हि भट्टारिके दाम ॥ ९४ ॥

इत्यादरकृतभूषा नूपुररसनोत्मधुरचरणाः ।
निर्गत्य वरगृहेभ्यो ददृशुस्तामद्भुतविभूतिम् ॥ ९५ ॥

सप्तानीकविमानैर्द्यौर्निचिता भूतलं नृपचमूभिः ।
मध्ये विद्याधरस्य वाहिनीभिरापूरिता आशाः ॥ ९६ ॥

कैलिकिलो गम्भीरो दिवि दुन्दुभिनादमिश्रित' शब्दः ।
हेलया नर्तनमयो मध्ये दयाक्रन्दितविलापः ॥ ९७ ॥

पूर्णेन्दुमण्डलैरिव मण्डितमुद्दण्डपाण्डुरच्छत्रैः ।
रेजे नभोऽतिवरचामरैश्च हंसाकुलमिवाऽत्र ॥ ९८ ॥

सौम्यस्तदा प्रकाशो भास्करतेजोऽभिभूय देवमयः ।
दृष्टिमनोऽङ्गसुखोऽभूदभिनिष्क्रमणे जिनेन्द्रस्य ॥ ९९ ॥

केचिद्दशार्द्धवर्णान् दिवोऽमुचन् पुष्पचूर्णवरवासान् ।
ससरुः केचित्तानेव दिक्षु गगनाङ्गणे नभतः ॥ १०० ॥

भगवान्‌के चले जानेपर उनकी कुछ रानियाँ विविध चीत्कार, विलाप करती हुईं और वियोग दुःखसे छाती एवं शिर कूटती हुईं रोने लगीं। कई तो शोकसे मूच्छित हो गईं और उनके वस्त्र तथा भूषण भी बिखर गये। वे उस समय मणिनिर्मित भूतल पर यत्न पूर्वक चित्रलिखित-के समान सुशोभित हो रही थीं। "अरे अरे, ये बालाएँ मूर्च्छित हो गई हैं। अरी भामिनी, पानी लाओ" ऐसा कहती हुई कितनी ही उनकी चन्दन और मुक्तामणियोंसे मूर्च्छा दूर करनेका प्रयत्न करने लगीं॥ ९१-९३॥

'हे कुब्जे क्या उलझ रही हो। अरी चेटिके, तुम शीघ्र ही मेरी साड़ी दो। अरी भट्टारिके, दोनों हाथ नचाना छोड़ो। देखती नहीं हो कि मेरी करधनी भी गिर गई है॥ ९४॥ इस प्रकार अनेक प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंको लेकर व पहनकर तथा नूपुर व करधनी आदिके मधुर शब्दोंसे झंकृत चरणवाली कुलवधुएँ अपने घरसे निकलकर उस दीक्षाकल्याणककी अद्‌भुत विभूतिको देखने लगीं॥ ९५॥ उस समय सात प्रकारके अनीक जातिके देव-विमानोंसे आकाश व्याप्त हो रहा था तथा भूतल राजाओंकी सेनासे व्याप्त था और मध्य भागमें सब दिशाएँ विद्याधरोंकी सेनाओंसे व्याप्त थीं॥ ९६॥ उस समय आकाशमें देवोंकी कल-कल ध्वनि, दुन्दुभिके शब्दोंसे मिश्रित हो रही थी और बीच बीचमें दया उत्पन्न करनेवाला क्रन्दन और विलाप हो रहा था॥९७॥ ऊपर उठे सफेद छत्रोंसे आकाश ऐसा मालूम पड़ता था मानो अनेक पूर्णचन्द्रोंसे भरा हो और अनेक उत्तम चामरोंसे ऐसा मालूम पड़ता था मानो हंसोंसे व्याप्त हो॥ ९८॥ भगवान्‌के दीक्षाकल्याणक कालमें सूर्यका प्रखर तेज अभिभूत होकर उसका देवमय प्रकाश सौम्य होता हुआ दृष्टि, मन और शरीरके लिए सुखकारी हो गया ॥ ९९॥ जिन्होंने आकाशसे पंचवर्णके फूल, चूर्ण और वस्त्रोंकी

कालागुरुवरधूपानग्निकुमाराः प्रदेहुरतिसुरभीन् ।
उच्छ्रिता श्रीयुतश्च केचिन्नानावर्णा वरपताकाः ॥ १०१ ॥

आघोषन्ति स्म परे ह्यागमहो ईदृशः कुतोऽस्ति ।
कुर्वन्ति स्म महतीं केचित्पुनरुत्तमां पूजान् ॥ १०२ ॥

नानचित्रैर्वृत्तैर्दण्डकबद्धोरुगीतिकाद्यैश्च ।
जिनगुणमणिरमणैस्तुष्टुवुरन्यैः स्तुतिसहस्रै. ॥ १०३ ॥

पटहैर्लटहैर्भटहैरुत्कटमुकुटोरुविकटपटठिठराः ।
भूता नर्त्तनवित्ता इतोऽमुतश्चित्रमानृत्यन् ॥ १०४ ॥

देशे देशे कुहचित्तुम्बुरुनारदवरोरुगन्धर्वाः ।
वीणावच्चवंशैर्दिदिवुः गीतैः सदेवीकाः ॥ १०५ ॥

अन्यत्र गीतवाद्यस्तुतिनाटकतुर्ययोगपरितुष्टाः ।
मुमुचुश्च साधुकारान्योक्तॄन् प्रति पूजयन्तस्तान् ॥ १०६ ॥

एवं प्रसेव्यमानः सुरनरसर्वैः पराद्धिनिर्गत्य ।
प्रापत्स पुरोद्यानं नन्दनमिव सुन्दरमतीन्द्र. ॥ १०७ ॥

तस्यैकदेशभागे सोपानादवततार शिबिकायाः ।
तोष्टूयमान इन्द्रैर्दिव इव पूर्णेन्दुरवनितलम् ॥ १०८ ॥

शक्राज्ञया च तस्थौ युगपच्छब्दो महांस्ततस्तत्र ।
भगवानपि पूर्वमुखः सिद्धेभ्यः पूर्वमभिनम्य ॥ १०९ ॥

कटिसूत्रकटकाङ्गदतिरीटवरहारकुण्डलादीनि ।
त्यक्त्वा च वाससी अपि कृत्वा पल्यङ्कमवनितले ॥ ११० ॥

दोर्भ्यां पञ्चग्राहं लुञ्चित्वा कुञ्चिताञ्चितसुकेशान् ।
देग्वाससौ स दीक्षां राजसहस्रेण जग्राह ॥ १११ ॥

छोड़ा और किन्हींने उन्हें गगनाङ्गणमें यत्र-यत्र बिखेर दिया ॥१००॥ वहाँ अग्निकुमार देवोंने कालागुरु चन्दनका अति सुगंधित धूप जलाना प्रारम्भ किया, तथा कुछ देवोंने शोभायुक्त नाना रंगोंकी पताकाएँ उठा रखी थीं। कुछ लोग जोरदार शब्दोंमे कह रहे थे कि "इससे बड़ा और क्या त्याग हो सकता है" और कोई उत्तम पूजा करते थे ॥ १०१–१०२ ॥ अन्य देवगण नाना चित्रात्मक तथा दण्डक, गीतिका आदि छन्दोंसे तथा अनेक जिन-गुणोंका कीर्तन करनेवाले स्तोत्रोंसे भगवान्‌की स्तुति कर रहे थे ॥ १०३ ॥ विचित्र प्रकारके बाजे हाथमे लेकर, ऊँचे मुकुट और विचित्र नासिकावाले नर्तनमें चतुर भूतगण यहाँ-वहाँ विचित्र नाच कर रहे थे ॥ १०४ ॥

कहीं पर तुम्बरु, नारद और उत्कृष्ट जंघावाले गन्धर्वदेव यहाँ-वहाँ वीणा, बाँसुरी आदि हाथमे लेकर गाते हुए अपनी देवियों के साथ नाचने लगे ॥१०५॥ अन्यत्र गीत, वाद्य, स्तुति, नाटक, इन चारो के योगसे संतुष्ट हुए दूसरे देव उनका सत्कार करते हुए प्रयोक्ताओंके प्रति चारों ओर साधुकार शब्द कहने लगे ॥ १०६ ॥

इस प्रकार देवों और मनुष्योंके द्वारा पूजे गये भगवान् नगरसे निकले, तथा नन्दनवनके समान सहस्राम्र वनमे आकर पहुँचे। वहाँ एक वृक्षके किनारे इन्द्रोंसे प्रार्थित भगवान् पालकीसे सीढ़ियों-द्वारा उतरे मानो कि आकाशसे पूर्ण चन्द्रमा पृथिवीतल पर उतर रहा हो ॥ १०७–१०८ ॥ फिर इन्द्रकी आज्ञासे जयघोषका महान् शब्द हुआ और भगवान् "नमः सिद्धेभ्यः" कहते हुए पूर्वमुख स्थित हुए। वहाँ भगवान्‌ने करधनी, कटक, केयूर, मुकुट, हार और कुण्डलादि तथा वस्त्र भी त्याग दिये तथा पृथिवीपर पर्यंकासन लगाकर बैठ गये ॥ १०९–११० ॥ फिर भगवान्‌ने अपने घुंघराले बालोंको पंचमुष्टिसे उपाटकर हजार राजाओंके

आदाय च जिनकेशानिन्द्रो रत्नमयपटलकेऽभ्यर्च्य ।
भक्त्या नीत्वा त्वरया पञ्चमजलधौ स्म निदधाति ॥ ११२ ॥

षोडशसहस्रगणदेवसेविता राजराजतां त्यक्त्वा ।
निःसङ्ग केवलाङ्गश्चतुर्थके संयमे तस्थौ ॥ ११३ ॥

सविलासहावलीलामनर्गलां स्नेहमोहपुरुषरेखाम् ।
नारीवारीं भित्वा तपोवनमगात्पुरुषहस्ती ॥ ११४ ॥

पुत्रकलत्रस्नेहायसबद्धस्तब्धलुब्धदुरछेद्यम् ।
गृहवासपञ्जरमर भङ्क्त्वा प्रजगाम जिनसिंहः ॥ ११५ ॥

विलसत्सागरवसनां वेलाकाञ्चीकलापमणिमालाम् ।
विजयार्धहारशोभा गङ्गासिन्धूरुरासङ्गाम् ॥ ११६ ॥

पर्वतचारूरुकुचां हिमवद्गिरिकूटदीप्तमुकुटधराम् ।
उद्यानरोमराजि ग्रामाकरपत्तनविभूषाम् ॥ ११७ ॥

प्रमुदितपुरवरवदनां नित्योत्सवपर्वगर्वितसुवाणीम् ।
तत्याजावनिवनितां धीरो वनितामिव सदोषाम् ॥ ११८ ॥

एवं भगवति शान्तावपराह्णे षष्ठभक्तनियमेन ।
चक्रायुधेन सार्द्धं संयमराज्ये स्थिते समुनौ ॥ ११९ ॥

अभिनिष्क्रमणे पूजां कृत्वा नुत्वा जिनं स्तुतिशतैश्च ।
कृत्वा प्रादक्षिण्यं जग्मुर्देवा. स्वलोकेभ्यः ॥ १२० ॥

नारायणोऽपि पितर सवाष्पनयनः प्रवन्द्य समुनिं च ।
पृतनानिधिरजावृतो व्यावृत्य प्राविशत्स्वपुरम् ॥ १२१ ॥

सुरनरपरिपन्मुक्तो मुक्तिसुखस्थो बभौ चतुर्ज्ञानी ।
अभ्रघनविप्रमुक्त. शशाङ्क इव सग्रहो भगवान् ॥ १२२ ॥

साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली। इन्द्रने भगवान्के केशोंको एक रत्नके पिटारेमें रखा और उनकी पूजा की। तदनन्तर भक्तिपूर्वक शीघ्र ही ले जाकर क्षीरसागरमें क्षेप दिया॥ १११-११२॥ भगवान् १६ हजार गण देवताओंसे सेवित उस चक्रवर्ती पदको छोड़कर तथा सब परिग्रह छोड़ चौथे संयममें प्रतिष्ठित हो गये। वे पुरुष-हस्ती, हावभाव लीलामयी, उद्धत तथा स्नेह, मोह और पुरुप रेखावाली, नारीरूपी वारीको भेदनकर तपोपवनमें आ गये॥ ११३-११४॥ वे जिनसिंह पुत्र स्त्री आदि स्नेहरूपी लोहेसे बने हुए निश्चल लोभ-कारक और दुश्छेद्य गृहवासरूपी पिंजरको तोड़कर शीघ्र ही बाहर चले आये॥ ११५॥ उन धीर भगवान्ने शोभायमान सागर रूपी वस्त्रवाली, वेलारूपी मणिमालायुक्त करधनीवाली, विजयार्द्ध पर्वतरूपी हारसे सुशोभित, गंगा सिन्धु रूपी साड़ी पहने हुए, पर्वत रूपी मनोहर कुचोंवाली, हिमवान् पर्वतके कूट रूपी चमकीले मुकुटोंवाली, उद्यान रूपी रोमराजिवाली, ग्राम, आकर और पत्तन रूपी भूपणवाली, हर्पयुक्त नगररूपी मुखवाली तथा निरन्तर होनेवाले उत्सव पर्व आदिरूपी शब्दोंवाली ऐसी पृथिवी रूपी वनिताको सदोप स्त्री के समान छोड़ दिया था॥ ११६-११८॥ इस प्रकार भगवान् शान्तिनाथ दिनके दूसरे भागमें पष्टोपवास ले अपने भाई चक्रायुध तथा अन्य मुनियोंके साथ संयम रूपी राज्यमें स्थित हो गये॥ ११९॥ इस समय देवोंने भगवानके दीक्षाकल्याणककी सैकड़ों स्तुतियोंसे पूजा की तथा नमस्कार प्रदक्षिणा कर अपने-अपने स्थान चले गये॥ १२०॥ भगवान्का पुत्र नारायण भी सजल नेत्र हो, भगवान् और मुनियोंकी वन्दना कर अपनी सेना, निधि और रत्नों सहित अपने नगर वापिस लौट आया॥ १२१॥ चार ज्ञानोंके धारक वे भगवान् देव और मनुष्योंकी भीड़से मुक्त हो, मुक्ति सुखका

संयमराज्यसुकोशं कोष्ठागारं च शासनस्योरु ।
भाण्डागारमतर्क्यं महानसं प्रतिग्रह यच्च ॥ १२३ ॥

यस्मिन् शुद्धे शुद्धो यमसंयमभावनासु भवति यतिः ।
गोचरमार्गणं तत्प्रविवर्त्तयिषुः समुद्यमे ॥ १२४ ॥

शक्तोऽप्यनशनयोगान् सोढुमुरून् धर्मसस्थितये ।
अपरेद्युरमरपूज्यो विचक्रमे मंदरपुराय ॥ १२५ ॥

निचितेभनरतुरङ्ग प्राकाराट्टालकोच्छ्रयणतुङ्गम् ।
उद्गतगोपुरशृङ्गं शरद्घनैः कृतपरिष्वङ्गम् ॥ १२६ ॥

प्रक्षुभितार्णवघोषं चित्रप्रासादकेतुसम्भूषम् ।
रिपुसेनाजयशोष महिमोत्सवनित्यपरितोषम् ॥ १२७ ॥

गजमदसुस्थितरथ्यं कृतबलिपुष्पद्द्विरेफगणपश्यन् ।
पौर तत्सौन्दर्यं कविजनैरवापि यदकथ्यम् ॥ १२८ ॥

तत्प्रविवेश पुरवर सुरार्चितो मुनिसहस्रपरिवारः ।
नागरजनेन भक्त्या स्तूयमानोऽञ्जलिकरेण ॥ १२९ ॥

श्रुत्वा नृपः सुमित्रो जिनागमं सादरोऽथ सकलत्रः ।
तुष्टोऽत्र लब्धपात्रो निरित्य गेहात्कृतपवित्रः ॥ १३० ॥

राजाङ्गणे जिनेन्द्र दृष्ट्वा सयतिं स्थितं नरेन्द्रेन्द्रम् ।
शीलव्रतगुणचन्द्रं खादिव सज्ज्योतिषं चन्द्रम् ॥ १३१ ॥

अनुभव करते हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानो बादलोंसे मुक्त ग्रह नक्षत्र सहित पूर्ण चन्द्र ही विराजमान हो ॥ १२२ ॥ उनका संयमराज्य ही सुकोश था, शासन की श्रेष्ठता ही कोष्ठागार था, कभी नहीं छीजनेवाला भाण्डागार था और प्रतिग्रहवृत्ति ही महानस था ॥ १२३ ॥

जिस मार्गके शुद्ध होने पर यति, यम, संयम और भावनाओंमें शुद्ध होता है उस आहार मार्गको प्रवर्तन करनेमें भगवान्ने उद्योग किया। यद्यपि भगवान् बहुत काल तक अनशन कर सकते थे तो भी धर्म मर्यादा चलानेके लिए देवोंसे पूजनीय वे दो दिन के बाद पारणाके लिए मन्दरपुर नगरकी ओर चल पड़े ॥१२४-१२५॥

वह नगर हाथी, मनुष्य तथा घोड़ोंसे भरा था। वहाँ बड़े ऊँचे परकोटे तथा अट्टालिकाएँ थीं। नगरके प्रधान दरवाजोंके शृंग इतने ऊँचे थे मानो वे शरत्कालीन मेघोंका आलिंगन कर रहे हों ॥ १२६ ॥ वह नगर क्षुब्ध समुद्रके समान शब्दपूर्ण था, तथा अनेक रङ्ग-विरङ्गी महलोंकी पताकाओंसे सुशोभित था, और वह शत्रुसेनाके मदको शोषण करनेवाला तथा अनेक महिमापूर्ण उत्सवोंसे भरा हुआ था। वहाँकी गलियाँ गजमदसे समतल हो गई थीं तथा वहाँके मार्ग पूजाकी सामग्रीसे पुष्ट हुए भौंरोंसे भरे हुए थे, इस तरह वह नगर इतना सुन्दर था कि कवियोंके वर्णनसे भी परे था ॥ १२७-१२८ ॥ उस नगरमें देवोंसे पूज्य उन जिनेन्द्रने एक हजार मुनियोंके साथ प्रवेश किया। नगरवासी समस्त जनताने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया ॥ १२९ ॥ नगरमें भगवान्को आया हुआ सुन वहाँका राजा सुमित्र अपनी पत्नीसहित हाथमें पात्र ले कर और पवित्र व तुष्ट हो घरसे आदर सहित निकला। ॥ १३० ॥ मुनियोंके साथ राजाङ्गणमें खड़े हुए शील, व्रत, और गुणोंमें श्रेष्ठ वे जिनराज

संयमराज्यसुकोशं कोष्ठागारं च शासनस्योरु ।
भाण्डागारमतक्ष्यं महानस प्रतिग्रहं यच्च ॥ १२३ ॥

यस्मिन् शुद्धे शुद्धो यमसयमभावनासु भवति यतिः ।
गोचरमार्गेण तत्प्रविवर्त्तयिषुः समुद्यमे ॥ १२४ ॥

शक्तोऽप्यनशनयोगान् सोढुमुरून् धर्मसस्थितये ।
अपरेद्युरमरपूज्यो विचक्रमे मंदरपुराय ॥ १२५ ॥

निचितेभनरतुरङ्गं प्राकाराट्टालकोच्छ्रयणतुङ्गम् ।
उद्गतगोपुरश्रृङ्गं शरदृघनैः कृतपरिष्वङ्गम् ॥ १२६ ॥

प्रक्षुभितार्णवघोप चित्रप्रासादकेतुसम्भूषम् ।
रिपुसेनाजयशोपं महिमोत्सवनित्यपरितोपम् ॥ १२७ ॥

गजमदसुस्थितरथ्यं कृतवलिपुष्पद्‌द्विरेफगणपथ्यम् ।
पौरं तत्सौन्दर्यं कविजनैरवापि यदकथ्यम् ॥ १२८ ॥

तत्प्रविवेश पुरवरं सुरार्चितो मुनिसहस्रपरिवारः ।
नागरजनेन भक्त्या स्तूयमानोऽञ्जलिकरेण ॥ १२९ ॥

श्रुत्वा नृप. सुमित्रो जिनागमं सादरोऽथ सकलत्रः ।
तुष्टोऽत्र लब्धपात्रो निरित्य गेहात्कृतपवित्रः ॥ १३० ॥

राजाङ्गणे जिनेन्द्रं दृष्ट्वा सयतिं स्थितं नरेन्द्रेन्द्रम् ।
शीलव्रतगुणचन्द्रं खादिव सज्ज्योतिपं चन्द्रम् ॥ १३१ ॥

अनुभव करते हुए ऐसे मालूम पड़ते थे मानो बादलोंसे मुक्त ग्रह नक्षत्र सहित पूर्ण चन्द्र ही विराजमान हो ॥ १२२ ॥ उनका संयमराज्य ही सुकोश था, शासन की श्रेष्ठता ही कोष्ठागार था, कभी नहीं छीजनेवाला भाण्डागार था और प्रतिग्रहवृत्ति ही महानस था ॥ १२३ ॥

जिस मार्गके शुद्ध होने पर यति, यम, संयम और भावनाओंमें शुद्ध होता है उस आहार मार्गको प्रवर्तन करनेमें भगवान्‌ने उद्योग किया। यद्यपि भगवान् बहुत काल तक अनशन कर सकते थे तो भी धर्म मर्यादा चलानेके लिए देवोंसे पूजनीय वे दो दिन के बाद पारणाके लिए मन्दरपुर नगरकी ओर चल पड़े ॥१२४–१२५॥

वह नगर हाथी, मनुष्य तथा घोड़ोंसे भरा था। वहाँ बड़े ऊँचे परकोटे तथा अट्टालिकाएँ थीं। नगरके प्रधान दरवाजोंके शृंग इतने ऊँचे थे मानो वे शरत्कालीन मेघोंका आलिंगन कर रहे हो ॥ १२६ ॥ वह नगर क्षुब्ध समुद्रके समान शब्दपूर्ण था, तथा अनेक रङ्ग-विरङ्गी महलोंकी पताकाओंसे सुशोभित था, और वह शत्रुसेनाके मदको शोषण करनेवाला तथा अनेक महिमापूर्ण उत्सवोंसे भरा हुआ था। वहाँकी गलियाँ गजमदसे समतल हो गई थीं तथा वहाँके मार्ग पूजाकी सामग्रीसे पुष्ट हुए भौरोंसे भरे हुए थे, इस तरह वह नगर इतना सुन्दर था कि कवियोंके वर्णनसे भी परे था ॥ १२७–१२८ ॥ उस नगरमें देवोंसे पूज्य उन जिनेन्द्रने एक हजार मुनियोंके साथ प्रवेश किया। नगरवासी समस्त जनताने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन्हे नमस्कार किया ॥ १२९ ॥ नगरमें भगवान्‌को आया हुआ सुन वहाँका राजा सुमित्र अपनी पत्नीसहित हाथमें पात्र ले कर और पवित्र व तुष्ट हो घरसे आदर सहित निकला। ॥ १३० ॥ मुनियोंके साथ राजाङ्गणमें खड़े हुए शील, व्रत, और गुणोंमें श्रेष्ठ वे जिनराज

चक्रे जिनं सदारः त्रिःप्रदक्षिणं प्रलम्बवरहारः ।
प्रविकसितवदनचन्द्रो मेरुमिव ज्योतिषामिन्द्रः ॥ १३२ ॥

क्षिप्राकुञ्चितजानुर्महीतले न्यस्तदक्षिणसुजानुः ।
जिनपादयोरपतन्मस्तकविन्यस्तपुटः ॥ १३३ ॥

उत्थायाऽपृच्छ्य सुखं प्रवन्द्य शेषानृषींश्च विनयेन ।
ज्ञात्वा वेलागमनं धन्योऽद्यास्मीति परिशुद्धः ॥ १३४ ॥

द्वात्रिंशदुद्गमोत्पादवर्जितं दोषदशकपरिहीणम् ।
नवकोटिप्रविशुद्धं चतुर्दशमलव्यपेतञ्च ॥ १३५ ॥

आदाय परमपात्रे परमान्नं परमभावशुद्धियुतः ।
परमपि प्रतिलेभे परमपदेप्सुः परमभक्त्या ॥ १३६ ॥

तत्समयेऽत्र बभूवु. पञ्चाश्चर्याणि युगपदाकाशे ।
दानमहो दानमहो पात्रे दत्तमिति सुरघोषः ॥ १३७ ॥

आपूर्णमम्बरमरं विबुधगणैः साधु साध्विति नुवद्भिः ।
नेदुर्दुन्दुभयोऽभूद्गन्धोदकपुष्पवृष्टिश्च ॥ १३८ ॥

तपनीयरजतमूर्तिर्वसुधारा सर्वरत्नचितशोभा ।
अपतद्दिवोऽतिमहती वसुधामपि पूरयन्तीव ॥ १३९ ॥

आश्चर्यमन्यदेकं सकृदानीतं जिनस्य यत्तत्र ।
यदि भुञ्जीरन् कोट्यस्ततोऽपि निष्ठां ययौ नैव ॥ १४० ॥

यात्रामात्रां भिक्षां तत्रार्जुनपिण्डवत् समादाय ।
अभ्यर्चितो जिनेन्द्रो निरगान्नगरान्नरसुरेन्द्रैः ॥ १४१ ॥

ऐसे मालूम पड़ते थे मानो आकाशमें नक्षत्र व ताराओंसे घिरा हुआ चन्द्रमा हो। उन्हें देखकर राजा सुमित्रने अपनी पत्नी सहित भगवान्की तीन प्रदक्षिणा की। सुन्दर हारसे सुशोभित और विकसित मुखचन्द्रवाला वह राजा प्रदक्षिणा करता हुआ ऐसा मालूम पड़ता था जैसे सुमेरुकी प्रदक्षिणा करता हुआ ज्योतिषी देवोंका इन्द्र ही हो ॥ १३१-१३२ ॥ उसने अपने एक घुटनेको आकुंचित कर और दाहिने घुटने को जमीन पर टेककर सिरपर हाथ लगा भगवान्के दोनो चरणोंमे प्रणाम किया। फिर उठकर उनसे विनयपूर्वक सब कुशल पूछी। और शेष ऋषियोंको विनयपूर्वक नमस्कार किया। भगवान्को पारणाके लिए आया हुआ जानकर वह अपनेको धन्य मानने लगा। उसने ३२ उद्गम उत्पाद व १० दोषोंसे रहित, तथा १४ दोष रहित और नवकोटि परिशुद्ध उत्तम आहारको उत्कृष्ट पात्रमें लेकर उत्तम भावोंसे मोक्ष प्रगतिकी इच्छासे उन महान् ऋषि शान्तिनाथको परम भक्तिसे दिया ॥ १३३-१३६ ॥

उसी समय वहाँ पर पाँच आश्चर्य हुए और साथ ही आकाशमें देवताओंने 'अहो दान, अहो दान, दान योग्य पात्रमें दिया गया है' इस प्रकार जयघोष किया। आकाश 'साधु साधु' कहनेवाले देवगणोंसे भर गया, दुन्दुभि बाजे बजने लगे तथा गन्धोदककी वृष्टि होने लगी ॥ १३७-१३८ ॥ वहाँ आकाशसे सुवर्ण चाँदी तथा रत्न आदि धनकी बहुत बड़ी वृष्टि हो रही थी मानो वह पृथिवीको भर रही हो। वहाँ सबसे बड़े आश्चर्यकी बात यह थी कि जिस घरमे भगवान्ने आहार किया था उस घरमें यदि करोड़ों व्यक्ति भी भोजन करते तो भी आहार समाप्त न होता ॥ १३९-१४० ॥ भगवान्ने शरीरयात्रा चलाने योग्य तप्त अर्जुन पिण्डके समान थोड़ा आहार लिया। बादमें नरेन्द्र

राजाऽपि सदारोऽत्र त्यक्त्वा मानुषीमनुबभूव ।
देवत्वमाप्तवानिव दिव्यां संप्राप्य सुरपूजाम् ॥ १४२ ॥

भगवानपि तप उग्रं सम्यक्कुर्वन्नभिग्रहैश्चित्रैः ।
प्रविहृत्य षोडशाब्दान् रविसिंहपराक्रमोद्योगः ॥ १४३ ॥

नन्दिद्रुमस्य मूले स्वपुरोद्यानेऽन्यदा पराह्णेऽथ ।
क्षपकश्रेण्याऽऽरूढो ध्यायन् ध्यानोत्तमं शुक्लम् ॥ १४४ ॥

मोहादिं त्रिषष्टिं कर्मप्रकृतिं क्षणेन विनिहृत्य ।
कैवल्यं चार्हन्त्यमप्रापज्जगदुत्तमं युगपत् ॥ १४५ ॥

विबुधालयेषु सहसा चकम्पिरे विष्टराणि देवेशाम् ।
ज्ञात्वाऽवधिना देवा ज्ञानोत्पत्तिं जिनेन्द्रस्य ॥ १४६ ॥

नानानीका नैके चतुर्निकायाः सुराः सदेवीकाः ।
आगत्याऽरं ददृशुस्तपोविभूतिं तथा जैनीम् ॥ १४७ ॥

चैत्यतरुर्देवदुन्दुभिसिंहासनचामरातपत्राणि ।
योजनघोषो भामण्डलं कुसुमवृष्टिरित्यष्टौ ॥ १४८ ॥

अश्वगजवृषाम्बुजाम्बरहरिगरुडेन्द्रध्वजा विरेजुश्च ।
सच्छत्राः सपताका इन्द्राद्यास्तासु देवकृताः ॥ १४९ ॥

दृष्ट्वेन्द्राः शान्तीशं प्रदक्षिणं त्रिःपरीत्य वन्दित्वा ।
तुष्टुवुः स्तुतिकोटिभिः प्रह्वाञ्जलयः पुरः स्थित्वा ॥१५०॥

रागो द्वेषो मोहस्त्रिभिरेतैस्त्रिभुवनं जितं कृत्स्नम् ।
ते यज्जितास्त्वयातस्त्रैलोक्येशो नमस्तुभ्यम् ॥ १५१ ॥

और इन्द्रसे पूजित हो वे भगवान् नगरसे विहार कर गये। राजा सुमित्र भी अपनी पत्नी सहित देवताओं द्वारा पूजा गया और इस मानुषी विभूतिको छोड़ देवताओं जैसी विभूति भोगने लगा ॥ १४१–१४२ ॥

भगवान्ने नाना प्रकारके अभिग्रहोंके साथ उग्र तप करना प्रारंभ किया और इस प्रकार सूर्य और सिंहके समान पराक्रमवाले उन भगवान्ने छद्मस्थ अवस्थामें सोलह वर्ष विताये। एक समय वे भगवान् नन्दि वृक्षके नीचे अपने ही नगरके बगीचेमें बैठे थे। उस समय वे क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ हुए और उन्नत शुक्लध्यानका चिंतवन करने लगे। तब उन्होंने मोहनीय आदि ६३ प्रकृतियोंको क्षण भरमें नष्ट कर दिया। इससे उन्हें केवलज्ञानके साथ ही साथ अर्हन्त पद प्राप्त हुआ ॥१४३–१४५॥ उसी समय स्वर्गमें देवेन्द्रोंके सिंहासन काँपने लगे। उन्होंने अपने अवधिज्ञानसे भगवान्की केवल-ज्ञानोत्पत्ति जानी। फिर चारों प्रकारके देव देवांगनाओं और अनेक प्रकारकी सेना सहित वहाँ आये और भगवान्की तपो-विभूति देखने लगे ॥ १४६–१४७ ॥

भगवान्के समवशरणमें अशोकवृक्ष, देवदुन्दुभि, सिंहासन, चामर, श्वेतछत्र, एक योजन तक ध्वनि, भामण्डल तथा पुष्पवृष्टि ये आठ प्रातिहार्य थे ॥ १४८ ॥ पूर्व आदि दिशाओंमें अश्व, हाथी, वृषभ, कमल, अम्बर, सिंह, गरुड़ और इन्द्रसे चिह्नित छत्र सहित देवकृत ध्वजाएँ यहाँ वहाँ फहरा रहीं थी ॥ १४९ ॥ इन्द्रोंने इस प्रकारकी शोभासे युक्त भगवान्को देख तीन प्रदक्षिणाएँ दीं तथा सामने खड़े होकर हाथ जोड़ करोड़ों स्तुतियोंसे भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ १५० ॥

हे भगवन् ! यह पूरा संसार राग, द्वेष और मोह इन तीनसे जीता गया है और आपने इन तीनोंको जीत लिया है इस-लिए आप त्रिलोकपति हैं, आपको नमस्कार हो ॥ १५१ ॥

स्तुत्वेन्द्रा जिनशान्तिं पुनश्च कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या ।
उचिते स्वे स्वे स्थाने जिनान्तिके ते न्यषींदश्च ॥ १५२ ॥

दृष्ट्वा देवागमन श्रुत्वाऽर्हन्त्य पितुश्च भक्त्याऽसौ ।
कुरुपतिरुरुसेनाभिः समवशरणमागतस्त्वरया ॥ १५३ ॥

विबुधमनोनिवृत्ते त्रिलोकरङ्गे सुमहत्सुखच्छाये ।
भगवन्त वन्दित्वा प्रदक्षिणीकृत्य चासिष्ट ॥ १५४ ॥

चक्रायुधादय षट्त्रिंशत् गणधराश्च पूर्वधराणाम् ।
सख्या शताष्टकं त्रिसहस्रं परमावधिबोधानाम् ॥ १५५ ॥

अष्टशतचत्वारिंशद्दशशतयुतं च शिक्षकसंख्या ।
स्यात्केवलबोधानां चतु'सहस्रं च परिमाणम् ॥ १५६ ॥

षड्गुणितैकसहस्रं परिमाण विक्रियर्द्धिमुनिपानाम् ।
ह्रत्पर्ययबोधानां मानं दशशतं चतुर्गुणम् ॥ १५७ ॥

द्विसहस्रं चतुराहतशतयुक्तं वादिनां च परिमाणम् ।
सर्वे मुनयः षष्टिसहस्र द्विसहस्रयुक्तं स्युः ॥ १५८ ॥

षष्टिसहस्र त्रिशत हरिषेणाद्यार्यिकाश्च संप्रोक्ताः ।
सुरकीर्त्यादिश्रावकसख्यानां द्विगुणितं लक्षम् ॥ १५९ ॥

अर्हद्दास्यादीनां गुणरत्नाभरणभूषितानां च ।
लक्षचतुष्कं प्रोक्त परिमाणं श्रावकीणां च ॥ १६० ॥

मुनिगणगणेन्द्रपार्थिवसुरेन्द्रसशयतमांसि जिनसूर्यः ।
चिक्षेप ज्ञानांशुभिर्जगत इव तम. सहस्रांशुः ॥ १६१ ॥

अज्ञानघर्मतप्तानाप्याययति स्म शान्तिजिनचन्द्रः ।
ज्ञानामृतवरकिरणैस्तप्तानिव चन्द्रमाः स्वकरैः ॥ १६२ ॥

इस प्रकार इन्द्रोंने भगवान्‌की स्तुति की और फिर भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा कर जिन भगवान्‌के समीप अपने अपने योग्य स्थानपर बैठ गये॥१५२॥

भगवान्‌का पुत्र नारायण देवोंका आगमन देख तथा अपने पिताको अर्हन्तपद प्राप्त हुआ है यह सुन एक विशाल सेना सहित शीघ्र ही समवशरणमें आया ॥ १५३ ॥ और देवताओं द्वारा रचे गये तीन लोकके रंग-स्थल रूप उस समवशरणमें विशाल और सुखदायक छायामें बैठे हुए भगवान्‌की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर बैठ गया ॥ १५४ ॥ भगवान्‌के समवशरणमें चक्रायुध आदि ३६ गणधर थे। ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्वके पाठी श्रुतकेवली ८०० थे। अवधिज्ञानी मुनि तीन सहस्र थे। ध्यान और अध्ययनमें लगे हुए शिक्षकोंकी संख्या इकतालीस हजार आठ सौ थी, तथा केवलज्ञानियोंकी संख्या चार हजार थी ॥ १५५-१५६ ॥ विक्रिया-ऋद्धिधारी मुनि छह हजार थे तथा मनःपर्ययज्ञानियोंकी संख्या चार हजार थी। वादी मुनियोंकी संख्या दो हजार चार सौ थी। इस प्रकार सब मुनियोंकी संख्या बासठ हजार थी ॥१५७॥ हरिषेणा आदि साठ हजार तीन सौ आर्यिकाएँ थीं तथा सुरकीर्ति आदि दो लाख श्रावक भगवान्‌के चरण-कमलोंकी पूजा करते थे। सम्यग्दर्शन और शीलव्रतादि गुणरूपी रत्नाभरणोंसे भूषित अर्हद्दासी आदि चार लाख श्राविकाएँ उस समवशरणमें थीं ॥ १५८-१६० ॥

उन जिन रूपी सूर्यने अपनी ज्ञान रूपी किरणोंसे मुनियों, गणधरों, राजाओं और देवेन्द्रों आदिके सन्देह रूपी अन्धकारको ठीक वैसे ही नष्ट किया जैसे कि सहस्र किरणवाला सूर्य संसारके अन्धकारको नष्ट करता है ॥१६१॥ उन शान्ति जिनेन्द्रने अज्ञान-रूपी घाम (धूप) से पीड़ित संसारी प्राणियोंको ज्ञानामृत रूपी उत्कृष्ट किरणोंसे ऐसे शान्त कर दिया जैसे सूर्यकी किरणोंसे तप्त जीवोंको चन्द्रमा अपनी किरणोंसे शान्त कर देता है ॥ १६२ ॥

स्तुत्वेन्द्रा जिनशान्ति पुनश्च कृत्वा प्रदक्षिण भक्त्या ।
उचिते स्वे स्वे स्थाने जिनान्तिके ते न्यर्सीदश्च ॥ १५२ ॥

दृष्ट्वा देवागमनं श्रुत्वाऽर्हन्त्यं पितुश्च भक्त्याऽसौ ।
कुरुपतिरुरुसेनाभिः समवशरणमागतस्त्वरया ॥ १५३ ॥

विबुधमनोनिवृत्ते त्रिलोकरङ्गे सुमहत्सुखच्छाये ।
भगवन्त वन्दित्वा प्रदक्षिणीकृत्य चासिष्ट ॥ १५४ ॥

चक्रायुधादयः पट्त्रिंशत् गणधराश्च पूर्वधराणाम् ।
सख्या शताष्टकं त्रिसहस्रं परमावधिबोधानाम् ॥ १५५ ॥

अष्टशतचत्वारिंशद्दशशतयुतं च शिक्षकसंख्या ।
स्यात्केवलबोधानां चतुःसहस्रं च परिमाणम् ॥ १५६ ॥

षड्गुणितैकसहस्रं परिमाणं विक्रियर्द्धिमुनिपानाम् ।
हृत्पर्ययबोधानां मानं दशशतं चतुर्गुणम् ॥ १५७ ॥

द्विसहस्रं चतुराहतशतयुक्तं वादिनां च परिमाणम् ।
सर्वे मुनयः पष्टिसहस्रं द्विसहस्रयुक्तं स्युः ॥ १५८ ॥

पष्टिसहस्रं त्रिशतं हरिषेणाद्यार्यिकाश्च संप्रोक्ताः ।
सुरकीर्त्यादिश्रावकसख्याना द्विगुणितं लक्षम् ॥ १५९ ॥

अर्हद्दास्यादीनां गुणरत्नाभरणभूषितानां च ।
लक्षचतुष्कं प्रोक्तं परिमाण श्रावकीणां च ॥ १६० ॥

मुनिगणगणेन्द्रपार्थिवसुरेन्द्रसंशयतमांसि जिनसूर्यः ।
चिक्षेप ज्ञानांशुभिर्जगत इव तम. सहस्रांशु. ॥ १६१ ॥

अज्ञानघर्मतप्तानाप्याययति स्म शान्तिजिनचन्द्रः ।
ज्ञानामृतवरकिरणैस्तप्तानिव चन्द्रमाः स्वकरैः ॥ १६२ ॥

इस प्रकार इन्द्रोंने भगवान्की स्तुति की और फिर भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा कर जिन भगवान्के समीप अपने अपने योग्य स्थानपर बैठ गये॥१५२॥

भगवान्का पुत्र नारायण देवोंका आगमन देख तथा अपने पिताको अर्हन्तपद प्राप्त हुआ है यह सुन एक विशाल सेना सहित शीघ्र ही समवशरणमे आया ॥ १५३ ॥ और देवताओं द्वारा रचे गये तीन लोकके रंग-स्थल रूप उस समवशरणमे विशाल और सुखदायक छायामे बैठे हुए भगवान्की वन्दना तथा प्रदक्षिणा कर बैठ गया ॥ १५४ ॥ भगवान्के समवशरणमें चक्रायुध आदि ३६ गणधर थे। ग्यारह अङ्ग और चौदह पूर्वके पाठी श्रुतकेवली ८०० थे। अवधिज्ञानी मुनि तीन सहस्र थे। ध्यान और अध्ययनमे लगे हुए शिक्षकोकी संख्या इकतालीस हजार आठ सौ थी, तथा केवलज्ञानियोंकी संख्या चार हजार थी ॥ १५५-१५६ ॥ विक्रिया-ऋद्धिधारी मुनि छह हजार थे तथा मनःपर्ययज्ञानियोकी संख्या चार हजार थी। वादी मुनियोंकी संख्या दो हजार चार सौ थी। इस प्रकार सब मुनियोकी संख्या बासठ हजार थी ॥१५७॥ हरिषेणा आदि साठ हजार तीन सौ आर्यिकाएँ थीं तथा सुरकीर्ति आदि दो लाख श्रावक भगवान्के चरण-कमलोंकी पूजा करते थे। सम्यग्दर्शन और शीलव्रतादि गुणरूपी रत्नाभरणोसे भूपित अर्हद्दासी आदि चार लाख श्राविकाएँ उस समवशरणमे थीं ॥ १५८-१६० ॥

उन जिन रूपी सूर्यने अपनी ज्ञान रूपी किरणोंसे मुनियों, गणधरों, राजाओं और देवेन्द्रो आदिके सन्देह रूपी अन्धकारको ठीक वैसे ही नष्ट किया जैसे कि सहस्र किरणवाला सूर्य संसारके अन्धकारको नष्ट करता है ॥१६१॥ उन शान्ति जिनेन्द्रने अज्ञान-रूपी घाम (धूप) से पीड़ित संसारी प्राणियोंको ज्ञानामृत रूपी उत्कृष्ट किरणोंसे ऐसे शान्त कर दिया जैसे सूर्यकी किरणोंसे तप्त जीवोंको चन्द्रमा अपनी किरणोंसे शान्त कर देता है ॥ १६२ ॥

धर्मकथाम्भोऽवर्षज्जिनमेघो दुःखसूर्यतप्ताय ।
लोकायाऽम्भो मेघो रवितप्तायेव निरपेक्षः ॥ १६३ ॥

पञ्चाधिकानि विंशतिमब्दसहस्राणि षोडशोनानि ।
विजहार मध्यदेशान् भगवांस्तिस्तारयन् भव्यान् ॥ १६४ ॥

मासायु परिशेषे सम्मेदं पर्वतं समारुह्य ।
व्युद्घाटितकरयुगलो योगी शुक्लान्तिकं ध्यायन् ॥ १६५ ॥

नवभिः शतैर्यतीनां निर्द्वन्द्वानां चतुःप्रकृतिनाशे ।
मोक्षं स पूर्वरात्रे प्रापत्परमं पदं सिद्धः ॥ १६६ ॥

परिनिर्वृते जिनेन्द्रे देवा आगम्य सेन्द्रकास्तस्य ।
दिव्याग्निगन्धमाल्यैः शरीरमहिमां प्रचक्रुस्ते ॥ १६७ ॥

स्वर्गावतरणकादिषु कल्याणकमङ्गलेषु विज्ञेयम् ।
नक्षत्रं च भरण्यो निर्वाणान्तेषु सर्वेषु ॥ १६८ ॥

विद्याधरेन्द्रबलदेवामरदेवेन्द्रचक्रवर्तित्वम् ।
आर्हन्त्यं च प्राप्तं वन्दे शान्तिं जगच्छान्तिम् ॥ १६९ ॥

अधिराजाऽमरकेशवविद्याधरराजताहमिन्द्रत्वम् ।
प्राप्तं च गणधरत्वं वन्दे चक्रायुध भक्त्या ॥ १७० ॥

स्थानानि यानि दिवि भुवि परमाण्यनुभूय सुरनराणाम् ।
प्राप्तौ चान्ते मोक्षं वन्देऽर्हद्गणधरौ शिरसा ॥ १७१ ॥

एवं भक्त्या नुतो द्वादशभवनामकीर्तनेन मया ।
दिशतु स मे सद्बोधं च शान्तिर्भगवान् परमशान्तिम् ॥१७२॥

इति श्रीशान्तिचरिते अर्थाख्यानसंग्रहे आर्याबद्धे दामनन्द्याचार्यस्य
कृतौ भगवन्निर्वाणगमनो नाम षष्ठः सर्गः समाप्तः ॥ ६ ॥

उन जिन रूपी मेघने दुःखरूपी सूर्यसे तप्त लोकके लिए विना किसी अपेक्षाके धर्मकथा रूपी जल वृष्टि की जैसे कि सूर्यसे तप्त प्राणियों को विना किसी अपेक्षाके मेघ जल वरसाता है ॥ १६३ ॥

भगवान्ने भव्य जीवोंको पार लगाते हुए सोलह वर्ष कम पच्चीस हजार वर्ष तक मध्यके अनेक देशोंमें विहार किया और एक माहकी आयु शेष रहने पर सम्मेदशिखर पर आ विराजमान हुए तथा वहाँ कायोत्सर्ग आसनसे परमशुक्ल ध्यानमें लीन हो गये ॥१६४–१६५॥

फिर ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशीको रात्रिके पहिले प्रहरमें शेष चार अघातिया कर्मोंको नष्ट कर नव सौ केवली मुनियोंके साथ मोक्ष पधारे ॥१६६॥ भगवान्के मोक्ष चले जानेपर इन्द्रों सहित देवगण वहाँ आये और उन्होने दिव्य अग्निसे तथा सुगन्धित पदार्थों और मालाओं से भगवान्का अन्तिम संस्कार किया ॥१६७॥ भगवान्के स्वर्गावतरणसे लेकर निर्वाणकल्याणक तक सभी कल्याणकोंमें भरणी नामका नक्षत्र था ॥ १६८ ॥ जिसभगवान्ने अपने पूर्व भवोंमें विद्याधरके राजा, वलदेव, इन्द्र तथा चक्रवर्ती पदके साथ अर्हन्त पद पाया ऐसे जगत्को शान्ति प्रदान करनेवाले शान्तिजिनको प्रणाम है ॥१६९॥

जिन्होंने पूर्वभवोंमें सम्राट्पद, देव, नारायण, विद्याधरोंका राजा, इन्द्र तथा गणधरपद पाया उन चक्रायुद्धकी मैं भक्ति पूर्वक वन्दना करता हूँ। उन दोनों भाइयोंने देवों और मनुष्योंमें जो भी श्रेष्ठ पद व स्थान थे उन सवका सुख अनुभव किया और अन्तमें मोक्ष पधारे। मैं उन दोनों अर्हन्त और गणधरको शिरसे प्रणाम करता हूँ ॥ १७०–१७१ ॥

इस प्रकार भगवान्के मैंने वारह भवोंका वर्णन कर उनकी स्तुति की है। वे भगवान् शान्ति मेरे लिए और संघके लिए परम शान्ति प्रदान करें ॥ १७२ ॥

इस प्रकार श्रीदामनन्दी मुनिकी कृति आर्याबद्ध शान्तिचरितमें निर्वाणगमन नामका छठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

प्रशस्ति

आचार्यो दामनन्दी कुरुकुलतिलके नित्यचित्ताभियुक्तो
योऽर्थाख्यानाभिदध्यां स्वरवनिचरितां सर्वसङ्घस्य शान्त्यै
आर्याबद्धामवोचन्नुतिमतुलकथां चित्रशाखोपशाखां
तस्मै देयाज्जिन. स्वे परमपदगत पादमूले निकेतम् ॥ १ ॥

षड्सर्गाणां सङ्ख्या पञ्चाथैकादशोत्तरशतानि ।
आर्याणां परिमाण विज्ञेय शान्तिचरितेऽस्मिन् ॥ २ ॥

ऋद्धिप्राप्ता ऋषयो यतयस्तु कषायघातका ज्ञेया. ।
मुनयः प्रत्यक्षविद शेपास्त्वनगारका ज्ञेयाः ॥ ३ ॥

जो आचार्य दामनन्दी कुरुवंशके तिलक भगवान् शान्तिके सम्बन्धमे सदा ही एकाग्रचित्त हैं और जिन्होंने सर्व संघके कल्याणके लिए शान्तिनाथ भगवान्‌के स्वर्ग और भूतलमें प्रचलित विशेष अर्थाख्यानको लिये हुए शाखाओं व उपशाखाओंसे युक्त विशाल कथाको आर्या छन्दोंमें नम्र भावसे कहा है। उन दामनन्दी आचार्यको भगवान् शान्ति जिन अपने चरणोंके समीप मोक्षमे स्थान देवें ॥ १ ॥ इस शान्तिचरितके इन छह सर्गोंमें ५११ आर्या छन्द हैं ॥ २ ॥

इस प्रसङ्गमे यह कह देना चाहते हैं कि निर्ग्रन्थ साधुओंमे ऋद्धिप्राप्त मुनि ऋपि कहलाते हैं, कषाय नष्ट करनेवाले मुनि यति कहलाते हैं, प्रत्यक्षज्ञानी साधु मुनि कहलाते हैं और शेप अनगार कहे जाते हैं ॥ ३ ॥

ज्ञानपीठके सांस्कृतिक प्रकाशन